RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

वर्ष : 5, अंक : 17

अप्रैल-जून 2020

मूल्य 50 रुपये

Dhingra Family Foundation USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

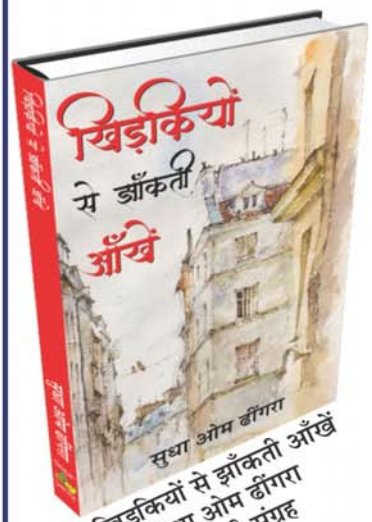

खिड़कियों से झाँकती आँखें
सुधा ओम ढींगरा
कहानी संग्रह

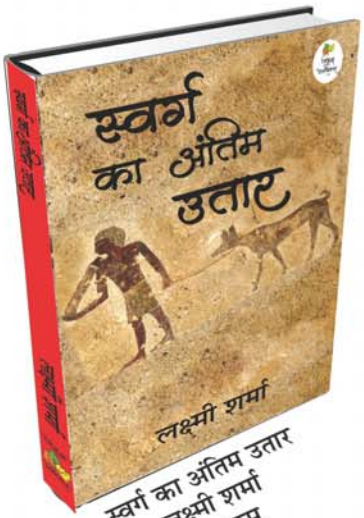

स्वर्ग का अंतिम उतार
लक्ष्मी शर्मा
उपन्यास

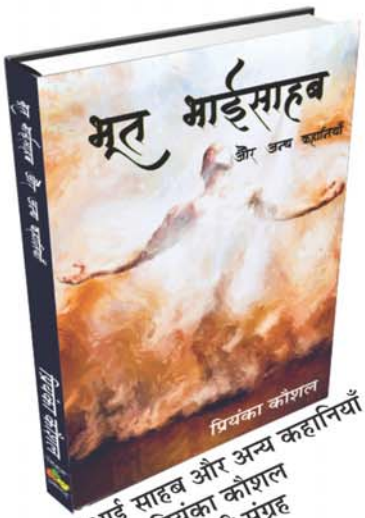

भूत भाई साहब और अन्य कहानियाँ
प्रियंका कौशल
कहानी संग्रह

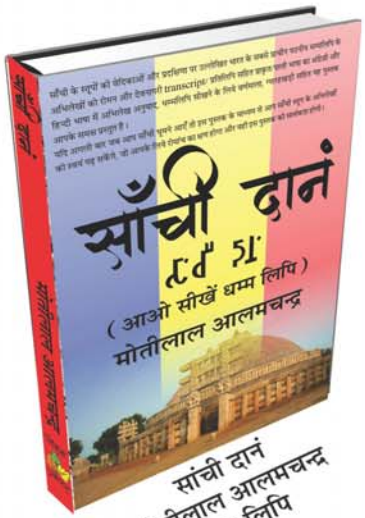

सांची दानं
मोतीलाल आलमचन्द्र
धम्म लिपि

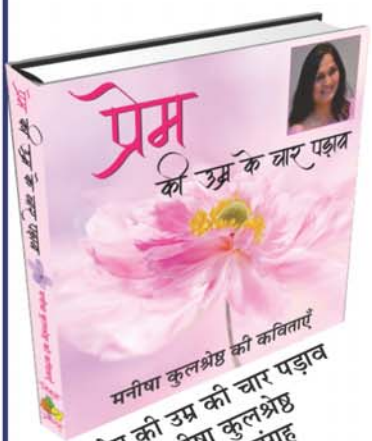

प्रेम की उम्र की चार पड़ाव
मनीषा कुलश्रेष्ठ
कविता संग्रह

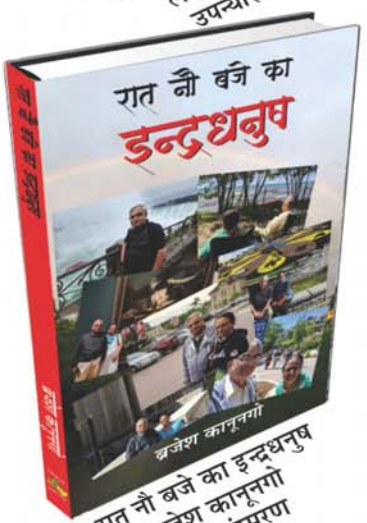

रात नौ बजे का इन्द्रधनुष
ब्रजेश कानूनगो
यात्रा संस्मरण

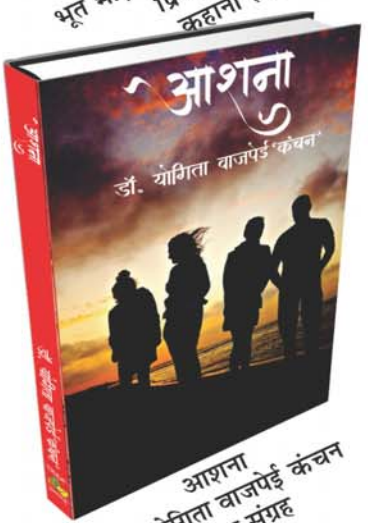

आशना
डॉ. योगिता वाजपेई कंचन
ग़ज़ल संग्रह

प्रवास में आसपास
डॉ. हंसा दीप
कहानी संग्रह

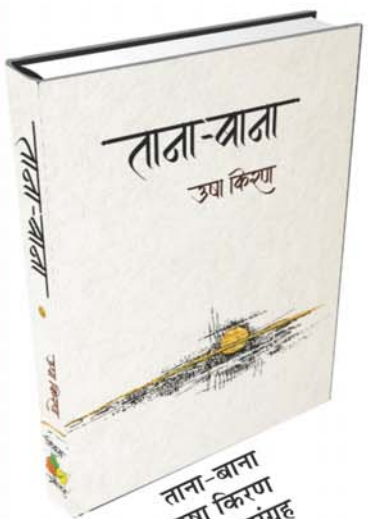

ताना-बाना
उषा किरण
कविता संग्रह

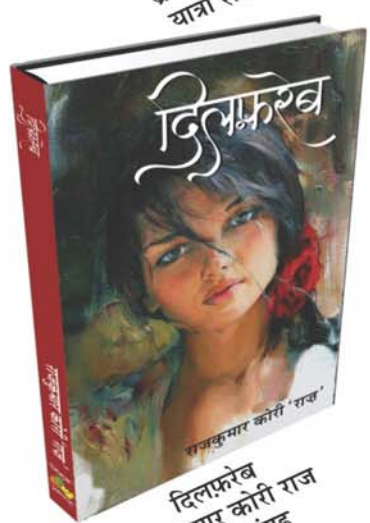

दिलफ़रेब
राजकुमार कोरी राज
ग़ज़ल संग्रह

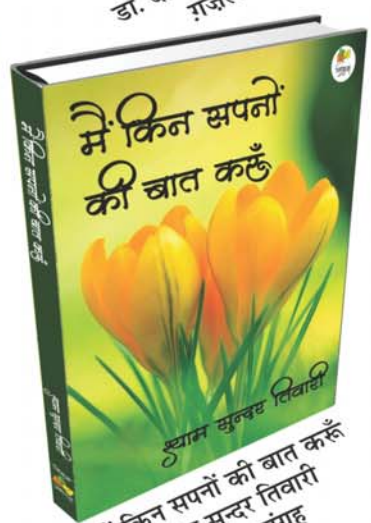

मैं किन सपनों की बात करूँ
श्याम सुन्दर तिवारी
नवगीत संग्रह

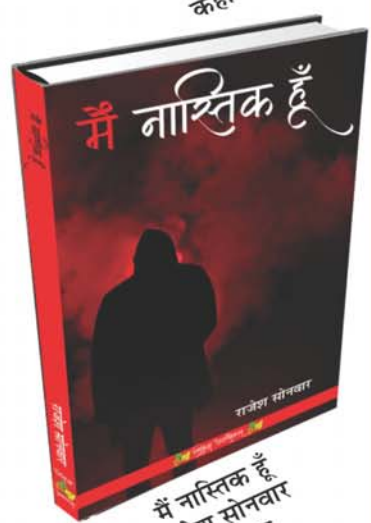

मैं नास्तिक हूँ
राजेश सोनवार
उपन्यास

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001

फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह, सनी गोस्वामी
डिज़ायनिंग
सुनील सूर्यवंशी, शिवम गोस्वामी
संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 17, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2020
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

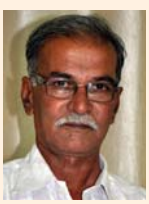

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

रेखाचित्र
अशोक अंजुम

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 5, अंक : 17,

त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2020

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

डॉ. विजय शर्मा से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 9

कथा कहानी

गिरेबाँ
सिनिवाली शर्मा 13

एक पीला उदास आदमी
हर्षबाला शर्मा 16

और शिलाखण्ड पिघलने लगा
डॉ. पूरन सिंह 20

फेयरवेल
रेखा राजवंशी 25

एल्युमनी मीट
नीलम कुलश्रेष्ठ 29

अनुत्तरित प्रश्न
डॉ. प्रदीप उपाध्याय 34

अकेलापन
डॉ.कुसुम नैपसिक 37

माँ तुम मदर इंडिया क्यों नहीं बन गई
ममता शर्मा 40

पोस्टमार्टम
विकेश निझावन 42

चाउमिन
मुरारी गुप्ता 44

केंद्र में कहानी

आग में गर्मी कम क्यों है?' कहानी
डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
डॉ. उमा मेहता 48

लघुकथाएँ

बॉयफ्रेंड
शराफ़त अली ख़ान 28

अहसास
चन्द्रकान्ता अग्निहोत्री 36

भाषांतर

झूला
मूल मराठी कथा
मूल लेखिका : उज्ज्वला केळकर
अनुवाद : डॉ. सुशीला दुबे 54

व्यंग्य

ड्रैस कोड
मदन गुप्ता सपाटू 56

संस्मरण

श्रीकृष्ण सरल ने हास्य कविताएँ भी लिखीं
वीरेन्द्र जैन 59

हमारी धरोहर

यादों की धरोहर - मुग्गनी
शशि पाधा 61

आलेख

इन्हें प्रवासी कैसे कहूँ?
मधु अरोड़ा 63

पहली कहानी

उसका युद्ध
अभिषेक मेवाड़ा 65

दोहे

अशोक 'अंजुम' 60

ग़ज़ल

विज्ञान व्रत 43
अनिरुद्ध सिन्हा 58
दीपक शर्मा दीप 76

कविताएँ

शैलेन्द्र शरण 71
मुकेश पोपली 72
अर्चना गौतम मीरा 72
मूसा खान अशांत बाराबंकवी 73
सन्तोष पाल 74
कमलेश कमल 75

समाचार सार

भूतभाई साहब' का विमोचन 77
निन्यानवे के फेर में' का विमोचन 77
डॉ. गरिमा दुबे को मिला सम्मान 77
'धर्मपुर लॉज' का लोकार्पण 78
अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस 78
लिटरेरिया 2019 79
सृजन संवाद में कविता पाठ 79
शरद व्याख्यानमाला 80
गांधी के डेढ़ सौ साल 80
अरुण अर्णव खरे सम्मानित 80
रामकृष्ण त्यागी स्मृति कथा सम्मान 80
पं. बृजलाल द्विवेदी सम्मान 81
कार्यशाला 81
तोमिओ मिज़ोकामी का व्याख्यान 81
'साहित्य भूषण सम्मान' 81

आख़िरी पन्ना 82

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :

1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :— — — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :**— — — — — — — — — — — — — — — — — — — —

— — — — — — — — — — — — — — — **सदस्यता शुल्क :**— — — — — — — — **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — — —

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — — — **दिनांक :** — — — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

बायलॉजिकल युद्ध के लिए देशों को तैयार रहना पड़ेगा

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल : sudhadrishti@gmail.com

प्रौद्योगिकी एवं औद्योगिकी के इस युग में विश्व सिमट कर एक बड़े परिवार की तरह हो गया है। इसका सारा श्रेय सोशल मीडिया को जाता है। विभोम-स्वर के पिछले अंक में इसके दुष्परिणामों के बारे में बात की गई थी; जब लोग सोशल मीडिया का दुरुपयोग करते हैं। अगर इसका दूसरा पक्ष देखें तो इसने पूरे विश्व को जोड़ दिया था। सोशल मीडिया की बदौलत किसी भी देश की घटना-दुर्घटना पूरे विश्व के घर-घर में पहुँच जाती है। प्रत्येक देश की राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों से पूरा विश्व परिचित हो जाता है। विश्व के स्तर पर हम भारतीयों का मूल मन्त्र 'वसुधैव कुटुम्बकम' को सोशल मीडिया ने चरितार्थ कर दिया।

करोना वॉयरस (Covid-19) चीन में शुरू ही हुआ और इसका समाचार पूरे विश्व में फ़ैल गया। हालाँकि भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण से एक-दूसरे देश में आवाजाही और भ्रमण करने की जो बढ़ौतरी हुई है; उसी ने इसे चीन से अन्य देशों में पहुँचाया। सोशल मीडिया द्वारा फैलाई गई ख़बरों से कुछ देश सचेत भी हो गए।

फ़ेसबुक ने वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइज़ेशन द्वारा दी गई जानकारी ही दुनिया तक जाने दी, ग़लत या झूठ को रोक दिया। इससे अफ़वाहों से बचाव हो गया।

आज विश्व करोना वॉयरस जैसे बड़ी चुनौती से लड़ रहा है, दो विश्व युद्धों में भी इतनी भयवाह स्थितियाँ नहीं थीं, जितनी आज के समय में करोना से लड़ी जा रही जंग में है। पूरे विश्व का यातयात ठप्प है। बहुत से देशों के लोग घरों में बंद हैं। जान-माल का जितना नुक़सान होने वाला है, कल्पना से भी परे है। पूरे विश्व में आर्थिक मंदी का भयावह समय आने वाला है।

समय से बहुत पहले कह रही हूँ, जब करोना वॉयरस का कहर समाप्त होगा, विश्व एक नए रूप में उभरेगा। शिक्षा, औद्योगिकी, प्रौद्योगिकी और वित्तीय सिस्टम में बहुत परिवर्तन होगा। करोना के आने से पहले ही यहाँ कंपनियों ने घरों से काम करने का विकल्प दिया हुआ था। करोना से सब कुछ बंद होने की स्थिति में टेली कॉन्फ्रेंस और वीडियो कॉन्फ्रेंस का सिस्टम सेट करने में कंपनियों को समय नहीं लगा। स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों ने कुछ दिनों में ही सारी शिक्षा को ऑन लाइन कर दिया। घर बैठे बच्चों की पढ़ाई का नुक्सान नहीं होना चाहिए, इसे प्राथमिकता दी गई। हेल्थ केयर सिस्टम में करोना के पेशेंट्स को प्राथमिकता देने के लिए यहाँ दूसरे पेशेंट्स के लिए टेली मेडिसन का प्रयोग रातों-रात ही शुरू कर दिया गया ताकि डॉक्टरों के पास पेशेंट्स इकट्ठे न हों। पेशेंट्स से बात करके ही करोना के पेशंट को चैकअप के लिए शीघ्र भेज दिया जाए।

करोना के कहर के बाद देशों की राजनीति का स्वरूप बदल जाएगा। देश को पहले स्वावलंबी बनाने के लिए काम किया जाएगा, ताकि आपातकाल की स्थिति में और देशों पर निर्भर नहीं रहना पड़े।

करोना से लड़ी जा रही इस जंग के बाद विश्व समझ जाएगा कि बायलॉजिकल युद्ध सीमा रहित होता है और उससे जान-माल का नुक्सान फ़ौजी युद्ध से कहीं अधिक होता है

और उसके लिए देशों को अपने आपको तैयार रखना पड़ेगा।

उत्पादन और मेनुफेक्चरिंग हर देश को बढ़ाने पड़ेंगे। व्यापारी भी मुनाफ़े के लिए सस्ती चीज़ें सिर्फ चीन से अब नहीं खरीद सकेंगे, हर देश को अपने यहाँ मेनुफेक्चरिंग को बढ़ावा देना पड़ेगा। अपने ही उत्पादनों की अपने देश में खपत करने के लिए कीमतों को भी कंट्रोल करके देश को आत्मनिर्भर बनाना एक तरह से हर देश के लिए ज़रूरी हो जाएगा।

सोशल मीडिया, इंटरनेट और विडियो कॉन्फ्रेंसिंग कार्यप्रणाली में प्रमुख हो जाएँगी। इनसे विश्व जुड़ा भी रहेगा और हर देश अपने में सुदृढ़ होने की कोशिश भी करेगा। आगे किसी भी ऐसे बायलॉजिकल युद्ध के लिए देशों को तैयार रहना पड़ेगा।

अमेरिका की सरकार और सोशल मीडिया कई कंपनियों और व्यापारियों पर ज़ोर डाल रही है कि वे अपने कर्मचारियों को नौकरियों से न हटाएँ। कई तरह की वित्तीय सहायता भी दे रही है। करोना के थमते ही हर देश में बेरोज़गारी बढ़ जाएगी। पूँजीपति तो हर देश में युद्ध हो या शांति असंवेदनशील ही होते हैं। अपना लाभ ही देखते हैं। यहाँ के एक हॉकी लीग के मालिक ने ऐसे नाज़ुक समय में ही अपने कई कर्मचारियों को काम से निकाल दिया। सोशल मीडिया पर उसे इतना शर्मिंदा किया गया कि उसने अपना फैसला वापिस ले लिया। अरबपति भी अगर इस समय अपने कर्मचारियों का ध्यान नहीं रखेंगे तो मानवता रो पड़ेगी, शर्मिंदा होगी।

विदेश में बैठी हूँ, किसी गुट में नहीं, किसी वाद में नहीं, किसी विचारधारा से प्रभावित नहीं, किसी राजनीतिक पार्टी से भी जुड़ी हुई नहीं, निष्पक्ष हो कर बहुत कुछ देख रही हूँ। इसलिए कह भी रही हूँ कि पूरे विश्व की नज़रें भारत पर लगीं हैं, वह एक बहुत बड़ी ताक़त बन कर उभर सकता है, अगर जनता और सरकार बुद्धिमता से चली।

राह कठिन आने वाली है, अगर आपके पास चार रोटी हैं तो दो किसी भूखे को दे देंगे तो आपकी सेहत कम खाने से ठीक रहेगी और भूखे का पेट भर जाएगा।

करोना के साथ-साथ एक कहर प्रवासी साहित्य पर गिरा। अमेरिका की वरिष्ठ और प्रतिष्ठित साहित्यकार सुषम बेदी जी जो प्रवासी साहित्य का एक सुदृढ़ स्तंभ थीं, हमें छोड़ कर अनंत यात्रा पर चली गईं। अपने उपन्यासों, कहानी संग्रहों और कविता संग्रहों से उन्होंने हिन्दी साहित्य को बहुत समृद्ध किया। उनके देहावसान से वर्तमान प्रवासी साहित्य के एक युग का अंत हो गया है। विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी की टीम की तरफ से सुषम बेदी जी को विनम्र श्रद्धांजलि....

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

सूर्यास्त हो जाना और शाम का घिर आना एक स्थिति है, स्थिति जो अगले ही दिन सूर्योदय के साथ बदल जाएगी। जीवन भी इसी प्रकार है, जो अँधेरा आज घिर रहा है, वो कल छँटेगा ही छँटेगा। आज आवश्यकता है तो केवल सब्र के साथ उजाले के आगमन की प्रतीक्षा करने की। सुबह अवश्य होती है।

मित्रनामा

बेहतरीन संपादकीय

परिवर्तन इस संसार का नियम है और हमारे चाहने पर भी संसार का परिवर्तन रुकना नहीं है, लेकिन सोशल मीडिया के कारण संसार जिस तरह से परिवर्तित हो रहा है उसके प्रति सचेत रहना अत्यन्त ज़रूरी है। आपके संपादकीय 'अगली पीढ़ी के लिए पर्यावरण और सोशल मीडिया के प्रति सचेत रहें' को देखकर मैं यह देखने से स्वयं को रोक नहीं पाया कि आख़िर स्वनामधन्य लेखिका सुधा ओम ढींगरा अगली पीढ़ी को कैसे चेता रही हैं। सत्य-असत्य और सही-ग़लत के बीच क्या फ़र्क रह गया है आज? समय के परिवर्तन ने तो जैसे इन्सान को ही पूरी तरह से बदल कर रख दिया है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में नैतिकता और जीवन मूल्यों का जिस तेज़ी से अवमूल्यन हुआ है और हो रहा है उसमें सोशल मीडिया का सबसे ज़्यादा योगदान है। सोशल मीडिया पर परोसी जा रही सामग्री ग़लत है या सही इस बात की तस्दीक़ करना बेहद ज़रूरी है, क्योंकि आज सोशल मीडिया पर झूठ और फ़रेब भी इस ख़ूबसूरती से परोसा जा रहा है कि, आख़िर इनके प्रहार से कोई बचे तो बचे कैसे ? सोशल मीडिया पर सच को झूठ और झूठ को सच इस कलात्मकता से बनाया जाता है, कि अच्छे-अच्छों की अक़्ल साथ छोड़ जाती है।

आजकल कुछ राजनीतिज्ञों ने सोशल मीडिया को जनता के ब्रेन वॉश का ज़रिया बना लिया है और जमकर सोशल मीडिया का दुरुपयोग कर रहे हैं। किसी ख़ास विचारधारा के प्रचार-प्रसार और समर्थन के लिए जिस तरह से सोशल मीडिया का दुरुपयोग कर रहे हैं, वो भविष्य में ख़तरनाक साबित हो सकता है,क्योंकि आमजन सोशल मीडिया पर कही बातों पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेती है, वैसे एक ही बात को बार-बार दोहराया जा रहा है और तथ्यों को इस तरह से तैयार किया जा रहा है कि वह देखने और सुनने वाले के अवचेतन मन को अपनी जकड़ में ले ही लेता है, लेकिन बुद्धिजीवी वर्ग को सोशल मीडिया के प्रति उदासीन नहीं रहना चाहिए, क्योंकि अगर समय रहते सोशल मीडिया के दुरुपयोग और इसके दुष्परिणाम के प्रति हम सचेत न हुए तो फिर वह कहावत 'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' चरितार्थ हो जाएगी।

अमेरिका के नेटिव इन्डियन (रेड इन्डियन) के जीवन दर्शन की मान्यता 'अगली पीढ़ी की धरोहर के हम रखवाले हैं' कितनी महत्त्वपूर्ण है यह कहने की आवश्यकता नहीं है, हमारे शास्त्रों में भी यही कुछ मान्यता है लेकिन इस दिन-प्रतिदिन रंग बदलती दुनिया में अगली पीढ़ी की धरोहर के हम रखवाले हैं कि नहीं हैं इस प्रश्न पर विचार करने की हम जैसे कोई आवश्यकता ही नहीं समझ रहे हैं। हम सब स्वार्थ में इतने अंधे हो गए हैं कि तात्कालिक नफ़े-नुकसान से ज़्यादा कुछ सोच ही नहीं पाते हैं। हम सब बस इक भीड़-तंत्र का हिस्सा रह गए हैं और यथास्थितिवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ स्वतंत्र सोच विकसित करने का दुस्साहसिक कदम उठाने से हम बेहद डरते हैं। भीड़ से कुछ अलग सोचने और करने के प्रयास में बहुत ख़तरा है, पर भीड़ के रुख और रवैये से घबरा कर चुप बैठ जाना ज़्यादा ही ख़तरनाक होगा।

सोशल मीडिया को मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक से लैस होकर उपयोग करे तो सोशल मीडिया एक बेहतरीन माध्यम हो सकता है समाज को आगे ले जाने के लिए। सोशल मीडिया से भी ज़्यादा भयावह समस्या है पर्यावरण की रक्षा, क्योंकि जिस तरह सोशल मीडिया पर अंधविश्वास घातक है और हममें सत्य और असत्य के परख की क़ाबिलियत का होना ज़रूरी है उसी तरह इस पृथ्वी के लिए पर्यावरण का कम होते जाना घातक है और निस्संदेह पर्यावरण के संरक्षण के लिए नव वर्ष पर हमें संकल्प लेना चाहिए। इस बेहतरीन संपादकीय को पढ़ने से सबकी आँखें खुलेंगी।

साक्षात्कार का शीर्षक देखा तो रहा नहीं गया और पढ़ने के बाद अपने पत्र में इस बेहतरीन साक्षात्कार के सिलसिले में कुछ कहना ज़रूरी लगा। सबसे पहले तो यह कि सामूहिक प्रयास के बिना कोई भी परिवर्तन अधूरा है और निस्संदेह सामूहिक सोच और बल द्वारा ही समय और समाज परिवर्तित होता रहता है। बहुत छोटी उम्र से ही रचनाओं का सृजन करने वाली रचना श्रीवास्तव अपनी छोटी बहन के लिए छोटी- छोटी तुकबंदियाँ करती थीं और उसे सुनाने के लिए गीत भी लिखती थी और जब अमेरिका में समय काटना मुश्किल होने लगा और सारा दिन खाली-खाली लगने लगा तो फिर से कविता के माध्यम से अपने एकांत और अकेलेपन के अवसाद को सृजन की ऊर्जा से कम कर लिया और अपनी माटी की खुशबू को शब्दों में साकार करके अपनी रचनाशीलता को इक नवीन आयाम दिया। साक्षात्कार को पढ़कर वाक़ई मज़ा आ गया।

साक्षात्कार को पढ़कर सोचा कि अब वन्दना अवस्थी दुबे की कहानी 'डेरा उखड़ने से पहले....।' को ही सबसे पहले पढ़ा जाए, क्योंकि मस्तिष्क में यह शीर्षक जैसे कुछ ज़्यादा ही हलचल मचाने लगा और मन कौतूहल से भर गया। कहानी शुरू में कुछ खास नहीं लगी पर जैसे-जैसे आगे बढ़ने लगा कहानी मुझे पकड़ने लगी ! आजकल संबंधों को ज़्यादा तरजीह नहीं देते हैं लोग, क्योंकि पैसा ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि हो गया है। बेटे अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते हैं तो बाप अपने कर्त्तव्य का। बीमार और बूढ़े पिता बेटों को फ़ालतू लगते हैं सो उन पर रुपये खर्च करना भी व्यर्थ ही लगता है। आज स्वार्थ अपने चरम पर है और वंदना अवस्थी दुबे ने समाज में बढ़ती स्वार्थपरता को बहुत ही मार्मिकता से उकेरा है। हमारा समाज आज भी स्त्रियों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित है खासकर अविवाहिता स्त्रियों के प्रति जैसी असहिष्णुता और कुदृष्टि है समाज में वह किसी से छिपा नहीं है लेकिन इसी समाज में कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनमें आज भी इंसानियत बची हुई है और दूसरों के लिए हमदर्दी भी। वंदना जी ने आधुनिक दृष्टिकोण से समाज और स्त्री- पुरुष संबंध की व्याख्या की है, वो भी इक बेहतरीन कहानी के रूप में।

अंशु जौहरी की 'स्मृतियों के प्रश्नचिह्न' से ज्ञात हुआ कि पीड़ाएँ दो प्रकार की होती हैं- कुछ सार्वभौमिक तो कुछ स्थानीय। बड़े ही दार्शनिक अंदाज़ में शुरू की गई कहानी ने मुझ पर कुछ जादू सा कर दिया जैसे और कब मैंने पूरी कहानी समाप्त कर ली कुछ

पता ही नहीं चला। किसी ख़ास आत्मीय की मृत्यु से कुछ कम कष्टकर नहीं हैं साम्प्रदायिक दंगे। भले ही हमारी सरकार कर्फ़्यू लगा देती है पर कुछ सिसकती/कराहती आवाज़ें हमेशा के लिए दफ़न हो जाती हैं समय की गर्त में; क्योंकि पुलिस के जवानों के भी अपने कुछ पूर्वाग्रह होते हैं और वर्दी के पीछे कुछ जानवर भी होते ही हैं। वैसे जानवर तो सब भीतर होता है जो वक़्त- बेवक़्त हमारे विवेक को खा जाता है और हम सही-ग़लत का भेद भूल जाते हैं और हम इन्सानियत के बजाय धर्म और जाति-बिरादरी की विषाक्तता से ग्रसित हो के रह जाते हैं। लेकिन यह सुखांत कहानी दिमाग़ में बहुत सारे प्रश्नचिह्न छोड़ देती है।

प्रमोद त्रिवेदी की कविताओं में पहली कविता 'दो चश्मे' मुझे बहुत अच्छी लगी और निस्संदेह 'किताबें' और 'प्रार्थना' भी पाठक को उत्तम रचना पढ़ने का सुख देती हैं।

'नवपल्लव' के अन्तर्गत छपी कविताओं में पहली कविता 'रास्ता हूँ मैं...' में रास्ते के बहाने स्त्री की ही बात की गई है, क्योंकि रास्ते की तरह स्त्री का भी कहीं कोई घरबार नहीं होता है, लेकिन स्त्री के बिना पुरुष की किसी सफलता की कल्पना बेमानी है। सुप्रीता झा की कविताएँ पढ़ना एक विलक्षण अनुभव रहा। ये मेरी बड़ी बहन हैं सो मैं इन्हें बचपन से जानता हूँ,पर इनके भीतर काव्य की ऐसी भाव-प्रवण धारा प्रवहमान है यह जानने का सुअवसर 'विभोम-स्वर' के सौजन्य से प्राप्त हुआ; जिसके लिए मैं सदैव 'विभोम-स्वर' का आभारी रहूँगा और सुप्रीता झा से भी आशा करूँगा कि वो अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं को हिन्दी पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी के बड़े पाठक वर्ग तक पहुँचाती रहें।

-नवनीत कुमार झा
सुन्दरपुर, दरभंगा
2rambharos@gmail.com

***

पठनीय सामग्री

जनवरी-मार्च 20 के 'विभोम-स्वर' तथा 'शिवना साहित्यिकी' अंक मिले! बहुत बहुत आभार ! विभोम-स्वर में सुधा जी का संपादकीय तथा उनके द्वारा अमेरिका की युवा लेखिका रचना श्रीवास्तव का साक्षात्कार, हमेशा की तरह अंक की कहानियाँ और लघुकथाएँ, कविताएँ, नज़्म सुभाष की ग़ज़लें तथा अन्य सामग्री भी पठनीय है !

-अशोक 'अंजुम' संपादक : अभिनव प्रयास (त्रैमासिक) स्ट्रीट-2, चन्द्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद)क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
मोबाइल: 09258779744

***

पूरी टीम को बहुत बहुत बधाई

दोनों पत्रिकाएँ 'विभोम स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' अक्टूबर-दिसम्बर 2019, मिलीं। धन्यवाद आपका। 'विभोम-स्वर' को उलटते-पलटते सब से पहले ध्यान संपादकीय पर ही जाता है। इस बार सुधा जी हमें विचारधारा की संकरी गली में ले गईं और हम सब ने उस अहसास को शब्दों में देख / पढ़ लिया जो हर बुद्धिजीवी के मन-मस्तिष्क पर प्रहार कर रहा है। असहिष्णुता की आग में मनुष्य के साथ देश तक धधक रहे हैं और आम आदमी गुमराह हो कर समाधान ढूँढ़ रहा है। रूढ़िवादी ताकतों का शामियाना पूरे विश्व को ढक रहा है। यह स्थिति सचमुच शोचनीय है। आशा है स्थिति समय रहते सुधरेगी।

'विभोम-स्वर' में कैनेडा की लेखिका डॉ. हंसा दीप का साक्षात्कार पढ़ कर उनके विषय में बहुत कुछ जाना। सभी कहानियाँ पढ़ी और उनमें विषय की विविधता ने आनन्दित किया। अनुजीत इकबाल की कहानी 'सुजाता के बुद्ध' एक पूर्व ज्ञात कथानक के होते हुए भी अपने आप में एक अनूठी कहानी लगी। वास्तव में सभी कहानियाँ प्रभावित भी करती हैं और हृदय में घर भी कर लेती है। रेनु यादव की कहानी 'छोछक' समाज की कुरीतियों पर गहरी चोट है। सभी कथाकारों को बधाई। पहली लघुकथा 'लव स्टोरी @ साकेत मॉल' ने तो अपनी मिठास से मन मोह लिया। अमृता प्रीतम के विषय में सब कुछ जानने के बावजूद उनके विषय में पढ़ना मन को सुकून देता है। उनकी कविता 'मैं तुझे फिर मिलूँगी' उनकी बेहतरीन रचना है।

डॉ. अफ़रोज़ ताज का यात्रा यात्रा संस्मरण एक बार फिर से हमें भारत दर्शन के लिए ले गया। भारत में खान-पान, रस्मों-रिवाज़, रहन-सहन और बोलियों की इतनी विविधता है कि हर चार कोस पर एक नया भारत ही बसता है। अफ़रोज़ भाई ने अपने आलेख में ठीक ही लिखा है कि-किताबों में पढ़ कर भारत को नहीं जाना जा सकता, भारत से पहचान बनाने के लिए वहाँ जाना पड़ता है। आलेख में हास्य व्यंग्य का पुट इसे और भी पठनीय बना देता है। कविताएँ पढ़ते-पढ़ते विशाखा मुलमुले की दूसरी कविता 'चयन प्रक्रिया' पर जैसे दृष्टि जम ही गई - 'सुख-दुःख की थाली से हम चुनने बैठते हैं सुख और दुःख चुन लेते हैं'। जीवन की कैसी विडम्बना है कि परिस्थिति के सूप से चुनना तो चाहिए फूल लेकिन हम कंकड़ चुन लेते हैं। बधाई विशाखा जी जीवन के इस सही विश्लेषण की। हमारी धरोहर में मेरे आलेख 'कीकली कलीर दी' को स्थान देने के लिए धन्यवाद। आख़िरी पन्ने में पंकज सुबीर जी ने हिन्दी भाषा के स्वाभिमान की बात कह कर आज के लेखक को सचेत किया है।

'शिवना साहित्यिकी' के आवरण पृष्ठ की कविता ने रुला दिया। क्या सचमुच हम उन्नति के पथ पर हैं ? पत्रिका में प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षाएँ पुस्तकें पढ़ने का आमन्त्रण देती हैं।

दोनों पत्रिकाओं की पूरी टीम को बहुत बहुत बधाई और अशेष मंगल कामनाएँ।

-शशि पाधा
वर्जिनिया,यू एस

***

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे।

-सादर संपादक मंडल

आलोचना रचना की होनी चाहिए रचनाकार की नहीं

(आलोचक डॉ. विजय शर्मा से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

आज तक मैंने वैश्विक (भारतीय और प्रवासी) कथाकारों, कवियों के इंटरव्यू लिए हैं पर किसी आलोचक का इंटरव्यू नहीं लिया। किसी रचना पर आलोचना करते समय आलोचक का क्या दृष्टिकोण होता है, परखने के लिए क्या मापदंड अपनाए जाते हैं। इन्हीं सब जिज्ञासाओं के समाधान के लिए सोचा इस बार एक आलोचक का इंटरव्यू लिया जाए, मेरी तरह औरों की भी कुछ उत्सुकताएँ होंगीं तो मैंने समालोचक, सिनेमा विशेषज्ञ, विश्व साहित्य अध्येता और प्राध्यापक डॉ. विजय शर्मा से ऑनलाइन बातचीत की। प्रस्तुत है विजय जी से हुई बातचीत-

प्रश्न : विजय जी प्रश्न आम है, हर इंटरव्यू से पहले पूछा जाता है। पर इससे पाठक साक्षात्कार देने वाले से जुड़ जाता है, कई बार पाठकों की जानकारी के लिए भी यह प्रश्न पूछा जाता है। आपकी साहित्यिक यात्रा कैसे शुरू हुई या आपकी साहित्य के प्रति रुचि कैसे हुई ?

उत्तर : मेरे परिवार में साहित्यिक वातावरण था भी और नहीं भी। मेरे बाबा जो केवल पढ़ना जानते थे और अपना हस्ताक्षर करने के अलावा लिखना नहीं जानते थे, मुशायरों के बहुत शौकीन थे। उन्हें ढेरों शेर याद थे। रात को रेडियो में कान लगा कर मुशायरा सुना करते थे। नाना जी कई भाषाओं के विद्वान थे। उनकी मातृभाषा पंजाबी थी जिसमें वे कुछ लोगों से बात करते थे। वे संस्कृत के विद्वान थे और वेद-उपनिषद् पठन-पाठन, शास्त्रार्थ उनके कार्य थे। वे अपनी डायरी और ख़तो-किताबत उर्दू में करते थे जैसा कि उन दिनों पंजाबियों का चलन था। हम लोगों से हिन्दी बोलते थे, इंग्लिश पढ़ते थे लेकिन बोलने-लिखने के लिए उसका उपयोग नहीं करते थे। पिताजी की एक छोटी-सी लाइब्रेरी थी जिसमें हिन्दी-इंग्लिश साहित्य था जहाँ से छिपा कर मैंने साहित्य पढ़ना शुरु किया। छिपा कर क्योंकि सात-आठ साल का बच्चा विश्व साहित्य पढ़े इसकी अनुमति कैसे मिले। इसी से मैंने पहले 'एक अनजान औरत का ख़त' (हिन्दी अनुवाद) पढ़ा। मैंने अपनी नानी को नहीं देखा लेकिन उनकी किताबें पढ़ीं। जिनमें से राजा लक्ष्मण प्रसाद का शाकुंतलम् का अनुवाद पढ़ना याद है यह एक पहली किताब थी जो मैंने पढ़ी। मैंने पहले भी कहीं लिखा है कि मेरा पढ़ना अनुवादों से प्रारंभ हुआ शायद इसीलिए मैं खुद भी खूब अनुवाद करती हूँ। नानी के भंडार से पाक शास्त्र की एक किताब की भी याद है और इसीलिए शायद मुझे नए-नए पकवान बनाने का भी शौक है।

घर में 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आता था। पुस्तक मासिक योजना के अंतर्गत हर महीने किताबें पोस्ट से आया करती थीं। पिताजी का मानना था पढ़ना (शिक्षा) तो केवल विज्ञान चाहिए। वे स्वयं इंजीनियर थे और सबसे बड़ी संतान होने के कारण मुझे भी इंजीनियर बनाना चाहते थे। जब वे नानावती-सिल्विया केस इंग्लिश अख़बार से पढ़ कर उसका तर्जुमा माताजी-मौसी को सुनाते थे तो मैं भी सुनती थी। मगर बच्चों का साहित्य पढ़ना उनकी दृष्टि में अपराध था। माताजी जासूसी उपन्यास खूब पढ़ती थीं। बाद में मैं पढ़ती और वे सुना करती थीं। एक दिन पिताजी ने मेरी डायरी और कॉपी देख ली जिसमें कविताएँ, शेर, गीत और तमाम किताबों से मनपसंद अनुच्छेद मैंने लिखे हुए थे। और मुझे बहुत मार पड़ी। उनके अनुसार मुझे सिर्फ़ कोर्स की चीज़ें पढ़नी चाहिए, ये सब बेकार की चीज़ें नहीं।

मेरा पढ़ना-लिखना जारी रहा और आज यह मेरी पहचान है। 35 साल एक इंग्लिश मीडियम के ट्रेनिंग कॉलेज में एडुकेशन पढ़ाते हुए भी साहित्य लिखा-पढ़ा। अगर लिखूँ-पढ़ूँ न तो ज़िंदा न रह पाऊँगी। खाने-पीने-साँस लेने की तरह मेरे लिए यह भी आवश्यक है। तब भी किताबें-पत्रिकाएँ खरीदी हैं जब पास में फ़ूटी कौड़ी नहीं होती थी।

डॉ. विजय शर्मा
पूर्व एसोशिएट प्रोफ़ेसर, विज़िटिंग प्रोफ़ेसर हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी तथा राँची एकेडमिक स्टाफ़ कॉलेज।
प्रकाशित पुस्तकें: अपनी धरती, अपना आकाश: नोबेल के मंच से (द्वितीय संस्करण); वॉल्ट डिज़्नी: ऐनीमेशन का बादशाह; अफ्रो-अमेरिकन साहित्य: स्त्री स्वर; स्त्री, साहित्य और नोबेल पुरस्कार,(द्वितीय संस्करण); विश्व सिनेमा: कुछ अनमोल रत्न; सात समुंदर पार से... (प्रवासी साहित्य विश्लेषण); देवदार के तुंग शिखर से; हिंसा, तमस एवं अन्य साहित्यिक आलेख; क्षितिज के उस पार से; स्त्री, साहित्य और विश्व सिनेमा; बलात्कार, समलैंगिकता एवं अन्य साहित्यिक आलेख; सिनेमा और साहित्य: नाज़ी यातना शिविरों की त्रासद गाथा; तीसमार खाँ (कहानी संग्रह); विश्व सिनेमा में स्त्री (संपादन); नोबेल पुरस्कार: एशियाई संदर्भ; महान बैले नृत्यांगनाएँ; कथा मंजूषा; विश्व की श्रेष्ठ 25 कहानियाँ (अनुवाद); लौह शिकारी (अनुवाद) विशेष: अतिथि संपादन 'कथादेश' दो अंक, 'हिंदी साहित्य ज्ञानकोश' में सहयोग, पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, आलेख, पुस्तक-फ़िल्म-समीक्षा, अनुवाद प्रकाशित, आकाशवाणी से पुस्तक-फ़िल्म समीक्षा, कहानियाँ, रूपक तथा वार्ता प्रसारित। दो पाण्डुलिपि प्रकाशनाधीन।

डॉ. विजय शर्मा
9-10, 326 न्यू सीताराम डेरा, एग्रिको,
जमशेदपुर 831009 झारखंड
मोबाइल: 8789001919, 9430381718
ईमेल: vijshain@gmail.com

प्रश्न : विजय जी, सब लेखकों की तरह क्या आपने भी पहले पहल कविता, कहानी लिखी या शुरू से ही आलोचना की ओर ही उन्मुख हुईं।

उत्तर : जी, आपने सही कहा, अन्य अधिकाँश रचनाकारों की तरह मैंने भी कविता से शुरुआत की। स्कूल में मेरी पहचान इसी से कायम हुई थी। छात्राएँ- टीचर आपस में बात करती हुई कहतीं- अरे वही लड़की न जो परीक्षा में भी कविता बना कर लिखती है। मैं परीक्षा में भी उदाहरण के लिए कविता रच कर अपनी बात कहती थी। मैं नहीं कहूँगी कि ये बड़ी ऊँचे दर्जे की कविताएँ थीं, अधिकतर ये तुकबंदियाँ होती थीं। मैं शेर भी कहती थी। मेरी डायरी शेर और ग़ज़लों से भरी रहती थी। खुद भी लिखती थी और जहाँ से कुछ सुनती-पढ़ती और अच्छा लगता तो नोट कर लेती थी। कॉपी में गीत भी लिख रखती थी। मगर जैसा कि मैंने कहीं और लिखा है यह सारा कुछ मैंने एक दोपहर छत पर ले जा कर जला दिया। कहानियाँ भी लिखी हैं। कहानी संग्रह की एक पुस्तक 'तीसमार खाँ एवं अन्य कहानियाँ' नाम से प्रकाशित भी है, लेकिन मैं खुद को कहानीकार नहीं मानती हूँ। दिमाग में कहानियाँ चलती रहती हैं मगर पेपर या कम्प्यूटर पर नहीं आ पाती हैं।

आलोचना की सहज प्रवृति मैं खुद में पाती हूँ। जब भी कुछ पढ़ती अथवा फ़िल्म देखती हूँ स्वत: उसकी अच्छाइयाँ और कमियाँ दर्ज करती चलती हूँ। कभी यह मन में दर्ज होता जाता है कभी कागज़-कलम ले कर बाकायदा दर्ज करती हूँ। कई बार यह गुण-दोष विवेचन केवल अपने लिए होता है और कई बार बाद में इसे विस्तार दे कर प्रकाशित भी कराया है। अब तो प्रकाशक, लेखक और संस्थाएँ जैसे साहित्य अकादमी आदि समीक्षा के लिए किताबें भेजती हैं। हाँ, मैंने अपनी सीमा तय की हुई है। मैं केवल गद्य की समीक्षा करती हूँ, काव्य पर काम नहीं करती हूँ। गद्य की कोई भी विधा हो सकती है। चाहे वो कहानी-उपन्यास हो या फ़िर आत्मकथा-जीवनी, पत्र, यात्रा साहित्य अथवा रिपोतार्ज। कथा और कथेतर गद्य दोनों पर काम करती हूँ। इसी तरह उन्हीं फ़िल्मों की समीक्षा लिखती हूँ जिन्हें देखा होता है और जो दिल के करीब होती हैं, जो देखने के बाद भी हॉन्ट करती हैं। छिछली फ़िल्में मैं देख नहीं पाती हूँ, रुचि भी नहीं है और समय भी नहीं है।

प्रश्न : आपने कब महसूस किया कि आपके भीतर एक आलोचक है। बिना प्रवृत्ति के आलोचना करना मुश्किल है। हर कोई आलोचक नहीं बन सकता। आलोचना की ओर जाने का कारण?

उत्तर : वैसे तो सोच-विचार कर आलोचना की ओर नहीं गई। कब शुरुआत हुई यह बताना मुश्किल है। यह एक प्रक्रिया है एक दिन में अचानक पैदा नहीं हुई होगी। लिखती गई, संयोग से प्रकाशित भी होता गया तो पता चला कि साहित्य की दुनिया में मुझे लोग इस विधा के लिए जानने लगे हैं। और जब एक बार यह पहचान बनी तो ज़िम्मेदारी का शिद्दत से एहसास हुआ और खूब उत्तरदायित्व के साथ यह काम करने का प्रयास करती हूँ। इस विधा में टिकने का एक कारण है अपने विवेक पर भरोसा। मुझे लगता है कि मेरे भीतर साहित्य की समझ है और मैं समीक्षा का कार्य बखूबी कर सकती हूँ। कैसा करती हूँ यह तो दूसरों के तय करने की बात है, मैं कैसे कह सकती हूँ। चूँकि किसी दबाव में यह कार्य नहीं करती हूँ अत: जैसा समझ में आता है लिखती हूँ किसी को अच्छा लगेगा या बुरा लगेगा यह सोच कर नहीं लिखती हूँ। यह जान कर अच्छा लगता है कि पाठक मुझ पर विश्वास करते हैं। मैं व्यवहारिक आलोचना करती हूँ, सैद्धांतिक आलोचना मैंने अब तक नहीं की है।

प्रश्न : विजय जी, एक आलोचना, समीक्षा और समालोचना में क्या अंतर होता है या क्या अंतर देखना चाहिए?

उत्तर : समीक्षा, आलोचना, समालोचना में फ़र्क है भी और नहीं भी। कई बार ये शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। समीक्षा, आलोचना और समालोचना सब अच्छी तरह, भलीभाँति सम्यक रूप से देखना है। समालोचना और समीक्षा में गुण-दोष दोनों पर ध्यान दिया जाता है। जबकि रूढ़ि है कि आलोचना में केवल मीन-मेख निकालने का कार्य होता है, मात्र छिद्रान्वेषण किया जाता है। लेकिन यह आलोचना का पूरा अर्थ नहीं है। आलोचना एक गहन कार्य है, एक व्यापक कर्म है। आलोचना में विश्लेषण की मात्रा अधिक होती है। बिना विश्लेषण के आलोचना संभव नहीं है। आलोचना मात्र ग़लतियाँ निकालना नहीं है। आप एक फ़िल्म देख कर आते हैं और तत्काल संक्षेप में उसकी कहानी, अभिनेताओं के नाम, उनके अभिनय, गानों पर फ़ौरी टिप्पणी करते हैं यह समीक्षा कहला सकती है मगर आलोचना नहीं है। आलोचना सारगर्भित होती है। औचित्यपूर्ण विवेचना आलोचना का रूप ले लेती है। विशद विवेचन गहन अध्ययन के बाद ही संभव होता है।

आलोचना के लिए व्यापक अध्ययन, मनन-चिंतन की आवश्यकता होती है। जिस विधा की आलोचना की जा रही है उस विधा के तत्व, उसके सिद्धांतों, उसकी भाषा का पर्याप्त ज्ञान होना आवश्यक है। उस विधा की विभिन्न प्रवृतियों की जानकारी के बिना आलोचना सम्यक न होगी। उचित मूल्यांकन के लिए स्पष्ट दृष्टिकोण यानी स्पष्ट विचार होना अत्यावश्यक है। आलोचक का निरपेक्ष होना, निर्मम होना बहुत ज़रूरी है। अन्यथा आलोचना या तो चारण स्तुति हो जाएगी अथवा निजी दुश्मनी निकालने का साधन। जबकि आलोचना कृति की होनी चाहिए कृतिकार की नहीं। इसे वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। व्यक्तिगत पसंदगी-नापसंदी के प्रभाव से आलोचना ऊपर रहनी चाहिए। इसे पूर्वाग्रह से मुक्त होना चाहिए।

पंडित श्यामसुंदर दास ने कहा है, साहित्य जीवन की व्याख्या है और आलोचना उस व्याख्या की व्याख्या है। तो आलोचना के लिए जीवन की समझ भी होनी आवश्यक है। जीवन में भले ही बुद्धि की प्रधानता न हो लेकिन आलोचना के लिए बुद्धि की प्रधानता आवश्यक है, यहाँ दिल से काम नहीं चलता है। आलोचना को सरल, सुबोध होना चाहिए। उसे संप्रेषणीय होना चाहिए। मात्र पाण्डित्य प्रदर्शन आलोचना नहीं है।

प्रश्न : विजय जी, समय परिवर्तन शील है। आज कथा साहित्य में तीन पीढ़ियाँ सृजनरत हैं। एक आलोचक के नाते आप तीनों पीढ़ियों के कथा साहित्य में क्या अंतर महसूस करती हैं?

उत्तर : यह प्रसन्नता की बात है, हिन्दी कथा साहित्य में आज तीन पीढ़ियाँ सक्रिय हैं। तीनों पीढ़ियाँ अपने समाज, अपने अनुभवों को कथा साहित्य में पिरो रही हैं। मेरी दृष्टि में कहानी की मुख्य दो श्रेणियाँ हैं- अच्छी और लचर कहानी। हमेशा से कुछ अच्छी और ढेर सारी लचर कहानियाँ लिखी जाती रही हैं। अभी भी तीनों पीढ़ियों की कहानी देखें तो यह बात सही लगती है। किसी से सारी अच्छी कहानियों की उम्मीद नहीं की जानी चाहिए न ही यह संभव है। प्रसन्नता की बात है खूब कहानियाँ लिखी जा रही हैं, अच्छी-बुरी सब। प्रकाशन की सुविधा भी है। हाँ, सोशल मीडिया पर मिली वाहवाही के गुरूर में पड़ कर अपने लेखन को हल्के ढंग से कभी नहीं लेना चाहिए। सदैव अपने लिखे को माँजते रहना चाहिए। खूब पढ़ना चाहिए ताकि पता चले देश-दुनिया, साहित्य में क्या चल रहा है। नोबेल पुरस्कृत साहित्यकार लोसा ने कहा है, लिखने के लिए पढ़ना ज़रूरी है।

प्रश्न : कथा साहित्य में युवा पीढ़ी आज बहुत प्रयोग कर रही है। कहानी की भाषा और मुहावरे में परिवर्तन आया है। युवा पीढ़ी पर यह दोष भी लगाया जाता है कि प्रयोगों के चलते कभी-कभी कहानी में बौद्धिकता बढ़ जाती है और क़िस्साग़ोई समाप्त हो जाती है। इसके बारे में आप क्या सोचती है?

उत्तर : मेरे लिए कहानी का सबसे बड़ा गुण है कहानीपन। पाण्डित्य प्रदर्शन के चक्कर में यदि यह नष्ट होता है तो मैं उसे अच्छी कहानी की संज्ञा नहीं दे पाऊँगी। भाषा और मुहावरे परिवर्तित होने चाहिए। परिवर्तन को रोकने की कोशिश व्यर्थ है, वह होगा ही। समय के साथ बदलाव होगा ही, भाषा में भी। सवाल नई-पुरानी भाषा का नहीं है, हर कहानी अपनी भाषा की माँग करती है, भाषा कहानी कहने योग्य होनी चाहिए। इसका स्वागत होना चाहिए। प्रयोग अवश्य होने चाहिए, फ़िर कहूँगी कोई भी प्रयोग कहानीपन की कीमत पर मुझे स्वीकार्य नहीं होगा।

प्रश्न : यह बात भी सुनने में आती है कि कई आलोचक जिस विचारधारा या गुट के होते हैं, उसी विचारधारा के अनुरूप लिखी गई रचनाओं की आलोचना वे करते हैं और उन्हें ही आगे ले जाते हैं, इस तरह बहुत सी उत्तम रचनाएँ और रचनाकार अज्ञात ही इस दुनिया से चले जाते हैं। आप आलोचना किन पैमानों पर करती हैं?

उत्तर : मेरे ख़याल से आपका तात्पर्य खास विचारधारा यानी मार्क्सवाद से है। मैं समझती हूँ मार्क्सवादी विचारधारा के बाहर भी कहानियाँ रची जाती हैं और रची जानी चाहिए। कोई भी विचारधारा चाहे वह वाम हो अथवा दक्षिण कहानी को सीमित-संकुचित करती है। हर कहानी में विचार होता है मगर वह अंत:सलिला की भाँति, भोजन में नमक की भाँति होना चाहिए अन्यथा कहानी मात्र प्रोपेगंडा बन कर रह जाएगी। ऐसी रचना भले ही कुछ और हो वह कहानी कदापि नहीं हो सकती है। जीवन के कई रंग, कई आयाम होते हैं, केवल आर्थिक पहलू को रेखांकित कर कहानी लिखना, किसी खास एजेंडे के तहत कहानी लिखना कहानी की आत्मा को मार देना है। यह तो वैसे ही हो गया जैसे आजकल पेटी में फ़िट बैठाने के लिए तरबूज को बतिया अवस्था में ही चौकोर डिब्बे में रख देते हैं ताकि उसका आकार बाद में गोल न हो कर पैकिंग की सुविधानुसार हो। या फ़िर पेड़ को काट-छाँट कर शेर या भालू की शक्ल दे देना और उसकी प्राकृतिक बढ़त को नष्ट कर देना, बाधित कर देना।

हर कहानी कुछ कहने का प्रयास करती है। आलोचक को कहानी के भीतर प्रवेश कर उसी कहन को पकड़ने की कोशिश करनी चाहिए। कहन का यह प्रयास कितना सफ़ल या असफ़ल हुआ है उसी का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। पहले से निर्धारित खाँचे में कहानी को बैठाने का मतलब है पैजामे के नाप का आदमी को काटना जबकि पैजामा आदमी के नाप का काटना चाहिए। इसीलिए हर कहानी को एक ही कसौटी पर कसने का सवाल ही नहीं उठता है। रचना आलोचना की मोहताज नहीं होती है, उसे पाठक की स्वीकृति मिलनी चाहिए। समय की छलनी में छन कर जो रचनाएँ रह जाएँगी वे ही सार्थक होंगी न कि आलोचकों द्वारा उछाली जा कर।

प्रश्न : आप आलोचना या अनुवाद किसे करने में सहज रहती हैं और आनंदित होती हैं?

उत्तर : मैं किसी दबाव के तहत न तो आलोचना करती हूँ और न ही अनुवाद। मन की मौज से यह सब करती हूँ। क्योंकि इनसे मेरी रोज़ी-रोटी नहीं चलती है। हिन्दी में लिख कर रोटी नहीं कमाई जा सकती है। ऐसा मेरा अनुभव है। इससे रोटी चलने का प्रश्न नहीं उठता है। मुझे जब कुछ रुचता है तो लेखन करती हूँ। लिखने का दबाव मेरे अंतर से आता है। जब लगता है लिखे बिना नहीं रहा जाएगा तब लिखती हूँ। लेकिन खुशी की बात है लिखने का यह आंतरिक दबाव अब तक बराबर बना रहा है। जितनी सहजता से आलोचना लिखती हूँ, उसी सहजता से अनुवाद करती हूँ। हाँ, अनुवाद में अधिक परिश्रम लगता है, मगर मज़ा आता है, संतोष मिलता है। जब लगता है कुछ सार्थक लिख लिया तो खुशी और संतोष की अनुभूति होती है और मन अपने आप गुनगुनाने लगता है (मुझे गाना नहीं आता है), घर में सबको पता चल जाता है मैंने कुछ संतोषजनक लिख लिया है। कुछ समय यह मगन मन बना रहता है फ़िर अगले लेखन की ओर चल पड़ती हूँ।

प्रश्न : आपने विदेशी साहित्य का हिन्दी में अनुवाद किया है, पर हिन्दी साहित्य का अंग्रेज़ी में अनुवाद नहीं किया, ऐसा क्यों?

उत्तर : हाँ, मैंने खूब सारे विदेशी साहित्य का हिन्दी अनुवाद किया है। पढ़ना-पढ़ाना मैं इंग्लिश में करती रही हूँ। पहले भी आपको बताया है 35 साल इंग्लिश मीडियम के कॉलेज में पढ़ाया। लेकिन कुछ अकादमिक पेपर छोड़ कर लिखा सदा हिन्दी में। मैं हमेशा कहती हूँ, मैं खाती इंग्लिश का हूँ, गाती हिन्दी का हूँ। हिन्दी मेरी मातृभाषा है, हिन्दी में लिखना मुझे सहज लगता है, इसमें खुद को मैं बेहतर तरीके से अभिव्यक्त कर पाती हूँ। हिन्दी से इंग्लिश में अनुवाद की बात न कभी सोची, न कभी इसका अवसर आया। हिन्दी से इंग्लिश अनुवाद प्रकाशन की अपनी कठिनाइयाँ हैं। इसके लिए मेरे पास समय भी नहीं है क्योंकि हिन्दी को लेकर तमाम योजनाएँ मेरे पास हैं, जिन्हें पूरा कर पाऊँगी शक है। उम्र के इस दौर पर लगता है जो शुरू किया है उसे पार लगा पाऊँ तो

यही बहुत होगा। एक मज़ेदार बात बताऊँ, बोलचाल की इंग्लिश मेरी मातृभाषा की भाँति हो गई है, क्योंकि आजकल मैं सपने इंग्लिश में भी देखती हूँ, सपनों में इंग्लिश भी बोलती हूँ।

प्रश्न : इस सदी के किन-किन कथा लेखकों से आप प्रभावित हैं?

उत्तर : कई लेखकों से प्रभावित हूँ मगर अफ़सोस उन जैसा लिख नहीं सकती हूँ। चूँकि अपने काम के सिलसिले में विश्व साहित्य का अध्ययन अधिक करती हूँ अत: उन्हीं से प्रभावित भी हूँ। मुझे गैब्रियल गार्बा मार्केस, सलमान रुश्दी, अमिताभ घोष का लेखन अच्छा लगता है। अरुन्धति राय के पहले उपन्यास ने भी प्रभावित किया था। इस सदी की बात करूँ जिसके दो दशक बीतने को हैं तो ओरहान पामुक, मारियो वर्गास लोसा, जॉन एम. कोट्ज़ी, इमरे कर्टीज प्रभावित करते हैं। ये सब नोबेल पुरस्कृत साहित्यकार हैं। ऐसे कई और भी हैं, जिनका लिखा रुचता है।

प्रश्न : प्रवासी साहित्य की ओर रुचि कैसे हुई ?

उत्तर : बहुत पहले से बिना यह जाने पढ़ रही थी कि यह प्रवासी साहित्य है। अब जब उलट कर सोचती हूँ तो उषा प्रियंवदा को शुरू से पढ़ रही थी। उनके शुरूआती लेखन से। 'पचपन खंबे लाल दीवारें' पढ़ा तब तक जानती नहीं थी कि यह प्रवासी साहित्य है शायद तब तक यह पद प्रचलन में भी नहीं था। 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' निरंतर पढ़ती थी। जब राजेंद्र यादव ने फ़िर से 'हंस' निकाला तो उसे लगातार पढ़ा। उसी में सुषम बेदी की कहानियाँ पढ़ीं, तब भी नहीं सोचा कि प्रवासी कहानी पढ़ रही हूँ। फ़िर 'प्रवासी साहित्य' शब्द प्रचलन में आया इसे ले कर बहस होने लगी, पत्रिकाएँ 'प्रवासी साहित्य' विशेषांक निकालने लगीं तो पता चला कि अरे! यह तो अलग है। पत्रिकाओं में ही आपको पहले पढ़ा, अर्चना पैन्यूली, उषा राजे सक्सेना, तेजेंद्र शर्मा को पढ़ा। और आप लोगों के लिखे का भी आनंद लिया।

प्रश्न : पिछले दस वर्षों में प्रवासी साहित्य में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया है, आप इसके बारे में क्या सोचती हैं?

उत्तर : इंटरनेट के कारण यह संभव हुआ है। पहले प्रवासी रचनाकारों के लिए प्रकाशन एक समस्या थी। भारत से दूर बैठ कर भारत में रचना प्रकाशित करवाना मुश्किल होता था। रचना पोस्ट से भेजनी होती थी जिसकी न तो प्राप्ति की सूचना मिलती थी और खुदा न खास्ता छप गई तो उसकी भी ख़बर नहीं मिलती थी। मगर अब ऐसा नहीं है। न केवल रचना भेजना सरल हो गया है, प्रकाशक का मुँह जोहने की ज़रूरत नहीं रह गई है। ई-मेल, व्हाट्सअप, ब्लॉग तथा अन्य सोशल मीडिया ने भी सहायता की है। आवागमन आसान हो गया है। आप भारत आते-जाते रहते हैं और अपने साथ पत्र-पत्रिकाएँ, किताबें ले जाते हैं। अपनी रचना की खोज-ख़बर रख सकते हैं।

प्रश्न : प्रवासी साहित्य आपकी नज़र में...

उत्तर : मेरी नज़र में यह भी साहित्य है। यहाँ भी अच्छी, बहुत अच्छी और सामान्य तथा घटिया रचनाएँ आपको मिल जाती है।

प्रश्न : आजकल आलोचकों की कमी खटक रही है, और आलोचना के स्तर पर भी प्रश्नचिह्न उठ रहे हैं। आपकी क्या राय है ?

उत्तर : आलोचकों की संख्या सदैव कम रही है उसमें अच्छे आलोचक तो हर काल में इतने कम रहें हैं कि अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। मैं हिन्दी आलोचना को ले कर निराश-हताश नहीं हूँ। आलोचना एक कठिन विधा है और बहुत लोग कभी भी इस दिशा में नहीं आते हैं, नहीं आ सकते हैं, नहीं आना चाहते।

प्रश्न : आप प्राध्यापक रही हैं, क्या प्राध्यापक आलोचक पर कभी -कभी हावी होता है ?

उत्तर : मैंने शिक्षण किया है। 35 साल कॉलेज में पढ़ाया है। पर मेरी स्थिति तनिक भिन्न है। कॉलेज में मेरे शिक्षण का विषय शिक्षा (एडुकेशन) रहा है। बी एड और एम एड पढ़ाया है और इंग्लिश मीडियम में पढ़ाया है। और लिखना मैं हिन्दी में करती हूँ। तो जब आलोचना करती हूँ तो मेरे आलोचक पर मेरे प्राध्यापक के हावी होने का सवाल नहीं पैदा होता है। हाँ, प्रोफ़ेसर भी सही-ग़लत, उचित-अनुचित का भेद करता है। उसमें भी विवेक होना चाहिए और आलोचक में भी ये गुण होने चाहिए। बिना अध्ययन-मनन-चिंतन के न तो शिक्षण कार्य हो सकता है और न ही आलोचनाकर्म संभव है। शिक्षक का कर्त्तव्य है छात्र के आंतरिक गुणों-संभावनाओं के पल्वन में सहायता करे। आलोचक का गुण है रचना के भीतरी तथ्यों का उद्घाटन करे। रचना जो कहना चाह रही है उसे खोल कर बताए। रचना की संभावनाओं, उसके मर्म से पाठक को परिचित कराए। इस तरह आलोचना रचना का विस्तार है। आलोचना स्वयं रचना है। यह 'चेक एंड बैलेंस' का काम भी करती है।

प्रश्न : आलोचना ने आपके कितने दोस्त और कितने दुश्मन बनाए?

उत्तर : आलोचना ने दोस्त-दुश्मन बनाए हैं या नहीं इस पर कभी विचार नहीं किया। कई ऐसे लोगों की रचनाओं पर लिखा है जिन्हें नहीं जानती थी, रचना प्रकाशित होने पर कभी-कभी ऐसे लोगों का फ़ोन आ जाता है, कभी उनसे बाद में भी संपर्क बना रहता है, कभी बस धन्यवाद का एक फ़ोन। कभी कुछ भी नहीं। दोस्ती पनपी या नहीं, कभी इस पर गौर नहीं किया। हाँ, एकाध बार ऐसा हुआ है कि किसी की रचना में कोई कमी दिखाई, तो उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कह दिया, उन्होंने अपने लेखन की सफ़ाई दी (जो लेखक को नहीं देनी चाहिए, सफ़ाई देने का मतलब है वह अपनी बात सही तरीके से कह नहीं पाया है। ऐसा मुझे लगता है।)। मगर मुझे नहीं लगता है कोई दुश्मनी पैदा हुई। बाद में ऐसे लोगों ने खुद दूसरी रचनाएँ पढ़ने का आग्रह किया है। प्रकाशित होने के बाद रचना रचनाकार की नहीं रह जाती है। चूँकि मेरी विधा और विषय हिन्दी के अधिकाँश रचनाकारों से भिन्न हैं, अत: मेरी किसी से कोई स्पर्द्धा नहीं है, न ही मैं किसी के लिए कोई खतरा हूँ। मुझे नहीं लगता है साहित्य जगत् में मेरा कोई दुश्मन है या मेरे बेबाक लिखने के कारण कोई दुश्मन बना है। मेरी लिखी आलोचना कभी भी किसी को चोट पहुँचाने के लिए नहीं होती है। जैसा मैंने पहले कहा है आलोचना रचना की होनी चाहिए रचनाकार की नहीं और सदैव यही मेरा प्रयास होता है।

***

गिरेबाँ

सिनिवाली शर्मा

घर को जगमगाती धूप, अब अपनी थकी और उदास किरणें समेट कैक्टस पर जा टिकी। कमरे से आई ज़र्द आवाज़ ने सन्नाटा तोड़ा, ''सुनो, ज़रा बाहर ले चलो।''

प्रत्युत्तर में केवल दरवाज़ा हिला।

यह आवाज़, उसी देह से आई जो उदासी और सन्नाटे के बीच रहा करती है। उसकी नज़र सामने धूल से भरी दीवार घड़ी पर टिक गई।

''वक्त बीत गया... या बीत नहीं रहा... !''

ढलती हुई शाम जब उदास और बेनूर होती है तो खनकती सुबह और मचलती दोपहर, बार-बार ज़ेहन में तैर जाती है।

वो शादी के बाद, पति संग जीवन डोर बाँध गाँव आई थी। जीवनसाथी की नौकरी शहर में थी। पर, वो अपनी माँ का आँचल नहीं छोड़ता और वहीं माँ, पुरखों की मिट्टी ! इस प्रेम में पति गाँव से ही रोज़ नौकरी करने शहर जाता।

शादी के बाद वह गाँव तो आई पर यहाँ की मिट्टी से जुड़ नहीं पाई। चूल्हे का धुआँ, कुएँ का पानी, मकई की रोटी, पति के पुरखों की माटी उसे नहीं भाई। शादी से पहले, कुछ समय वो शहर में रही थी। उसने वहाँ का रंग-ढंग देखा था। वह उन चटख रंगों में डूब जाना चाहती थी। लेकिन नए जीवन का सवेरा गाँव में हुआ, जहाँ का रंग धूसर था।

वह जब अपने टूटे सपनों को देखती तब मन मसोसती। कभी शिकायत, कभी उलाहने तो कभी गुस्से में जीवन साथी के आगे उफनते दूध की तरह हो जाती। दो जोड़े पंख ला देने को कहती, जिनके सहारे दोनों शहर पहुँच जाएँ और अपने सपनों का चटख रंगों से सजा महल बनाएँ। लेकिन पति लोकलाज की दुहाई देता, अकेली माँ का वास्ता देता। अपनी बात कभी दुलार से समझाता तो कभी-कभी हिदायत की मीठी गोली भी खिलाता।

शादी तय होने, माँग में सिंदूर लगने और पहली बार ससुराल से नैहर लौटने तक... अकेली बहू है! सास पलकों पर रखेगी, घर की रानी होगी! ये बातें उसके लिए गले में चमचमाती अशर्फी की तरह थीं। लेकिन शादी के कुछ महीने बाद ये चौवन्नी बराबर भी नहीं रही।

ससुराल बसते ही, ता-ता थैय्या ! अकेली बहू मतलब सौ झमेला। ज़िंदगी ही बेगानी हो गई।

सब क्या कहेंगे, कैसी बहू है ? घर का ज़रा भी ध्यान नहीं ! एक बेटे का ही आसरा है और बहू ने तो बेटे को सिंदूर की डिबिया में बंद कर लिया है। नौकरी के बाद पति को इन्हीं बातों का सबसे पहले ध्यान आता। लेकिन घर की शांति और पत्नी की ज़रूरतों का ख़्याल करते हुए साल में एक -दो बार किसी ना किसी बहाने घर से बाहर उसे उन्मुक्त उड़ान देता लेकिन रात होते-होते लौटकर वही...वही... वही, घर, सास और ज़िम्मेदारी!

जीवन में शौक-मौज के नाम पर बूँद-बूँद ही मिला। सास के नाम पर जीवन और जवानी दोनों कुर्बान। पर सास अकेली प्राणी हो तब तो ! चार भाइयों की इकलौती बहन और नैहर का रास्ता भी घंटे भर का। उस पर भी आफ़त यह कि भतीजों की भरमार। कोई ना कोई दंडवत् करने पहुँच ही जाता। सबसे अधिक परेशानी ठिठुरती ठंड में होती जब... तिल सकरात का भाड़ा, एक के बाद एक चारों भाइयों के यहाँ से आता। दही, कतरनी चूड़ा,

सिनिवाली शर्मा
द्वारा- अविनाश शर्मा, फ़्लैट नं. 8, प्लॉट नं. 876, शालीमार गार्डन एक्स्टेंशन- 1, साहिबाबाद, ग़ाज़ियाबाद, उप्र 201005
मोबाइल : 8083790738

तिलकुट, सास की और उसकी साड़ी, उसके लिए संदीप की चूड़ी और बंगाली सिंदूर। जो आता एकाध दिन रुक ही जाता। ख़ातिरदारी के बाद बिछावन पर जाते-जाते उसकी कंपकंपी छूट रही होती, देह थक कर चूर हो रहा होता अलग से।

सास, बहू और बेटे पर प्रेम लुटाती रहती। उसी प्रेम ने तो उसे जेल की सज़ा दे दी। आज़ाद होने की कई बार कोशिश की पर अभी तक की गई सभी कोशिशें नाकाम ही रहीं।

जिस तरह देवकी को कृष्ण ने कारावास से मुक्त किया उसी तरह उसके बेटे, गौरव का जन्म भी इसी पुण्य कार्य के लिए हुआ। प्रेम में पगा कुछ साल तो बीता। लेकिन एक दिन बेटे के स्वर्णिम भविष्य को ध्यान में रखकर माता ने विद्रोह कर दिया। जीवनसाथी के लाख समझाने पर भी वो टस से मस नहीं हुई। पति की सीख और हिदायतें, सब बेकार। सास की चातक दृष्टि भी बेकार।

उसे अच्छी तरह पता था, पढ़ाई का अवसर हाथ से निकल गया तो कारावास की उसकी सज़ा पता नहीं कितने साल और बढ़ जाएगी। नज़दीकी शहर में अच्छा स्कूल है। बेटा दूसरे बच्चों की तरह पढ़ सकता है लेकिन आजकल बच्चे स्कूल जाने से पहले प्ले स्कूल जाते हैं। आगे चलकर इन्हें चाँद छूना है, गाँव में रहा तो यहाँ के दलदल में फँसकर रह जाएगा।

सास, बहू को जानती थी। उसने अपने बेटे से कहा, ''आने वाले समय की सोचो।'' बेटे ने कुछ सोचा फिर माँ को साथ चलने के लिए कहा पर माँ आँसू छुपाते हुए बोली, ''दूर तो नहीं जा रहे हो, यहाँ से बस दो घंटे का ही तो रास्ता है जहाँ तुम नौकरी करते हो, वहीं अपना घर बना लो और बसा लो। मैं बीच-बीच में देखने आ जाया करूँगी।'' भीतर उमड़ रहे आँसू कह रहे थे, मेरा कलेजा तो तुम लोगों के साथ ही चला जाएगा।

शहर की हवा थी, पानी था, ज़मीन थी, वो थी, जीवनसाथी था और बेटा था। वहाँ उनका सपनों का घर बन गया। पति ने अब हिदायत और सीख देना कम कर दिया।

एक दिन पति ने पत्नी से कहा, ''हमारे घर में एक कमरा माँ का भी होना चाहिए, उसकी जब मर्ज़ी होगी आकर रहेगी।''

''हमारा बेडरूम, बेटे का स्टडी रूम, उसका लिविंग रूम, फलाँ-फ़लाँ रूम... तो मुश्किल है। हाँ.. वह लास्ट वाला रूम ठीक रहेगा उनके लिए। छोटा ज़रूर है पर ठीक रहेगा उनके लिए। शांति भी मिलेगी उन्हें।''

अब जो ठंड आती, गेंदे और गुलदावदी की खुशबू से नहा कर आती। पर अब वह ठंड नहीं आती जब रिश्तेदारी के नाम पर उसकी देह थक कर चूर हो जाती और ठंड से हाथ-पैर की उँगलियाँ ठंडी पड़ जातीं। हाँ, सास बराबर आती। चूड़ा, दही, तिलकुट, बड़ी, पापड़, अचार सहेज कर लाती।

शुरू-शुरू में आती तो कुछ दिन रुकती भी। पोते पर प्यार लुटाती। बेटे का घर घूम-घूम कर देखती। मन कसकता या जियरा में हिलोर उठता, ये तो बस उनका मन ही जानता। बहू बेटे को स्कूल पहुँचाने, लाने, ट्यूशन और स्पोर्ट्स क्लास अटेंड कराने में लगी रहती। इन क्लासों के बीच वह अपना क्लास बदल चुकी थी।

जीवनसाथी देख, समझ और परख सब रहा था लेकिन उसने भी बहुत कुछ सोच कर बड़ा सा ताला अपने मुँह पर लगा रखा था। लेकिन उसके भीतर कुछ कचोटता रहता। कोई शाम रही होगी जब भावना की लहर में बह कर पति ने चुप वाला ताला खोला और बोला, ''माँ तो अब बहुत कम आती हैं यहाँ। जब आती हैं तो थोड़ा समय उनके लिए भी निकाला करो।''

सामने की लहर शांत बनी रही।

पति फिर बोला, ''हर बार दशहरा में बस एक दिन के लिए मैं गाँव जा पाता हूँ। वहाँ भी तुम लोगों के बिना घर सूना-सूना लगता है।'' पर वह यह नहीं बोल पाया कि हर बार माँ की आँखों में सूनापन और गहरा होता जाता है।

इस बार लहर, लहराई। ''हमारा घर तो यही है, तुम्हें जाना हो तो जाओ। बस बहुत दिन रह ली। वहाँ का ध्यान रखने के लिए तो तुम हो ही। हर महीने पैसे भेज ही देते हो। मैंने तो कुछ नहीं कहा। अब हमारा बेटा भी बड़ा हो रहा है। कल को बाहर पढ़ने जाएगा तो पैसों के बारे में सोचना पड़ेगा। मुट्ठी कसनी होगी।''

लेकिन उन्हें आगे नहीं सोचना पड़ा। इन बीते सालों में सास ने बहुत कुछ देखा-सुना और सहा। एक दिन चुपचाप चली गई सूने घर से, वहाँ, जहाँ जाने के बाद कोई नहीं आता।

जीवनसंगिनी ने गीता की दो चार पंक्तियाँ जो कहीं पढ़ी थी उसका उपयोग किया और शरीर के नश्वर होने की बात समझाई। कर्म करने के नाम पर बेटे के भविष्य का वास्ता देकर जीवनसाथी को शोक की लहर से खींच कर बाहर निकाल लिया।

समय अपनी रौ में बहता रहा और एक दिन दोनों के जीवन के आनंद का एकमात्र स्रोत उनका बेटा गौरव चाँद छूने की कल्पना को सच करते हुए किसी बहुत बड़ी कंपनी में बहुत बड़े पद पर चाँद की तरह सुशोभित हो गया।

चाँद तो ज़मीन पर कभी नहीं उतरता बस उसे निहारा जाता है। अब माँ भी बस बेटे को दूर से टकटकी लगाए देखने लगी। सास की रिक्त जगह अब उसकी थी। जीवनसाथी भी बिना कोई सीख और हिदायत दिए अपनी माँ के पास जा चुका था।

अब गाँव के घर से निकलकर सूनापन और संघनित होकर शहर वाले सपनों के घर में कुंडली मारकर बैठ गया।

मोबाइल की घंटी से सूनापन हल्का सा सांद्र हुआ। उसकी तंद्रा टूटी। मोबाइल कान से लगाया। हलो कहा और आँखें पनीली होते-होते रुक गईं और भारी आवाज़ में अच्छा कहा और मोबाइल रख दिया।

उसने लेटे-लेटे खिड़की से देखा, धूप अब कैक्टस के पौधों पर से उतरकर ज़मीन पर गिरे सूखे पत्तों पर ठहरी थी।

दिन के उजाले में भी अब अँधेरा घुलने लगा था, उसने कुछ सोच कर फिर आवाज़ दी, ''सुनो थोड़ी देर के लिए बाहर ले चलो।''

''बाहर तो बहुत ठंड है, बस अँधेरा होने ही वाला है'', देखभाल के लिए आज ही आई नई लड़की ने कहा।

''अब तो देह ही ठंडी होने वाली है'', लड़की की ओर देख कर बोली ''तुम कहाँ थी ? पहले भी तुम्हें आवाज़ दी थी।''

''मेरी माँ का फ़ोन आ गया था शायद

उनसे बात करते हुए नहीं सुन पाई।''

''माँ, अच्छा तुम्हें पता तो है तुम्हारी माँ कैसी है, उनकी सेहत...'' बोलना चाहा पर चुप रही।

कुछ देर बाद बोली, ''बहुत अच्छा करती हो बेटी।''

''आप यह शॉल ओढ़ लीजिए, थोड़ी देर आपको बाहर बैठा देती हूँ फिर भीतर आकर दवाई ले लीजिए।''

''दवाई, कोई ऐसी दवाई देना जो मेरा इंतज़ार खत्म कर दे।'', फिर सँभलते हुए बोली-''सुनो सामने कैलेंडर में कल की तारीख काट देना। काला पेन वहीं टेबल पर रखा है। मेरा बेटा कल फिर नहीं आएगा। बहुत काम रहता है उसे। बहू समाज सेवा में लगी रहती है और बच्चों को अपने क्लासेज से छुट्टी नहीं मिलती।'' बोलते हुए उसकी आँखें सूखे पत्तों में न जाने क्या खोजने लगीं।

''मेड से कहना आज खाने का जी नहीं है।''

''लेकिन सोने से पहले आपको दवाई भी लेनी है। दोपहर में भी नहीं खाया था आपने। थोड़ा सा कुछ भी खाना ही होगा!''

''भूखी कहाँ रहती हूँ...? ग़म खाती हूँ!''

लड़की ने उसके हाथों को धीरे से सहलाया, ''मैं दलिया बनाने बोल देती हूँ।''

''तब तो तुम मुझे बिछावन पर भेज दोगी घंटे भर में।''

बाहर से भीतर आते हुए वो एक बंद कमरे की ओर इशारा करते हुए बोली, ''अब तुम मुझे उस लास्ट वाले कमरे में ले चलो।

''अभी तो आप बाहर से आई हैं, थोड़ी देर लेट जाइए।''

''नहीं, पहले ले चलो। बच्चे मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे और मेरा बीता हुआ कल भी। उस कमरे में जी भर कर बातें करती हूँ बच्चों से, शैतानियाँ देखती हूँ, कहानियाँ सुनाती हूँ और वे मेरे कंधों पर झूलते हैं।''

देखभाल करने वाली लड़की आज ही आई थी। सुबह से इस घर का सूनापन पढ़ रही थी। फिर उसे लगा डिप्रेशन का असर हो सकता है।

तुरंत सँभलते हुए बोली, ''ठीक है, फिर लौट कर टाइम से खाना और दवाई लेकर बिछावन पर जाना है।'' उसने किसी भोली बच्ची की तरह ज़िद करते हुए कहा, ''पहले ले तो चलो।''

लड़की ने बताया हुआ कमरा खोला। बिछावन पर एक गोलमटोल बड़ी सी गुड़िया सोई थी। नीचे फर्श पर दीवार के सहारे एक बड़ा सा गुड्डा आँखों के सामने बेतरतीब बाल लटकाए हँस रहा था।

'देखो, इन बच्चों को देखो, मेरा घर सूना कहाँ है ! अभी इनको बाहर निकाल दूँ तो सारा घर सिर पर उठा लेंगे। इनकी बातें और फरमाइशें हैं कि कभी पूरी ही नहीं होतीं। सारी रात यह हमें जगाए रखती हैं। देखो अभी कैसे सो रहे हैं। यह नीचे शैतानी करके हँस रहा है। इसकी मम्मी इसे चाँद पर भेजेगी, रुपया कमाने वाली मशीन बनाएगी। पर आदमी... !'' अलमारी पर रखे हुए खाली मर्तबान को देखते हुए बोली, ''कल का अँधेरा कभी मैंने घना किया था... अभी मेरा अँधेरा इतना घना है... पता नहीं उसका अँधेरा और कितना डरावना होगा !'' बोलते हुए उसकी आँखें छल छला गईं।

दूसरे दिन की उसकी शुरूआत रोज़ की तरह दवाइयों से हुई। लेकिन जो सामने लड़की दवाई दे रही थी वह दूसरी लड़की थी। उसने विस्फरित आँखों से पूछा, ''तुम! वह कहाँ गई ?''

''मैम वह अपने घर चली गई।''

''घर, मुझे बता कर नहीं गई !''

''मैम आप सो रही थीं। वह आपको डिस्टर्ब नहीं करना चाहती थी। कल रात ही उसकी माँ की तबीयत अचानक खराब हो गई। वह जाने की तैयारी करने लगी तो मैंने कहा भी, और भी तो लोग होंगे तुम्हारी माँ के पास। पर उसने कहा, हैं... पर मैं तो नहीं हूँ। फिर मैंने कहा, इस तरह जाओगी तो नौकरी ! कॉन्ट्रैक्ट ! उसने कहा नौकरी तो दूसरी मिल जाएगी पर माँ ! और वह चली गई।''

पानी का ग्लास पकड़ाते हुए लड़की बोली, ''पानी !''

पानी ग्लास से छलक कर बाहर गिर रहा था। उसकी आँखों के सामने उसका अपना ही अक्स था।

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

vibhom.swar@gmail.com

एक पीला उदास आदमी

हर्षबाला शर्मा

वो घर लौट आता था..... इतने धीमे चलकर कि खुद उसके पैरों को भी यह अहसास होना मुश्किल था कि वो लौट रहा है। जैसे आते और जाते पैरों को यह पता नहीं होता कि वे आ रहे हैं या जा रहे हैं, वैसे ही उसे भी अहसास नहीं होता था कि वो घर लौट आता है। यह एक रोज़मर्रा का रूटीन काम था, जिसे करने के लिए किसी अतिरिक्त योग्यता की ज़रूरत न थी। वैसे उसमें एक अतिरिक्त योग्यता थी, वो कभी भी कुछ बन सकता था, जब जैसी ज़रूरत उससे बड़े ओहदे वाले को हो, वो बन सकता था। लेकिन उसकी यह योग्यता भी सीमित थी वो चाहे भी तो उनसे बड़ा नहीं बन सकता था या फिर वो इसके बारे में सोच भी नहीं सकता था।

यूँ भी वो एक स्कूल मास्टर था- इतना सोचने की न तो उसमें योग्यता थी, न ही माद्दा! आठवीं कक्षा को पढ़ाने वाला एक अदना सा स्कूल मास्टर! उसने डिग्री भी 'हिन्दी' जैसे सबसे उपेक्षित विषय से ली थी। कभी-कभी इसी शर्म से डूब मरने की इच्छा भी होती थी उसे, खासकर तब, जब वह रेलवे स्टेशन के पास से गुज़रता और दीवारों पर लिखे भौंडे विज्ञापनों 'यौन समसयाओं के लिए मिले या लिखें' में से वो यौन ऊर्जा पाने की बजाय 'समसयाओं' की वर्तनी सुधारने की कोशिश करने लगता। एक बार तो लड़कों के झुण्ड ने उसका मज़ाक भी उड़ाया था 'का ताक कर करोगे मास्साब। तुम किसई काम के ना दीखते हमें।' वो बेचारा बताना चाह कर भी कह नहीं पाया 'हम तो भइये उ वर्तनी सुधार रिए थे बस!' कुछ बोल ही नहीं पाया। मुँह लटका कर रह गया।

ऐसे ही मुँह लटकाए वो स्कूल पहुँच जाता था और घर लौट आता था। जैसे जाने के लिए चला गया हो और आने के लिए आ गया हो। कभी-कभी वो सोचता कि ये पेड़ भी तो कहीं आते-जाते नहीं पर गाड़ी में बैठ जाओ तो आते-जाते लगते हैं। वो अपने पैरों को जाँचता। कहीं ऐसा तो नहीं कि गाड़ी में बैठकर कोई उसे आता-जाता देखता हो पर वो असल में कहीं जाता ही नहीं हो। ये ख़्याल उसे बहुत डरावना लगता पर यही सोचते हुए वो घर पहुँच जाता।

वो एक पीला उदास आदमी था। एक बार उसे पीलिया हुआ था-करीबन दस साल पहले। उसके बाद उसका शरीर एकदम मरगिल्ला सा हो गया था। उसे लगता कि ये पीला रंग उसके शरीर पर तभी से चिपक गया था- कभी छूटता ही नहीं। उसके सामने तो नहीं पर उसकी पीठ पीछे उसके साथी मास्टर भी उसे 'पीलू' और 'मरखन्ना' कहकर बुलाते। उसकी कक्षा के बच्चे यूँ तो कभी पढ़ने में रुचि लेते नहीं थे पर जिस दिन उसका मज़ाक उड़ाना हो, उस दिन किताब से लाइन ढूँढ़कर पूछते 'पथ में बिछ जाते बन पराग', 'मास्साब जे परआग कौन से रंग का होय है!' और दूसरा कहता 'जे ससुर मास्साब के रंग का ही

हर्षबाला शर्मा
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
इंद्रप्रस्थ कन्या महाविद्यालय
31, शामनाथ मार्ग
नई दिल्ली 110054
मोबाइल: 9868892661
ईमेल: ip.harshbala@gmail.com

तो!' और पूरी क्लास ठठाकर हँस देती। उसे बहुत कोफ़्त होती पर फिर वो सोचता कि उसके बहाने लोग हँस तो रहे हैं, अब दुनिया में हँसने के मौके इतने कम हैं, कि यह सोचकर ही वह खुश हो जाता कि वो किसी के हँसने के काम आ रहा है। यहाँ वो एक जोकर की भूमिका में था। कब जोकर और मास्साब गड्ड-मड्ड हो जाते, उसे पता ही नहीं चलता।

उसमें वो सारी अतिरिक्त योग्यताएँ थीं जो किसी भी कमज़ोर आदमी में होती हैं या होनी चाहिए। हेडमास्टर साहब भी जानते थे कि कौन सी भूमिका में कौन फिट हो सकता है। यूँ तो प्रिंसिपल साहब के सामने वो भी पॉमेरियन में बदल जाते जिसका शौक तलवे चाटने जैसा कुछ होता पर उसे देखकर उनकी बत्तीसी खिल उठती और वो बुलडॉग में तब्दील हो जाते। कहीं जतन से सारे दिन छिपाया गया सब्ज़ी का थैला बाहर निकल आता और वो कहते 'सुबह आते हुए चार भटे और थोड़े टमाटर उठाए लाना' 'पीलू' का मुँह थोड़ा और लटक जाता। हेडमास्टर साहब कहते 'थोड़ा सोसण जैसा फील कर रहे हो का!' जवाब में वो कुछ कहना चाहता पर तब तक हेडमास्टर साहब जा चुके होते और हवा में तैरता उनका वाक्य रह जाता 'देखो जे सब्ज़ी अच्छी न हुई तो पैसे तुमई को देने पड़ेंगे।' और मज़ेदार था कि उनको एक भी दिन सब्ज़ी पसंद ही नहीं आती थी 'लो हम तो पहले ही बताय दिए थे। अब तुम जानो, तुम्हाई ग़लती, तुमई भुगतो।'

यहाँ वो एक 'खोए हुए आदमी' की भूमिका में होता जिसे कुछ कहने की इच्छा तो होती पर समय यूँ ही निकलता चला जाता।

कुछ समय पहले तक वो प्रिंसिपल साहब के लिए एक अदना सा गुमशुदा आदमी था और इसी बात से थोड़ी-बहुत राहत थी। तब तक इतवार की सुबह को वो एक चमत्कार की तरह देखा करता; जैसे कोई ऐसा दिन जो हीरे की तरह अचानक हाथ आ गया हो और फिर हीरे की तरह हाथ से खो भी जाए। वो इतवार को सुबह-सुबह उठ जाता ताकि जितनी देर उस हीरे को हाथ में रखने का सुख मिले, वो उसे ले सके। एक दिन ऐसे ही इतवार की

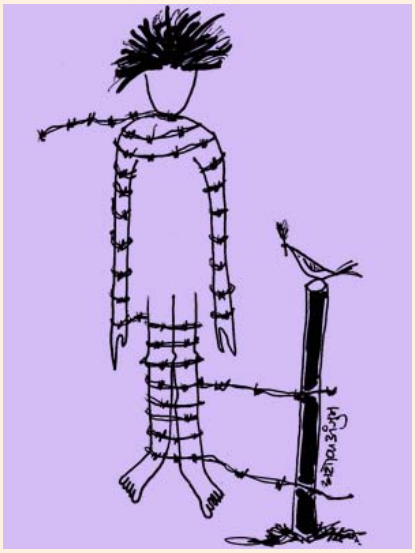

अल्लसुबह वो घर की चीज़ों को देखने की कोशिश में था जब उसे कोने में रखा टाईपराइटर नज़र आया- जैसे कोई बरसों पुराना साथी मिल जाए, ऐसी ही कशिश थी आज भी उसके भीतर। इस नौकरी में आने से पहले हिन्दी की किसी गुमनाम सी पत्रिका में वो टाइपिंग का काम करता था... खट-खट चलती उँगलियों से बड़ी-बड़ी बातें करने वाले लेख टाइप किया करता था। उन दिनों वो 'सपने देखने वाले आदमी' की भूमिका में था। हर लेख को टाइप करते हुए उसे लगता कि जैसे यह लेख दुनिया बदल देगा। लेखकों को उन दिनों वो बड़े आदर सम्मान से देखता। इतनी बड़ी बातें वही लिख सकता है, जो उस पर यकीन रखता है। उसे लगता लेखक किसी दूसरी ही दुनिया से आते हैं और उन्हें देख पाने भर से वो खुद को खुशनसीब मानने लगता।

वो उन दिनों अक्सर टाइप करते हुए गुनगुनाता था, जो इस बात का सबूत था कि वो अभी युवा था और मूर्ख था। इन दिनों वो सपने देखता था और तो और सोचता था कि वो उन्हें पूरा भी कर लेगा। पर एक दिन संपादक ने उसे एक लेखक महाशय के घर किसी काम से भेज दिया। ये वही लेखक महाशय थे जो उन दिनों स्त्री पक्ष पर धड़ल्ले से लिख रहे थे और हर सम्मेलन में छाए रहते थे। उसके पैर तो उनके घर के सामने जाकर ही रुके जहाँ से ज़ोर-ज़ोर से किसी स्त्री के रोने की आवाज़ आ रही थी। अंदर वही लेखक महाशय गन्दी गालियों की अविरल धारा बहा रहे थे जिसका आनन्द पूरा मोहल्ला ले रहा था। उसके पैर वहीं थम गए और हवा में एक वाक्य तैरता रह गया 'अबे जो लिखते हो, थोड़ा अमल भी कल लिया करो। मोहल्ले में जीना मुश्किल है, लेखक बने फिरते हैं।'

वो सदमे की हालत में लौट आया। अब वो एक 'उदास आदमी' की शक्ल में था। ये उसके जीवन का एक बड़ा झटका था। संपादक महोदय को इस्तीफ़ा सौंपने गया तो उन्होंने बड़े प्यार से समझाया 'बेवक़ूफ़ाना काम न करो, कह रिए हैं तुमसे! अबे इन लिजलिजे आदमियों के लिए नौकरी छोड़ रिए हो। आसानी से न मिलेगी भइये। अबे वो हिन्दी की कविता न पढ़ी ... एक आदमी रोटी बेलता है/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है/ जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ ....मैं पूछता हूँ- यह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है। तो साले, जब सब मौनी ही बने हैं- तो तुम्हारी शहीदी को कौन समझेगा भइये- जाओ रे नौकरी करो। जे भी तुमको समझा रहे हैं हम क्योंकि तुम आदमी सई हो। नहीं तो मरो, जाओ, हमको क्या!'

पर वो खुद को तैयार नहीं कर पाया। उसने खुद को अब एक नई भूमिका के लिए तैयार किया जो इसी स्कूल के मास्टर की थी- जहाँ के प्रिंसिपल के लिए वो कुछ दिन पहले तक अपरिचित था- और वह इसी में संतुष्ट था।

उस दिन जब टाइपराइटर हाथ में आया तो धूप खिली देख वो उसे बाहर ले आया। अपनी उँगलियों को भी उसने उस दिन चमत्कार की तरह देखा- अभी तक उँगलियाँ खट-खट करना नहीं भूली थीं। और बस उसी समय सामने से प्रिंसिपल साहब गुज़र रहे थे। आदतन प्रिंसिपल साहब को देख वो खड़ा हो गया। यानी अब प्रिंसिपल साहब को पता चल गया कि यह पीला सा आदमी उनके काम का हो सकता है और इस ख़याल से उनकी आँखें चमक उठीं। 'तो हिन्दी टाइप कर लेते हो! कल मिलो आके। हमारे ऑफ़िस से तो कई पत्र भेजने होते हैं। स्कूल के बाद टाइप करो तुम! ससुर पहले काहे नहीं बताए तुम!'

वो मना करना चाहता था, पर गली के कुत्ते की तरह हल्की सी भूँक भी न निकली। बाद में वो यही सोचकर शुक्र

मनाता रहा कि बच्चे के जूते पालिश करते हुए उसे साहब ने नहीं देखा। न जाने...

वो एक बेचारा सा दिखने वाला आदमी था जिसकी वैसी ही दिखने वाली बीवी भी थी। जब वो घर लौटता तो बीवी अक्सर धनिया तोड़ती या सब्जी काटती-आटा गूँथती मिलती। प्याज़ की गंध से भरी और मटमैली सी साड़ी पहने उसकी बीवी रोटी बनाती- और वो चुपचाप खाकर सो जाता। 'घर' उन दोनों के सन्नाटे में पसर जाता। कई बार उसका मन करता कि वो अपनी बीवी के लिए कोने की छोटी सी दुकान से गजरा ले आए पर लड़कों के झुण्ड को देखकर उसकी हिम्मत ही न होती! फिर बीवी को भी यह सुहाता या नहीं, पता नहीं। कई बार वो सोचता कि अपनी बीवी से बात करे, पर इस उदास सन्नाटे में अब उससे बातें नहीं हो पाती थीं। बस यही तय था कि रात को बीवी सारा काम निपटाकर उसकी चारपाई पर आ जाएगी। वो आते ही सो जाती। पास की चारपाई पर सोता बच्चा कभी कूँ-कूँ करता तो बीवी उसकी चारपाई से उठकर बेटे की चारपाई पर चली जाती। वो कभी कोई शिकायत नहीं करती थी। कौन जाने कभी उसके मन में भी सपने रहे हों पर अब वो एक उदास आदमी की उदास बीवी थी जिसके पास कोई सपना नहीं था। मरगिल्ली ज़िंदगी के मरगिल्ले अहसास थे जिनको जोड़ने की कोशिश में उसे नींद आ जाती थी।

रात को वो 'तारे गिनने वाले आदमी' की भूमिका में होता। उसे हैरानी होती कि आकाश में कितने तारे हो सकते हैं और अगर वो उसे गिनता रहे तो कितनी रात लग जाएँगी इस काम में! फिर वो सोचता कि क्या इन्हें भी सब्ज़ी लानी होती होगी? या फिर ये किसी स्कूल में जाते होंगे? अच्छा अगर वो भी तारा बन जाए तो! दोनों अपनी-अपनी दुनिया में तारे गिनते हुए सो जाते- सुबह उठकर अपने-अपने अँधेरों का सामना करने के लिए।

इन दिनों उसका दिमाग चक्करघिन्नी की तरह घूमता था। वो एक टाइपिस्ट का काम छोड़कर शिक्षक बनने आया था- दिमाग में यही फ़ितूर था कि जो काम टाइपिंग से नहीं हुआ, उसे वह शिक्षक बन कर कर लेगा। यानी दुनिया को बेहतर बनाने

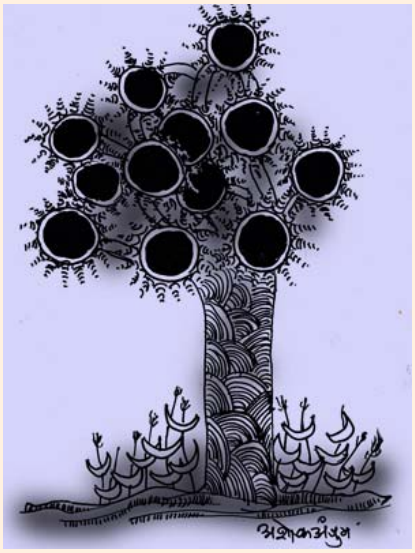

का काम! इस फ़ितूर को दिमाग़ में भरने में सिर्फ वही दोषी नहीं था बल्कि कहीं-न-कहीं मुक्तिबोध भी इसके लिए दोषी थे। ये हिन्दी के ऐसे लेखक थे, जिन्हें पढ़ने के बाद आदमी के मन में विचार उठने लगते थे और विचार हमेशा घाती होते हैं, ये वो अच्छी तरह जानता था। उसके क़स्बे में सबने समझाया था कि ये 'ख़तरनाक साहित्य' है, पर न जाने किस बेचैनी ने उससे इस 'ख़तरनाक' साहित्य को पढ़ने का काम करवा लिया था।

पर अब उसे फिर से 'टाइपराइटर' बनने के लिए कहा जा रहा था! उसके साथ कई परेशानियाँ थीं, सबसे बड़ी परेशानी यह कि वो टाइपिंग करते हुए सिर्फ आँख नहीं हो पाता था, दिमाग़ भी हो जाता था। अब उसे समझ आने लगा था कि 150 विद्यार्थियों पर एक शिक्षक को क्यों नियुक्त किया गया जबकि फंड तो तीन शिक्षकों का था। दो शिक्षकों में प्रिंसिपल साहब और हेडमास्टर साहब के घर वालों के नाम थे। कई नाम तो कतई फ़र्ज़ी थे, विद्यार्थियों के भी और शिक्षकों के भी। अब उसे खुद से डर लगने लगा था, न जाने कब वो क्या कर बैठे और क्या कह दे! अब वो और ज़्यादा छटपटाने लगा था।

उसका नया नाम पीलू से 'सिरदर्दी' पड़ने वाला था क्योंकि अब उसे सर के एक हिस्से में तेज़ दर्द रहने लगा था और अक्सर यह हिस्सा सुन्न हो उठता था। अब उसे शब्दों के पीछे भी पढ़ना आने लगा था जैसे जब प्रिंसिपल साहब लिखवाते कि 'बच्चन को दिया जाने वाला भोजन पूरा ही नहीं पड़ता। ज़्यादा फंड दिया जाना चाहिए। 500 बच्चन को पूरी खुराक नहीं मिलती।' तो वो समझता कि 200 बच्चे 500 कैसे बन जाते हैं और बंद कमरों से भोजन कैसे गायब हो जाता है और कहाँ! जब प्रिंसिपल साहब लिखवाते '20 शिक्षक अपनी तनख़्वाह बढ़ाने को धरना देई बैठे हैं।' तो वो समझता कि कुल जमा चार शिक्षक 20 क्यों और कैसे बन जाते हैं!

पर इस समझ से उसे ही नहीं उसके स्कूल में भी दिक़्क़त होने लगी थी। अब लोग उसके पास रुकते नहीं थे, दूर-दूर रहने लगे थे। उस दिन जब हेडमास्टर साहब ने उसे आवाज़ लगाई 'भैय्यन जरा ऊ भाटे ले आते' तो पीलू में न जाने कहाँ का ठहरा गुस्सा भर आया। हेडमास्टर साहब के थैले को उठाकर पीलू ने उस दिन उनके ही सिर पर मार दिया। विद्यार्थी देख रहे थे। अचानक विद्यार्थियों के सामने उसकी इमेज बदल गई। वे हैरानी से उसे देख रहे थे। अब उसे और देर तक पीलू नहीं कहा जा सकता था। पहली बार फ़ाइलों में उसके नाम की खोजबीन शुरू हुई। विद्यार्थी हैरान रह गए जब धीमे से एक दूसरे मास्साब ने बताया कि पीलू का असली नाम 'यशवर्धन' है।

'इत्ता बड़ा नाम, तभी तो हम कहें, जे आदमी यस पाएगा ई, नाम में ही देख लो अब।' एक विद्यार्थी ने घोषणा जैसी की पर दूसरे मास्साब ने डपट कर उसे बिठा दिया 'चुप साले बेपेंदी के लोटे' विद्यार्थियों के मुँह लटक गए। लेकिन उत्सुकता बनी रही। वे जानना चाहते थे कि यशवर्धन मास्साब कब पीलू मास्टर बन गए! इन बातों से बेखबर वो धीमे पैरों से घर लौट आया.. जैसे आने के लिए आ गया हो और जाने के लिए कुछ बाकी न बचा हो!

यह आदमी अब व्यवस्था के लिए ख़तरा बन रहा था। उसके दिमाग के भीतर न जाने क्या चल रहा था। टाइपिंग करते वक्त प्रिंसिपल ने उसे कुछ कागज़ उठाते हुए देखा जिन पर वो कलम से कुछ नकल कर रहा था। इस ख़याल ने प्रिंसिपल साहब के मन में एक गहन उदासी भर दी 'ससुर इस क़स्बे में जिस पर भरोसा करो, वई बाल की खाल निकालने में लग जाता है।' इस ख़्याल ने उन्हें और उदास कर दिया कि भरोसा शब्द का इस वाक्य में बेजा ही इस्तेमाल हो गया

है और कोई हिन्दी का बढ़िया शब्द वो यहाँ रख नहीं पाए! पर यह तय हो गया था कि उसे इस तरह छोड़ा नहीं जा सकता था 'न जाने कब फजीता करवा दे और का रख दे ससुर किसी के सामने!'

प्रिंसिपल साहब को भी वो डरावना लगने लगा था। पहली बार आदमी पहचानने में उनसे ग़लती हुई थी और इसका पछतावा उन्हें उम्र भर रहने वाला था। उस पर एक मुसीबत और कि इन घटनाओं ने उसके शरीर को और पीला कर दिया पर न जाने कहाँ से उसके अंदर का शिक्षक ज़्यादा ही जाग गया। हेडमास्टर साहब के साथ हुई घटना के बाद विद्यार्थी भी उसे सम्मान से देखने लगे थे। शायद इसी से हिम्मत पाकर वो हर कक्षा के बाद विद्यार्थियों के सामने शिक्षित होने और जीने के संबंध पर बात भी करने लगा था। आजकल विद्यार्थी उसे 'यसवर्धन मास्साब' बुलाते थे। पर यह नाम उसे पहले वाले नाम से भी भयावह लगता था -क्योंकि इस नाम से उसे किसी ने कभी पुकारा नहीं था। ये कोई भूला-बिसरा नाम था जिससे बड़े बनने की ख़्वाहिश लार की तरह टपकती दिखाई देती थी। शायद माँ-बाप ने किसी बड़ी इच्छा के चलते उसका ऐसा नाम रख दिया हो। उसे याद आया, माँ कहती थी 'कलक्टर बनेंगे बबुआ, बबुआइन आएगी फिर... टुनक-टुनक करती घूमेगी' इस याद ने उसके मुख पर मुस्कान ला दी। यह उसके जीवन की एक बड़ी घटना थी। विद्यार्थियों ने उसे जैसे स्वप्न में मुस्काते देख लिया था और हैरान हो उठे थे। अब उसके पीछे विद्यार्थी चलने लगे थे। वो एक दुबला पतला मरगिल्ला सा आदमी था जो इतने सारे अचानक हुए हमले बर्दाश्त नहीं कर पाया जैसे इतने दिनों बाद मुस्काने से उसकी आंतड़ियों पर ज़ोर पड़ा होगा या कौन जाने क्या हुआ पर वो बीमार पड़ गया।

उसके बीमार होने वाली शाम को पॉमेरियन और बुलडॉग साथ देखे गए। अब पीलू बीमार था और स्कूल को सही तरीके से चलाए रखने और बाकी शिक्षकों को उसकी बीमारी से बचाने के लिए कुछ निर्णयों की ज़रूरत थी और इसीलिए स्कूल के हित में जो था, शाम को बैठक में पॉमेरियन और बुलडॉग ने कुछ गली मोहल्लों के आवारा कुत्तों की बैठक में वही तय किया। अब उनके पास कोई उपाय नहीं था सिवाय यह साबित करने के कि पीलू के दिमाग़ पर बीमारी का असर हुआ है और कौन जाने सचमुच ऐसा हुआ ही हो, पीलू को पागल घोषित कर दिया गया। पीलू को खुद भी अब लगता कि वह पागल है, न जाने कैसे उसे हेडमास्टर साहब के सिर पर दो सींग नज़र आने लगे थे और प्रिंसिपल साहब के दाँत बड़े-बड़े दिखने लगे थे। अब वह एक पागल आदमी की भूमिका में था। वह दौड़ता-भागता और बच्चों से कहता 'यहाँ मत पढ़ो भैय्यन, इनके जैसे सींग उग आएँगे तुम्हारे। नहीं तो दाँत बड़े हो जाएँगे। सपने भी मत देखन भैय्यन, हम जैसे हो जाओगे।' बच्चे कुछ समझ नहीं पाते 'लौट आओ मास्साब, तुमसे तो कुछ सीखे की उम्मीद बँधी थी हमाई।'

उसकी बीवी मुँह में पल्लू दबा कर दिन रात रोती थी। बच्चा लगातार कूँ कूँ करता था पर अब पीलू कुछ अजीब सी चीज़ें देखने वाले की भूमिका में था-गजरे वाले की दुकान के बाहर उसे बीड़ी पीते मास्टर और विद्यार्थी साथ-साथ नज़र आते जहाँ वो आँख मारकर कुछ गंदे इशारे करते और इसका असर वही हुआ जो होना था कि एक दिन वो ग़ायब हो गया। तीन दिन तक उसकी कोई खोज ख़बर नहीं थी। चौथे दिन रेलवे ट्रैक पर एक कुचली लाश की ख़बर मिली जिसका रंग पीला सा था। उसकी पत्नी को लगा, बालक का रंग भी वैसा ही पीला हो रहा है पर वो कुछ कर न सकी, बस रोती ही रही, देर तक..। अब स्कूल के आस-पास से रात को अजीब सी आवाज़ें आती हैं जैसे कोई गा रहा हो ... 'मर गया देश, जीवित रह गए हम।'

सारी व्यवस्था वैसे ही निर्बाध चल रही थी। स्कूल से खटर-पटर की आवाज़ आ रही थी। बच्चों की चिल्लपों मची हुई थी। बचे हुए तीन मास्टर में से दो बीड़ी पी रहे थे। एक बच्चों पर चिल्ला रहा था। हेडमास्टर साहब ने एक विद्यार्थी को भाटे लाने का हुक्म जारी कर दिया था।.. सब कुछ ठीक था सब जी रहे थे जैसे जीने के लिए जी रहे हों और मरने के लिए मर जाएँगे एक दिन! बस पीलू अनुपस्थित था। बाकी सब ठीक था....।

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2020

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

और शिलाखण्ड पिघलने लगा

डॉ. पूरन सिंह

प्रदीप सर, हाय.....कितने सुन्दर.....घने काले बाल, जो माथे को लाँघते हुए आँखों पर छाए रहते। उतनी ही घनी मूँछें। लम्बा, सुता हुआ चेहरा और उस पर बड़ी-बड़ी आँखें। जब ब्राउन कलर के पैंट पर क्रीम कलर की शर्ट पहनकर आते और क्लास में पढ़ाते तो मैं क्या सभी लड़कियाँ उनकी दीवानी हो जाती। कुछ लड़कियों की शादी हो गई थी। वे उन्हें देखकर उसासें लेतीं। क्वाँरी सोचती, काश प्रदीप सर उन्हें मिलें.....लेकिन मैं.....मैं तो उन्हें पूरे का पूरा ही चाहती। मैं किसी के साथ बाँटना नहीं चाहती। ये बात थोड़ी-थोड़ी प्रदीप सर भी समझने लगे थे।

सेमीनारों, कार्यशालाओं में, मैं उनके साथ ज़िद करके जाने लगी। सोचती, चलो इस बहाने, बात करने, साथ रहने और छूने को तो मिलेंगे प्रदीप सर। लड़कियाँ मुझसे चिढ़ने लगीं। सिलसिला अनवरत चलता रहा और एम.ए.फाईनल ईयर की भी परीक्षाएँ होने लगी थीं।

तभी एक दिन...

लाईब्रेरी में, प्रदीप सर और मैं। अकेले। कॉलेज समय के पश्चात्...

'सर।' मैं धीमे से गुनगुनाई।

'आँ, हाँ। बोलो।' प्रदीप सर ने ऊपर की ओर आँखें की। आँखों पर झूल रहे बालों को सीधे हाथ से ऊपर किया लेकिन बाल पुनः आँखों पर छा गए।

'एक बात कहनी....कहनी थी आपसे।' जीभ साथ ही नहीं दे रही थी। मैं क्या करती।

'कहो।'

'मैं... मैं.....आपको, आपसे मैं... सर मैं..।' बकरी से ज़्यादा, मैं मिमिया रही थी।

सर ने किताब बंद कर दी। फिर हँसकर बोले थे, 'परेशान न होओ। यहाँ कोई क्लास थोड़े ही चल रही है। आप परेशान हो रही हैं। आराम से कहो। जो भी कहना चाहती हो। यहाँ तो बच्चे भी नहीं पढ़ रहे। पूरी लाईब्रेरी खाली है। बोलो क्या कहना चाहती है। बताओ।' प्रदीप सर की इसी विनम्रता पर तो सभी पागल थे।

'सर, मैं आपसे प्यार करती हूँ।' पूरी अश्वशक्ति लगाकर ही तो बोली थी मैं।

'ये तो बहुत अच्छी बात है।' वे फिर बोले थे, 'प्यार का मतलब भी जानती हो।'

'सर, जो प्यार का मतलब जानते हैं, वो प्यार नहीं करते।' वे क्लास में ऐसे ही बोला करते थे। मैंने भी बोल दिया था।

'तुम मेरा यथार्थ जानती हो।'

'यथार्थ और प्यार दोनों अलग-अलग बातें हैं।'

'तुम्हारी उम्र और मेरी उम्र में बहुत अंतर है।'

'प्यार उम्र का मोहताज कब रहा है।'

'तुम्हें तो मेरी जाति भी नहीं पता।'

'जातियाँ तो जानवरों में होती है। इंसानों में शायद नहीं।' मैं जैसे साक्षात्कार दे रही होऊँ।

'मैं बहुत ही गरीब परिवार से रहा हूँ। निर्धनता मेरा सच है।'

'धन का प्यार से कोई संबंध नहीं होता।' मैं यह भी भूल रही थी कि वे मेरे सर हैं। प्रदीप सर। प्यार में ज़रूर ऐसा होता होगा। मैं क्या करती।

'ठीक है। अब जो मैं कह रहा हूँ, उसे ढंग से सुनो।' उन्होंने मेरे पास आकर मेरा चेहरा ठीक अपने चेहरे के सामने करते हुए कहा था। शुरू की बातें तो मैं समझ ही नहीं पाई थी। क्योंकि जब उन्होंने मुझे छुआ था, तो लगा था मंदिर में असंख्य घंटियाँ बज उठी हों जिनमें प्रदीप सर की आवाज़ दब गई हो। सर भी जान गए थे कि मैं उनकी बात नहीं सुन रही थी।

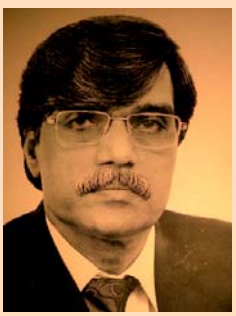

डॉ. पूरन सिंह
240 बाबा फरीदपुरी,
वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली 110008
मोबाइल: 9868846388
ईमेल: drpuransingh64@gmail.com

उन्होंने मुझे धीरे से झकझोरते हुए कहा था, 'दोनों कानों को खोलकर संयमित होकर सुनो। मैं तीन-चार साल के बेटे का बाप हूँ। मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ।'

प्रदीप सर ने सोचा था कि यह उनका अमोघ शस्त्र है इससे परास्त होने से मुझे कोई नहीं बचा सकता। लेकिन....लेकिन जो सच्चा प्यार करते हैं उन पर किसी अस्त्र-शस्त्र का कोई भी असर नहीं होता वे तो अजेय होते हैं।

'हर स्त्री में एक माँ छिपी होती है। मैं आपको प्यार करती हूँ। आप बेटे को बहुत प्यार करते हैं, तो गणित के हिसाब से देखें तो वह मुझे दोगुना ज़्यादा प्यारा होना चाहिए।' मैं पियरे बर्नियर बनी हुई थी।

प्रदीप सर हार गए थे। मैं जीत गई थी।

'ठीक है अपने मम्मी, पापा से बात करना। माँ-पिता से बड़ा तो भगवान् भी नहीं होता। उन्हें दुखी मत करना।' सर की यही बातें तो पागल करने वाली हुआ करती थीं।

मैंने मम्मी-पापा से सारी बातें स्पष्ट बता दी थीं। माँ-पिता ने समझाया भी था। मैं कहाँ मानने वाली थी। दोनों ने हथियार डाल दिए थे।

मैं फिर जीत गई थी।

'ठीक है। कल बुला लो उसे। कुछ बात करनी है।' फिर थोड़े से नाराज़ होते हुए बोले थे, 'बात तो करने दोगी।'

मैंने पापा के गले में बाहें डाल दी थीं। 'बातें करना लेकिन सर को अपमानित करने वाली कोई बात न करना। ध्यान रखना पापा। प्लीज़, मेरे खूब अच्छे पापा।'

'ठीक है। अब हट भी ऊपर से। इतनी बड़ी हो गई है लेकिन बचपना अभी गया ही नहीं इसका। शादी करने को तैयार है लेकिन पापा की खोपड़ी पर सवार रहेगी।' ये बनावटी गुस्सा था पापा का। हम जानते थे।

रात कैसे कटी। मैं क्या जानूँ। कटी होगी कैसे ही। अगले दिन मैं प्रदीप सर को लेकर मम्मी, पापा के सामने उपस्थित थी।

थोड़ी देर कॉलेज की और इधर-उधर की बातें हुई। फिर पापा ने ही शुरू किया, 'यशोधरा और यशवंत मेरे दो ही बच्चे हैं। यशोधरा को मैं उतना ही प्यार करता हूँ जितना यशवंत को। तो ज़ाहिर सी बात है, मैं यशोधरा की शादी में कोई कमी नहीं छोड़ूँगा। फिर भी यदि तुम्हारी कोई इच्छा हो तो बेझिझक बताओ।'

'हाँ, है।' प्रदीप सर बोले थे तो मैं सन्न रह गई। हाय भगवान् ये क्या। इतनी बड़ी-बड़ी बातें करने वाले सर मेरे पापा से कुछ माँगेंगे। हाय राम, दहेज। अब क्या करें।' मैं बिलबिला रही थी। सोच रही थी जैसे पापा से कहा था वैसे ही सर से भी कहना चाहिए था, 'सर चल तो रहे हैं हम लेकिन मेरे पापा को अपमानित करने वाली कोई बात न करना।' काश मैंने सर को पहले समझाया होता। अब। अब क्या होगा।

'तो बताओ।' पापा ने पूछा था और मेरी ओर देख रहे थे मानो कहना चाह रहे हों, 'यही पसंद है तुम्हारी।'

'मुझे केवल यश दे दो पापा। मैं आपके आगे.....।' इसके आगे नहीं बोले थे प्रदीप सर। और हाथ जोड़े खड़े थे।

मैं पागल तो थी ही प्रदीप सर की, अब दीवानी भी हुआ चाहती थी और इसी दीवानेपन में अनायास ही निकल गया था मेरे मुँह से, 'दी...दी...यश दी बेटा....आज से यश तुम्हारी हुई।'

प्रदीप सर सन्न। मम्मी-पापा दोनों मेरी ओर देखें। यशवंत भी मुझे देखने लगा। फिर पापा ही बोले थे, 'शायद यही मैं कहता।'

और मम्मी-पापा, यशवंत, प्रदीप सर और मैं खिलखिलाकर हँसने लगे थे। पापा ने हाथ के इशारे से मुझे अपने पास बुलाया था। खूब प्यार किया था। माँ की आँखों में नमी थी। यशवंत भी छलकने को तैयार था कि पापा ही बोले थे, 'दीवानी। मेरी बेटी दीवानी है।' फिर प्रदीप सर से बोले थे, 'तेईस साल तक मैं यही जानता रहा कि मेरी यशोधरा को कोई मुझसे छीन नहीं सकता लेकिन आपने कब छीन लिया। मैं जान ही नहीं पाया। कुछ तो बात है प्रदीप जी आप में।'

प्रदीप सर ने मुझे देखा था। मैं खुशी से फूली नहीं समा रही थी। मेरे चारों तरफ खुशियाँ ही खुशियाँ थीं।

मुझे पंख लग गए थे। वैसे भी आप जिसे चाहें और वही आपको मिल जाए तब आपसे बड़ा धनवान तो कोई हो ही नहीं सकता।

हम दोनों ने निश्चय किया कि बिल्कुल साधारण तरीके से शादी करेंगे लेकिन पापा ने ज़िद ठान दी, 'ये भी कोई बात हुई। अकेली बेटी है। प्रदीप जी ने साफ मना कर दिया है कि सामान या गहने नहीं चाहिए तो क्या हम शान-शौकत से अपना दरवाज़ा भी न सजाएँ। ये बात हम नहीं मानेंगे आप दोनों की... नो....नॉट....इम्पॉसिबल।' फिर इमोशनल होते हुए बोले थे, 'मेरा वश चले तो मैं अपनी साँसें भी दे दूँ।'

हम दोनों पापा के आगे सरेंडर थे।

मैंने अपनी सभी सहेलियों, कॉलेज के साथियों, अध्यापकों और सभी रिश्तेदारों को शादी पर बुलाया था।

समय पर बारात आई थी। सहबोला बना प्रियांशु गुलगुला सा, गुड्डा सा लग रहा था।

वह मंच पर, कभी प्रदीप सर की गोद में बैठ जाता तो कभी हम दोनों के बीच में, तो कभी मेरी गोद में। सभी खुश थे तो मेरी मामियाँ, चाचियाँ, ताईयाँ, बुआएँ, मौसियाँ अलग- अलग चबौआ डाले थीं, 'हाय दैया, जगमोहन के पास पैसे की कमी थी जो दुजा के लिए ब्याह दई, लड़की.....लालची तो नहीं है जगमोहन.....लौंडिया कौन सी कम है.....कॉलेज में ही फँस गई थी.....अब लगी के आगे बापू का करे विचोरो.....घर पहुँचते ही पहुँचते अम्मा बन जाएगी यशोधरिया।'

जहाँ ये सब रिश्तेदार ऐसी-वैसी बातें कर रहे थे वहीं मेरी सहेलियाँ, 'हे....यशोधरा, सर तुमसे ट्वैल्व ईयर्स बड़े हैं लेकिन यू नो, आई थिंक.....लग ट्वैल्व ईयर्स छोटे रहे हैं।' तो कोई कहती, 'यार कोशिश तो अपन ने भी की थी मगर...नसीब अपना-अपना।' लेकिन इन सभी से अलग मेरी सबसे प्रिय सखी निम्मो, अर्थात् निर्मला शंकर बोली थी, 'मैं कभी ग़लत नहीं थी यस, प्रदीप सर बने ही तेरे लिए हैं। कभी उन्हें कम मत आँकना। प्रियांशु को कभी ये मत महसूस होने देना कि वह तेरा बेटा नहीं है। वैसे तुझे समझाने की ज़रूरत तो है नहीं। तूने प्यार किया है और प्यार में ये सब बकवास नहीं चलती।' मैंने निम्मों से सिर्फ इतना ही कहा था। 'तू मुझे हमेशा ऐसा ही पाएगी। जैसी मैं आज हूँ।'

पूरा शादी समारोह अच्छी तरह सम्पन्न हो गया था।

और सच में पापा ने शादी में कोई कमी नहीं छोड़ी थी। सच कहते थे पापा, उनका वश चलता तो वे अपनी साँसें भी दे देते। काश हर लड़की को मेरे जैसे पापा मिलते।

मैं प्रदीप सर के घर आ गई थी। दो कमरों का छोटा सा घर था, सर का। नौकरी का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने भाई, भतीजों, बहिनों के लिए समर्पित करने वाले प्रदीप सर, मेरे लिए श्रद्धेय थे, और अब मेरे पति, मेरा प्यार।

समय उड़ने लगा था।

मैं प्रियांशु को सुबह तैयार करके प्ले स्कूल भेज देती। वह खुशी-खुशी जाता और ग्यारह बजे तक मैं उसे वापिस ले आती थी। उसे कभी ये नहीं महसूस होने देती कि मैं उसकी दूसरी माँ हूँ। सौतेली वाली बात कभी मेरे दिमाग़ में आई भी नहीं जिसका परिणाम ये हुआ कि प्रियांशु मुझे मम्मा.....मम्मा कहने लगा। वह मुझे मम्मा कहता तो मुझे न जाने कौन सी खुशी मिलती। मैं उसे अपने आँचल में समा लेती। सर देखते तो बेहद खुश होते। कभी कहने लगते, 'तुमने मुझे जीना सिखा दिया यस। मैं तुम्हारा....।' इसके आगे मैं उन्हें नहीं बोलने देती। हाथ रख देती इनके होठों पर। वे मुझे अपनी बाँहों में भर लेते। अब मैं सर नहीं कहती थी, सर को लेकिन कभी-कभी निकल भी जाता था।

प्रियांशु को जन्म देते समय शारदा जी ने दुनिया छोड़ दी थी। प्रदीप सर ने बताया था, छोड़ने से पहले शारदा जी ने कहा था सर से, 'तुम दूसरी शादी ज़रूर करना। उसे खूब प्यार देना लेकिन मेरे बच्चे को अपने से अलग मत करना।'

मैंने सर की इस बात को गाँठ बाँध लिया था। मैं प्रियांशु को जितना प्यार कर सकती थी उससे कहीं ज़्यादा प्यार करती थी। वे बहुत खुश रहते।

प्रदीप सर सुन्दर तो थे। मैंने नोट किया कि शादी के बाद तो वे और ज़्यादा सुन्दर हो गए थे।

हमारी हर रात दीवाली होती।

उनके प्यार के तरीके ही अलग थे...

कॉलेज जाने से पहले वे बाथरूम में नहाने चले जाते और नहाते-नहाते वहीं से आवाज़ लगाते, 'यस, प्लीज़ मेरी टॉवल दे देना। जल्दी में ध्यान ही नहीं रहा। जल्दी लाओ यार। कॉलेज के लिए लेट हो जाऊँगा। प्रिंसिपल साहब से, मैं तो कह दूँगा आपकी ही स्टूडेंट लेट कर देती है। अरे यार जल्दी ले आओ न। वहीं रखी है सोफे पर।' मैं जल्दी-जल्दी हड़बड़ाती हुई बाथरूम में जाती। बस टॉवल किसको चाहिए होती। वहीं भर लेते दोनों बाँहों में। 'हटो मुझे भी गीला कर दोगे.....रात में पेट नहीं भरता जो अब.....हे भगवान् इन्हें देखकर कोई कहेगा कि ये वही सर हैं जो किसी लड़की को भर निगाह देखते भी नहीं थे।' वे छोड़ते ही नहीं मुझे। देखो सब्ज़ी जल जाएगी। या फिर प्रियांशु जग जाएगा। प्रियांशु के नाम से वे मुझे छोड़ देते। मैं गीली-गीली चली आती खाना बनाने लगती। जी तो चाहता सर मुझे यूँ ही अपनी बाहों में जकड़े रहें और मैं पिघलती रहूँ।

इसके अलावा उनके प्यार करने का एक और बेहतरीन तरीका था जो मुझे भी बहुत पसंद था और उसे सर रात को खाना बनाते समय शुरू करते। होता क्या था....जब मैं खाना बना रही होती और फोर्टी फाइव एंगल पर झुकी कुकर में सिर गढ़ाए होती या फिर रोटी बेल रही होती तो वे पीछे से आते और आकर अपनी बाँहें मेरी कमर में डाल देते। पहले तो वे मेरी नाभि से खेलते रहते। कभी उसमें अँगुली डालकर घुमाते या फिर धीरे-धीरे सहलाते। मैं उन्हें प्यार से डाँटती, 'आप नहीं जाएँगे यहाँ से.....भगवान्, चैन नहीं है आपको।' वे कहाँ मानते। वे नाभि से हाथों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर सरकाते। मैं जान जाती अब ये क्या करना चाहते हैं। फिर वे धीरे-धीरे ले जाकर अपनी अँगुलियाँ मेरे पूरे शरीर पर सरकाने लगते। मुझे लगता मेरे शरीर में बिजली का करंट लग जाता हो। अब वे कोई मेरे सर तो थे नहीं। मैं रोटी बेलते-बेलते ही उन्हें झूठे मारने लगती। वे घुटनों के बल बैठ गर्दन नीचे कर देते। मैं उन्हें ऊपर उठाकर उनका माथा चूम लेती और सिर्फ इतना ही कहती। 'सही बताऊँ सर, मुझे लगता था कि मैं ही आपको प्यार करती हूँ। आप तो मुझसे कहीं अधिक ज़्यादा प्यार करते हैं।' वो सिर्फ पलकें झपका देते। मैं उन पलकों में समा जाना चाहती। और यही सब करते- कराते एक साल निकल गया। पता ही नहीं चला।

अब प्रियांशु पहली क्लास में जाने लगा था। मैं उसे खूब अच्छी तरह सजा-धजाकर स्कूल भेजती। फिर छुट्टी होने पर ले आती। तब तक सर भी आ जाते। दिन का पता ही नहीं लगता।

और तभी एक दिन....

प्रियांशु स्कूल गया था। वे कॉलेज में थे। मुझे अचानक उल्टियाँ होने लगी। घर में कोई नहीं था। मैं परेशान हो गई। पेट में भी हल्का-हल्का दर्द होने लगा। हाथ-पाँव में भी शिथिलता आ गई। प्रियांशु को तो जैसे-तैसे ले आई मैं। सर आए तो मेरा उतरा चेहरा देखकर घबरा गए। 'चलो डॉक्टर के पास।'

मैंने मना कर दिया। वे मान गए।

दूसरे दिन भी यही हाल।

तीसरे दिन भी यही हाल।

अब मैं परेशान थी सो एक दिन निम्मो को फ़ोन कर दिया, 'यार निम्मो उल्टियाँ बंद ही नहीं हो रही।'

'मैं जान रही हूँ और अगर वही बात है तो कांग्रेचुलेशंस, स्वीट बेबी।' वह बोली और अगले दिन मुझे लेकर डॉक्टर के पास गई। ज़रूरी टेस्ट हुए और रिपोर्ट आई कि मैं प्रिगनेंट हूँ। अर्थात् माँ बनने वाली हूँ।

मेरी खुशी का पारावार नहीं था।

सोच रही थी कब प्रदीप सर आएँ और कब उन्हें खुशखबरी दूँ।

वे आ गए। आते ही पहला सवाल, 'आज तो वॉमेटिंग नहीं हुई।'

'अब क्या होती ही रहेगी।' मैंने उनके गले में बाँहें डाल दीं थीं।

'मतलब।'

'मतलब, ये कि आप पापा बनने वाले हैं.....अब एक और प्रियांशु आने वाला है। समझे सर जी।' मैं आसमान में उड़े जा रही थी।

सर के चेहरे पर कोई खुशी नहीं। सिर्फ इतना ही बोले, 'अच्छा ठीक है। तुम्हें नहीं लगता यश कि हमने कुछ जल्दी कर दी।'

'अरे जल्दी कैसी.....प्रियांशु अब चार, साढ़े चार साल का हो गया।' मैंने आगे आर्किमीडीज बनने की कोशिश की थी, 'अगर प्रियांशु मेरी ही कोख से जन्मा होता तब भी इतना अंतराल ठीक है। आई थिंक गुड गैप।'

'शायद तुम ठीक हो। फिर भी।' उनके

ऐसा कहने पर मुझे अच्छा न लगा। मन में अजीब सी टीस उठी। कैसे हैं सर। कोई भी पति होता...इतनी खुशी पर तो अपनी पत्नी को कंधों पर बिठा लेता.....कमाल है।' फिर सोचा कि कोई परेशानी होगी दिमाग़ में इसीलिए ऐसा कर रहे है। बात आई की गई कैसे होती। एक औरत के लिए इससे बड़ी खुशी तो शायद कोई हो ही नहीं सकती। मातृत्व.....ममत्व.....माँ की सार्थकता।

एक दिन निकला, दो दिन निकले, सर के व्यवहार में कोई अंतर नहीं। वे बुझे-बुझे से रहने लगे। चहकना, शरारतें करना तो उनसे दूर ही हो गया। मैं अर्थ न समझ पाऊँ, आख़िर ऐसा क्या हो गया।

दिन में तो सर कॉलेज में होते लेकिन रात में या शाम को जब से घर आते तो बिखरे-बिखरे लगते। मैं परेशान होने लगी। साथ ही साथ मैंने नोट किया कि सर अब बात-बेबात पर प्रियांशु पर चिल्लाने लगते। वह सहम जाता और आकर मेरी गोद में छिप जाता। मैं उसे सहेज लेती।

रातों की तो बात ही अलग हो गई थी। रात में, हम प्रियांशु को दोनों के बीच में सुलाते और जब कुछ करना होता तो उसे एक तरफ कर देते। लेकिन अब मैं देखती कि सर प्रियांशु को अपनी तरफ सुलाते। इतना ही नहीं वे उस पर हाथ रखकर सोते ताकि उनसे प्रियांशु को कोई छीन न ले। मुझे बहुत परेशानी होने लगी। होता क्या था जब प्रियांशु हम दोनों के बीच सोता तो मुझे बहुत अच्छा लगता। सोने से पहले वह, पहले मेरी नाभि में अँगुली डालकर घुमाता ठीक वैसे ही जैसे सर किया करते फिर मेरे दोनों आँचल (स्तन) पर अपने हाथ रख लेता। लगता जैसे उसकी रियासत हो। मुझे बहुत खुशी मिलती। एक लड़की में सतह पर माँ तैरने लगती। वह रात में जाग जाता और मम्मा-मम्मा करके मेरे पास आने को होता तो सर उसे रोक लेते, 'अरे प्रियांशु मम्मा को तंग नहीं करते, मम्मा को अच्छी तरह नींद नहीं आएगी।'

'आप ठीक तो हैं। अब तक अच्छी तरह नींद आती थी तो अब क्या हो गया जो नींद नहीं आएगी। आपको हो क्या रहा है सर...' मैं थोड़ी सी नाराज़ हुई थी।

'नहीं, ऐसा नहीं, जैसा तुम समझ रही हो, यस। मैं असल में नहीं चाहता कि प्रियांशु बाद में परेशान हो। उसको तुम्हारी आदत पड़ गई तो...समझ रही हो न तुम।' सर थोड़ी देर तो प्रियांशु को मेरी ओर छोड़ देते और जैसे ही वह सो जाता, उसे अपनी ओर कर लेते। जो बिस्तर मुझे फूलों की सेज लगता था अब काँटो की झाड़ी लगने लगा था।

मैंने सोचा शायद मैं ज़्यादा सोचने लगी हूँ। लाओ कुछ और कोशिशें करती हूँ।

सुबह सर जब नहाने जाते तो मैं जानबूझकर उनकी टॉवल छुपा देती कि सर टॉवल माँगेंगे और जब वे अंदर से मुझे पुकारेंगे तो मैं उन्हें टॉवल देने जाऊँगी तो वे मुझे बाहों में भरकर गीला कर देंगे। मैंने कब गीला होना नहीं चाहा। गीली होना ही तो हर स्त्री चाहती है लेकिन ऐसा नहीं होता सर दूसरी टॉवल लेकर ही नहाने चले जाते। मैं कान लगाए रहती कि अब पुकारेंगे, वे पुकारते ही नहीं। हर स्त्री, पुरुष के पीछे ही तो पागल हुआ चाहती है लेकिन....मैं तड़प जाती। मैं सोचती सुबह जल्दी कॉलेज जाना होता है शायद इसलिए।

....अब मैं शाम को खाना बनाते समय किचन में जानबूझकर देर करती कि सर आएँगे और पहले की तरह मेरी नाभि से होते हुए उरोजों से खेलेंगे लेकिन ऐसा नहीं होता। वे प्रियांशु को अपनी गोद में सहेजे बैठे रहते मानों कोई मुर्गी अंडे सहेजती हो। मैं कई बार आवाज़ भी लगाती, 'सर और प्रियांशु आओ देखो कैसी सब्ज़ी बनी है। बताओ ज़रा।'

सर वहीं से आवाज देते, 'बना लो। साथ-साथ खाएँगे।' न तो बाद में यस कहते और न स्वीट बेबी। मैं तड़प जाती। मुझसे कहाँ चूक हो गई जो सर में इतना बदलाव आ गया। मैंने सोचा मैं हार नहीं मानूँगी चाहे कुछ हो जाए। मुझे, मेरे सर पूरे के पूरे चाहिए।

तभी एक रात....

जब प्रियांशु सो गया और सर भी सोने की तैयारी करने लगे तो मैंने रंभा बनने की कोशिश की। मैंने सारे कपड़े उतारकर एक तरफ फैंके और सर से लिपट गई। उन्होंने बड़े धीमे से फुसफुसाया, 'ज़रूरी कपड़े तो पहन लो फिर कर लेंगे जैसा तुम कहोगी।' अब मेरा गुस्सा सातवें आसमान पर था। 'पागल समझते हो मुझे.....मूर्ख हूँ मैं.....पहले भी ऐसे करते थे आप.....अब क्या हो गया.....पहले आप ही ज़िद किया करते थे.....आप ही शरीर पर एक भी कपड़ा नहीं रहने की ज़िद किया करते थे। अब...अब क्या हो गया.....बताओ...सर.. नहीं तो...नहीं तो वह हो जाएगा जिसकी आपने कल्पना भी नहीं की होगी।' मैं बिल्कुल निर्वस्त्र बैठी थी। कमरे की चारों ट्यूब लाईट्स मैंने जला दी थीं।

'मेरी एक बात सुनोगी।' धीमे से बोले थे सर।

'मैं बनी ही हूँ सुनने के लिए।' गुस्सा कहाँ कम था मेरा।

'मैं एक सलाह चाहता था आपसे।' वे बोले थे। मुझे भी लगा था कि सर किसी परेशानी में हैं और मैं बेवजह त्रियाचरित्तर रचा रही हूँ। बहुत खिसियाना हुआ था मुझे अपने आप पर। और मैंने ऊपर की ओर आँखें उठाई थीं मानो कुछ कहना चाह रही होऊँ, 'जीवन के हर कदम पर तुम्हारी भामाशाह रहूँगी सर।'

'मेरे मन में था कि मैं प्रियांशु को हॉस्टल में.....' पूरा नहीं बोलने दिया था सर को मैंने। बिफर पड़ी थी मैं, 'अच्छा अब समझी मैं....आप....आप कौन सी आग में जल रहे हैं।'

'नहीं.....नहीं इसे अन्यथा न लेना। तुम्हें अब अपने शरीर को भी देखना है। ऐसे में प्रियांशु की ज़िम्मेदारी। तुम समझने की कोशिश करो।' सर, शायद मुझे मनाने की कोशिश कर रहे थे। नहीं तो वे पहले कभी शायद नहीं बोलते थे सिर्फ अपनी शरारतों से मना लेते थे। खैर अब कुछ शेष नहीं रह गया था। मेरी कोख मेरे लिए अपराध बन गई थी। मेरे प्यार के बीच में आ खड़ी हुई थी।

मैं प्रियांशु के लिए एक माँ से भी ज़्यादा कर रही थी लेकिन...

आश्चर्य तो तब हुआ जब सर ने एक कामवाली रख दी।

'क्यों इसकी कहाँ से ज़रूरत आन पड़ी।' मैंने पूछा था सर से।

'तुम कितना काम करोगी। तुम्हें आराम की भी तो ज़रूरत है फिर प्रियांशु भी.....' सर अपनी बात कितनी सहजता से कह देते और वह बात मुझे अंदर तक साल जाती।

'क्यों, दो-दो, चार-चार बच्चे पैदा

करने वाली माँएँ अपने बच्चों के लिए.....' मैं सोचती रहती।

आश्चर्य और दुख तो तब हुआ जब एक दिन सर ने कॉलेज से आकर प्रियांशु को एक थप्पड़ जड़ दिया। बात कुछ नहीं थी। वह ज़िद कर रहा था कि वह मेरे साथ छुपन-छुपाई खेलेगा। सर मना कर रहे थे, 'बेटा मम्मा की हालात ठीक नहीं है।उन्हें प्रॉब्लम होगी। मेरे साथ खेल लो।'

प्रियांशु ज़िद पर था, 'मैं तो मम्मा के साथ ही खेलूँगा। मम्मा मुझे बहुत प्यार करती है।' बस इसी बात पर सर गुस्सा हो गए और....

मैं अंदर तक सिहर गई थी। शादी के बाद से आज तक मैंने प्रियांशु को कभी मुरझाते नहीं देखा था। कभी, किसी बात के लिए परेशान नहीं होने दिया और आज सर ने।

और उसी रात...

सर को मैंने रोते हुए देखा। उन्हें लगा था कि मैं सो गई हूँ। वे रात में प्रियांशु को, सोते हुए को, अपनी गोद में लिए बिलख रहे थे।

मैं कितनी देर तक सोने का ढोंग करती। मैंने जैसे कि करवट ली। सर को लगा कि मैं जाग जाऊँगी सो प्रियांशु को लिटाकर, उसके ऊपर हाथ रखकर सोने का बहाना करने लगे थे।

मैं पानी से बाहर निकाली गई मछली की मानिंद तड़पने लगी। मैंने तो उन्हें अपने से ज़्यादा प्यार किया था। उनकी आँखों में आँसू, मैं कैसे सहन कर पाती।

रात मैंने कैसे निकाली मुझे नहीं मालूम।

सुबह सर अपने कॉलेज चले गए थे। बेटा अपने स्कूल चला गया था। कामवाली काम करके जाने को हुई तो मैंने उससे कहा था, 'आज दिन भर के लिए यहीं रुक जाओ। प्रियांशु को स्कूल से ले आना। शाम तक मैं आ जाऊँगी। ध्यान रखना प्रियांशु को ज़रा सी भी परेशानी न हो।'

वह मान गई। उसने सिर्फ इतना ही पूछा था, 'जिज्जी कहाँ जा रही हो।'

'अपना प्यार वापस लाने।' वह कहाँ समझ पाई थी कि मैं क्या बोल गई थी।

मैंने निम्मो को फ़ोन किया और अब तक की सारी बातें बता दी थीं और सिर्फ इतना ही कहा था, 'डॉ. अर्चना लाइफ लाइन नर्सिंग होम में ठीक साढ़े ग्यारह बजे मिलो।' जब मैं फ़ोन पर निम्मो से बात कर रही थी तो कामवाली ने छुपकर सुन लिया था। तभी तो वह बोली थी, 'जिज्जी ये ठीक बात नहीं है।'

'किसी की बातें छुपकर सुनना भी तो ठीक बात नहीं है।' मैंने जब कहा था तो उसने आँखे नीची कर ली थीं।

निम्मो ने मुझे बहुत समझाया था, 'यश, धीरज रखो सब ठीक हो जाएगा।'

'सब ठीक नहीं होगा निम्मो। हाँ, एक काम ज़रूर होगा कि मेरा प्यार मुझसे दूर हो जाएगा। और मैं अपने प्यार को इस जीवन में तो दूर नहीं होने दूँगी।' ज़िद पर थी मैं।

'पागल हो गई हो तुम।'

'पागल कब नहीं थी, मैं।'

'तुम दूर तक की नहीं सोच रही।'

'मैंने तो कभी पास तक का नहीं सोचा।'

'तुम अपराध कर रही हो यश।'

'अपना प्यार पाने के लिए ऐसे न जाने कितने अपराध कर दूँ मैं, निम्मो।'

निम्मो हार गई थी। निम्मो मेरी सच्ची सहेली थी। उसने हथियार डाल दिए थे।

डॉक्टर अर्चना ने कहा भी था, 'मिसेज यशोधरा जी, थोड़ा सा रिस्की है।'

'मैं बच तो जाऊँगी।'

'नहीं वैसा कुछ नहीं होगा। आश्चर्य है कि... हाँ पहली बार देख रही हूँ कि...।' डॉक्टर अपना दायित्व निभा रही थी।

'शायद आपने प्यार नहीं किया। किया होता तो आप आश्चर्य नहीं करतीं।' डॉक्टर थोडी नाराज़ हुई थी। उसे निम्मो ने समझा लिया और दो-ढाई घण्टे तक ऑपरेशन चला फिर मुझे वार्ड में शिफ्ट कर दिया गया था।

निम्मो मेरे पास थी। मैंने विजयी यौद्धा की तरह निम्मो की ओर देखा था। वह खुश नहीं हुई थी कि.....कि.....सर हाँफते हुए वार्ड में घुसे थे। कामवाली प्रियांशु का हाथ पकड़े हुए सर के साथ ही थी। मैंने उसे देखा था मानों कहना चाहा था, 'आख़िर बता ही दिया।' उसने आँखें नहीं चुराई थी। शायद कहना चाह रही हो, 'हाँ मैंने ठीक किया।'

'ये...ये...तुमने क्या किया यशो....क्या किया.....क्यों किया ऐसा, बताओ.....बताओ तो।' सर मासूम बच्चे से बिलख रहे थे।

'मैंने प्यार किया है सर। जिस दिन से मैं प्रेग्नेंट हुई। मैंने जाना कि आप मुझसे दूर जाने लगे हैं.....और उसका कारण मेरे पेट में पलने वाला बच्चा ही तो है। मैं अपना प्यार बचाने के लिए ऐसे न जाने कितने पेट गिरवा दूँगी।' सर का बिलखना जारी था। '.....रोओ मत सर.....आप पुरुष हैं.....आपका रोना कायरता लगेगा। मैं औरत हूँ। औरत का रोना तो कभी कोई पुरुष जान ही नहीं पाया। मुझे लगता है..... औरत बनी ही है रोने के लिए। प्रियांशु दिया आपने मुझे.....माँ तो उसी दिन बन गई थी मैं। मैं तो पत्नी भी हूँ और माँ भी। अब अगर माँ बनती तो शायद पत्नी खो जाती।' सर कहाँ चुप हो रहे थे। मैंने लेटे-लेटे ही उनकी आँखें पोछीं थीं, '.....स्त्री बनकर देखो, सर, समर्पण, त्याग, उसके पर्याय हैं। मैंने कुछ नया नहीं किया.....लेकिन दुःख इस बात का है सर कि प्यार तो आपने भी किया था मुझे, फिर आप सिर्फ पिता ही बनकर क्यों रह गए। आपको मुझमें कैकेयी क्यों दिखने लगी। सर एक बात बताऊँ.....माँ सिर्फ माँ होती है वह न तो कैकेई होती है और न सुमित्रा।'

सर मुझे रोकने लगे थे। मेरे होठों पर हाथ रख दिया था और सिर्फ इतना ही बोले थे, 'मुझे इतना छोटा न करो कि अपनी ही नज़रों में, मैं गि.. र।'

'जीवन की आख़िरी साँस तक आपको नीचा नहीं देखने दूँगी। बस मुझे कभी विमाता मत समझना.....सौतेली न समझना। प्रियांशु मेरी धड़कन है, सर।' फिर बहुत प्यार से बोली थी, 'मुझे कभी भी अपने से अलग न करना। मैं रह न सकूँगी।' प्रियांशु बड़ी देर से कामवाली का हाथ पकड़े था। अब मुड़कर मेरे पास आ गया था।

मैंने उसे लेटे-लेटे ही पुचकारा था। वह ज़िद करने लगा था, 'मम्मा मैं भी आपके पास लेटूँगा।' सर ने उसे रोकना चाहा था।

'अब भी रोकेंगे।' मैंने कहा था और बेटे को अपने पास ही लिटा लिया था। बेटा मेरी नाभि में अँगुली घुमाने लगा था।

ममता का समुन्दर हिलोरें मार रहा था।

सर आँखें नीचे किए मेरे बैड पर बैठे थे, लगा था, मानो शिलाखण्ड पिघल रहा हो।

***

फेयरवेल

रेखा राजवंशी

यह दिन भी अन्य दिनों जैसा ही था। ज्योति ने सुबह जल्दी उठ कर चाय बनाई और ड्राइंग रूम के लाउन्ज में अलसाते हुए धंस गई। सुबह अकेले बैठकर चुस्कियों के साथ चाय पीने का मज़ा ही और है। फिर उठ कर फ्रिज से आटा निकाल कर अपूर्व के लिए दो पराँठे बनाए, रात की सब्ज़ी के साथ डिब्बे में पैक कर दिए। अपूर्व ऑस्ट्रेलिया में पच्चीस साल रहने के बाद भी ज़रा नहीं बदले। ऑफ़िस में लंच उन्हें भारतीय ही चाहिए। पर उसे भारतीय भोजन ऑफ़िस में ले जाना पसंद नहीं है, वहाँ वो सैंडविच ही ले जाती है।

खाना पैक करके अपूर्व को उठाया फिर जल्दी से शॉवर में घुस गई। दस मिनट में तैयार होकर स्टेशन की तरफ चल दी। अच्छी बात तो ये है कि स्टेशन उसके घर से सिर्फ पाँच मिनट दूर है। ट्रेन तक पहुँचने की जल्दबाज़ी होती है, पर ट्रेन में बैठने के बाद उसे बहुत तसल्ली मिलती है। ऐसा लगता है कि एक दिन की जंग जीत ली हो। ट्रेन में सीट मिलना भी वैसे तो एक चुनौती है, पर आज एक लड़के ने उठ कर उसे अपनी सीट दे दी। नीले रंग की आरामदायक सीट बैठ कर आस-पास नज़र डाली, ट्रेन हमेशा की तरह फुल थी। सामने की सीट पर दो महिलाएँ बैठीं मैगज़ीन्स में आँखें गड़ाएँ थीं। ज्योति ने अपने बगल में नज़र डाली, इयर फ़ोन कानों में लगाए एक बीस-पच्चीस बरस की लड़की अपनी दुनिया में गुम थी। अगले स्टेशन पर ट्रेन रुकी तो कुछ और लोग ट्रेन में आ गए, खाली सीट न देखकर रेलिंग को हाथ से थाम खड़े हो गए। शुरू-शुरू में ट्रेन की शांति देखकर बहुत अजीब लगता था कि यहाँ कोई बात क्यों नहीं करता। पर कभी-कभी हँसती-खिलखिलाती किशोरियाँ दिख जातीं तो अच्छा लगता।

Rekha Rajvanshi
Leigh Place, West Pennant Hills,
Sydney, New South Wales, wvwz,
AUSTRALIA
Email : rekha_rajvanshi@yahoo.com.au
Mobile +61403116301

शुक्र है, दो स्टेशन के बाद ही उसका ऑफ़िस है। वहाँ स्टेशन की अगली स्ट्रीट पर ही मक्डोनल्ड के बगल में आई टी ओ की बिल्डिंग है जिसमें वो काम करती है। सुबह के नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक वहीं होती है।

अपूर्व आई टी में हैं, वे कार से ही जाते हैं। उनके दफ़्तर में पार्किंग की सुविधा उपलब्ध है। आदि उनकी एक मात्र संतान है, जो पढ़-लिख कर वकील बन गया है। पिछले साल ही वह मूव आउट हुआ है, यानी अपनी जीवन यात्रा पर। अब ज्योति और अपूर्व अकेले हो गए हैं पर इससे उनकी व्यस्त दिनचर्या में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ा है। पाँच दिन की नौकरी वैसे ही चल रही है। वीकेंड में अक्सर आदि आ जाता है, ज्योति उसके पसंद की चीज़ें पकाने में व्यस्त हो जाती है और उसके साथ वक़्त गुज़र जाता है। अपूर्व को रीडिंग के अलावा, गार्डनिंग का भी शौक है, वीकेंड में टेनिस खेलने जाना उनकी दिनचर्या का हिस्सा है। सब कुछ रूटीन में चलता रहता है।

आज भी दफ़्तर के बाद ज्योति घर आई। उसका ऑफ़िस पास है, तो वह ज़रा जल्दी आ जाती है। अपूर्व करीब डेढ़ घंटे बाद आते हैं। तब तक ज्योति को आराम मिल जाता है।

शाम की चाय अपूर्व ही बनाते हैं और दोनों साथ चाय पीते हैं।

उस दिन अपूर्व एक कार्ड दिखाते हुए बोले - 'तुमने ये निमंत्रण पत्र देखा?'

'किसी की शादी का है क्या?' ज्योति ने कहा।

'शादी का नहीं है, तुम्हें याद है न एडवर्ड?'

'एडवर्ड ..ओह वो। वही एडवर्ड न, जिसके घर हम रुके थे पच्चीस साल पहले।'

'हाँ, वही एडवर्ड। उसकी फेयरवेल पार्टी का निमंत्रण है।'

ज्योति की आँखों के सामने चालीस साल के खुशमिजाज़ एडवर्ड और उसकी खूबसूरत पत्नी ग्रेस का चेहरा घूम गया। जब वे सिडनी आए थे तो एक महीने उन्हीं के घर में पेइंग गेस्ट रहे थे।

एडवर्ड और ग्रेस ने ही शुरू में उनकी मदद की थी। 'करिंगबा' नाम का सबर्ब,

जिसमें वो रहते थे, बहुत खूबसूरत था। पास में ही क्रोनुला समुद्र तट था, जहाँ बने मोटल्स में अक्सर बैक पैकर्स और टूरिस्ट रुकते थे। एडवर्ड ने ही उन्हें सेंटर लिंक जाने और वहाँ अपना नाम रजिस्टर कराने को कहा था, जिसकी वजह से जब उन्हें जल्दी ही कुछ वित्तीय सहायता मिल गई, तो वे कितना खुश हुए थे और एडवर्ड के लिए वाइन की एक बोतल ले आए थे।

ज्योति को एडवर्ड और ग्रेस के दो छोटे-छोटे गोल-मटोल जुड़वाँ बच्चों के साथ खेलना बहुत अच्छा लगता था। ग्रेस ने ही उसे बाज़ार और वेस्टफील्ड घुमाया था। यहाँ के स्कूल और चाइल्ड केयर के बारे में भी उसी से पता चला था।

जिस दिन शाम को अपूर्व और ज्योति घर होते उस दिन एडवर्ड बियर की बोतल खोल लेता, बियर पीते-पीते जाने कितनी बातों पर डिस्कशन करता। कई बातों के बारे में उन्हें एडवर्ड से ही पता चलता। ज्योति और अपूर्व ने ऑस्ट्रेलिया को पहली बार उनकी नज़र से ही देखा।

एडवर्ड ने ही ज्योति को 'जो' और अपूर्व को 'ऐपु' कहना शुरू किया।

'ऐपु, कम हियर। अपनी ब्यूटीफुल वाइफ को भी यहाँ ले आओ। चलो आज बीच चलते हैं।'

और सब ख़ुशी-ख़ुशी उसकी सेवन सीटर में बैठ बीच चले जाते।

ग्रेस पिकनिक मैट्स बिछा देती। रसगुल्ले जैसे नरम मुलायम बच्चे विल और जिल ज्योति के आसपास घूमने लगते -'प्ले विद अस, जो...'

ग्रेस प्यार से सिखाती, 'डिड यू से, प्लीज़'

'प्लीज़ जो..' दोनों उसके हाथ में सॉफ्ट बॉल पकड़ा देते।

ज्योति और अपूर्व बच्चों को लेकर थोड़ी दूर चले जाते, जिससे ग्रेस और एडवर्ड को कुछ वक़्त अपने लिए मिल सके। उनके जाते ही एडवर्ड और ग्रेस एक दूसरे में ऐसे खो जाते, जैसे जाने कितने दिनों से बिछुड़े हों। उन्हें चुम्बन लेते देख अपूर्व अक्सर ज्योति को आँख मार देते और नव ब्याहता ज्योति थोड़ी शर्मा जाती।

एक महीना ख़त्म होने के पहले ही ज्योति और अपूर्व ने अपने लिए किराए का घर ले लिया। सेंटर लिंक से मिले खर्चे से उन्होंने महँगे सबर्ब में रहने की बजाए उस एरिया में जाना पसंद किया जो सस्ता हो और जहाँ भारतीय ग्रोसरी आदि की सुविधाएँ उपलब्ध हों।

इसलिए शुरू में वे ब्लैक टाउन के दो कमरों के ग्रेनी फ़्लैट में आ गए। गृहस्थी शुरू करने के लिए काफी सामान उन्हें ग्रेस ने दे दिया। उनके चलने के पहले ग्रेस की आँखों में आँसू आ गए 'वी विल मिस यू जो' कहते-कहते उसे गले से लगा लिया।

एडवर्ड ही उन्हें अपनी गाड़ी में वहाँ छोड़ने आया। सामान सेट करने में मदद की और सारा सिस्टम भी समझा दिया।

घर बसा लेने के बाद अपूर्व ने उन्हें घर खाने पर बुलाया तो शायद पहली बार उन्होंने उत्तर भारतीय भोजन खाने का आनंद लिया। विल और जिल ज्योति को देखते ही उसकी तरफ दौड़े।

'दे लव यू जो, कीप देम' कहते-कहते एडवर्ड ने आँख मारी और सब हँस पड़े।

शीघ्र ही नौकरी की तलाश शुरू हुई। अपूर्व को नौकरी मिली ही थी कि ज्योति प्रेग्नेंट हो गई और जल्द ही आदि ने उनकी ज़िंदगी में ख़ुशी के फूल बिखेर दिए। आदि के जन्म पर एडवर्ड गिफ़्ट बैग लेकर आया, 'कॉंग्रेट्स मेट' कहते हुए अपूर्व को गले से लगा लिया।

'वेयर इज़ ग्रेस' अपूर्व के पूछने पर वह बोला, 'सॉरी, उसे बच्चों को स्विमिंग ले जाना था। उसी ने बेबी के लिए यह सामान भेजा है।' आदि के जन्म के बाद भी वे बराबर संपर्क में रहे, मिलते जुलते रहे पर

फिर बच्चे बड़े होने लगे, उनके स्कूल की गतिविधियाँ बढ़ गईं और धीरे-धीरे आना-जाना कम होने लगा।

इस बीच ज्योति को भी जॉब मिल गया और जल्द ही दोनों ने घर ख़रीद लिया। घर की ओपनिंग सेरेमनी पर एडवर्ड और ग्रेस फिर मिले मगर उसके बाद संपर्क सिर्फ फ़ोन तक सीमित रह गया।

और आज इतने साल बाद यह कार्ड आया है। ग्रेस और एडवर्ड की सारी बातें ताज़ा होने लगीं। आखिर एडवर्ड को वह कैसे भूल सकती थी।

ज्योति ने अपूर्व के हाथ से कार्ड लिया, देखा। अगले महीने 7 अक्टूबर, शनिवार को शाम पाँच बजे का निमंत्रण था। देखकर अच्छा लगा, उसमें वे आदि का नाम लिखना न भूले थे।

'इतनी जल्दी इतना समय बीत गया, पता ही नहीं चला। इतनी जल्दी एडवर्ड रिटायर भी हो गया? कितने साल का होगा?' अपूर्व ने पूछा।

'शायद साठ या पैंसठ के बीच।' ज्योति ने जवाब दिया।

'अच्छा, मेक श्योर कुछ अच्छी सी शेम्पेन ले आना।' कहते हुए ज्योति किचन में गई और फ्रिज पर लगे कलेण्डर में मार्क कर दिया। आदि को भी व्हाट्सएप पर 'सेव द डेट' का मैसेज भेज दिया।

'श्योर, डेट सेव्ड। आई विल बी देयर' उसका जवाब भी साथ की साथ आ गया।

अगले महीने सात अक्टूबर आ गया। अपूर्व ने अच्छा सा सूट पहना, पर ज्योति ने साड़ी ही पहनी क्योंकि ग्रेस और एडवर्ड हमेशा उसे साड़ी में ही देखना पसंद करते थे। करीब चालीस मिनट की ड्राइव के बाद दोनों कारिंगबा पहुँचे। खूबसूरत पैंकिंग में महँगी फ्रेंच 'कुग' शेम्पेन लेकर जब वे गाड़ी से उतरे तो देखा कि घर का दरवाज़ा खुला हुआ था, बाहर से ही फेयरवेल के साइन को देखा जा सकता था।

दरवाज़े पर दो खूबसूरत नौजवान सबका स्वागत कर रहे थे।

उन्हें देखकर बहुत अच्छा लगा 'तो इतने बड़े हो गए विल और जिल। एडवर्ड जैसी कद काठी और ग्रेस जैसी खूबसूरत नीली आँखें।' दोनों ने सौम्य मुस्कान से उनका स्वागत किया और अंदर जाने को कहा।

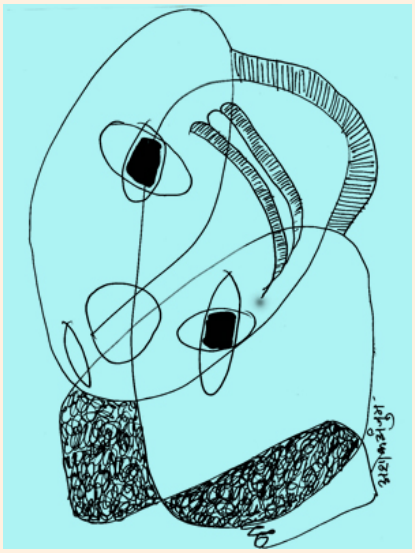

आदि भी पाँच मिनट में वहाँ पहुँच गया।

अंदर पहुँचते ही ग्रेस ने उसे गले लगा लिया। पता नहीं क्यों ग्रेस की नीली आँखें आज मुस्कुराती हुई नहीं लगी।

'वेयर इज़ एडवर्ड?' अपूर्व ने धीरे से पूछा।

'यू विल सी हिम सून' कहते हुए ग्रेस ने उन्हें बैकयार्ड में सजी कुर्सियों पर बैठने का इशारा किया। जब ज्योति और अपूर्व वहाँ पहुँचे तो देखा कि पहले से बहुत सारे लोग एकत्रित थे।

'लगता है कि बहुत बड़ी पार्टी है।' अपूर्व ने धीरे से कहा।

'एडवर्ड था ही इतना सोशल।' ज्योति ने कहा।

गार्डन बिजली के बल्बों से जगमगा रहा था। लोग फूलों के गुलदस्ते और गिफ्ट लेकर आ रहे थे। यूँ तो सब मुस्कुरा कर आपस में मिल रहे थे, पर फिर भी माहौल में एक अजीब सी चुप्पी थी।

तभी व्हील चेयर धकेलते हुए ग्रेस वहाँ आई, कुर्सी पर एक दुबला पतला बीमार सा व्यक्ति बैठा था। जब कुर्सी रौशनी में आई तो शक्ल एडवर्ड से मिलती जुलती लगी।

'एवरीबॉडी वेलकम एडवर्ड।' बेटे विल ने माइक पर जाकर कहा।

'क्या...?' हम जैसे आसमान से ज़मीन पर उतरे। कहाँ गोल चेहरे वाला, भरे-भरे शरीर का, लम्बा चौड़ा एडवर्ड और कहाँ ये बीमार, दुबला-पतला आदमी? ऐसा कैसे हो सकता है? पर आँखें, नाक और चेहरा एडवर्ड का ही था।

तो क्या एडवर्ड बीमार था? आख़िर क्या हुआ उसको? और ग्रेस ... जाने कितने दिन से वो अकेली ये सब झेल रही होगी।

ग़लती हमारी है, हम संपर्क में क्यों नहीं रहे? अचानक अपराध बोध ने घेर लिया। आख़िर क्या हुआ है उसको? जाने कितने प्रश्न ज़ेहन में घूमने लगे। ज्योति को लगा शायद बीमारी की वजह से ही एडवर्ड ने रिटायरमेंट लिया है।

'आज आप सब मेरे डैड एडवर्ड को फेयरवेल देने के लिए यहाँ इकट्ठे हुए हैं, हम सपरिवार आपका स्वागत करते हैं। आप सबने हमारी ज़िंदगी में एक ख़ास भूमिका निभाई है और आप सब हमारे परिवार के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य हैं, अब मैं अपनी माँ ग्रेस को बुलाना चाहूँगा।' कहते हुए विल ने अपनी माँ ग्रेस को बुलाया।

थके से कदमों से उठ के जब ग्रेस माइक पर आई, तो जिल ने आगे बढ़ कर उसे थाम लिया, उसकी नम आँखें देख लगा शायद एडवर्ड के रिटायरमेंट से सब दुखी हैं।

ग्रेस माइक पर कह रही थी –

'हेलो फ्रेंड्स। एडवर्ड ने आप सबके साथ इतने साल हँसी-ख़ुशी समय बिताया, इन सालों में कितने अविस्मरणीय क्षण आप सबने हमें दिए, हम उसके लिए आपके आभारी हैं। परन्तु पिछले पाँच वर्षों से हम कठिन स्थितियों से गुज़र रहे हैं। एडवर्ड बीमार है और उसका इलाज चल रहा है। वी रेस्पेक्ट एडवर्ड'स डिसीज़न (हम एडवर्ड के निर्णय का आदर करते हैं), मैं चाहती हूँ कि एडवर्ड स्वयं आपको अपने निर्णय के बारे में बताए।' कहते-कहते उसने माइक एडवर्ड के सामने कर दिया।

एडवर्ड ने कमज़ोर हाथों से माइक लिया, धीरे से मुस्कराया और अपने दोस्ताना अंदाज़ में बोला, 'दोस्तों, आप सबका मेरी फेयरवेल में यहाँ आने के लिए शुक्रिया। मैं पिछले कुछ सालों से बीमार रहा हूँ और मैंने यह फैसला बहुत सोच समझ कर लिया है। मेरा परिवार भी पिछले एक साल से इसके लिए मानसिक रूप से तैयार हो रहा है। और अंत में हम सबने मिलकर ही यह निर्णय लिया है।' एडवर्ड चुप हो गया। वातावरण में निस्तब्धता छा गई थी। कुछ क्षणों उपरांत एडवर्ड ने फिर बोलना शुरू किया।

'ईश्वर ने मुझे बहुत दिया है। मेरे पास सब कुछ है, ब्यूटीफुल पत्नी ग्रेस है, जिसने

मुझे ज़िंदगी में हर ख़ुशी दी। दो हैंडसम बेटे दिए, जिनके साथ मैंने बहुत अच्छे लम्हे बिताए, ईश्वर की कृपा से मुझे आप जैसे अच्छे दोस्तों का साथ मिला। कुछ लोग जानते हैं कि मैं बीमार हूँ, मेरे शरीर के अंग अब साथ नहीं देते। पिछले पाँच साल से मुझे मल्टीपल सिस्टम एट्रोफी (एम एस ए) है और जैसा कि आपको पता ही है इसका कोई इलाज नहीं है।' एडवर्ड साँस लेने के लिए फिर रुका। एक लम्बी साँस लेकर उसने फिर बोलना शुरू किया–

'बिना इलाज की दवाइयों के सहारे ज़िंदगी को खींचा जा सकता है, पर ठीक नहीं हुआ जा सकता। मैं अपने आप से थक गया हूँ। ग्रेस और बच्चों को मैं अपने दुखों से और दुखी नहीं करना चाहता, सब पर बोझ नहीं बनना चाहता। अपने आपको एक हारा हुआ खिलाड़ी बना कर सबकी सहानुभूति इकट्ठी करने से मुझे नफ़रत है। मैं आपकी यादों में एक हँसमुख, स्वस्थ एडवर्ड के रूप में ही रहना चाहता हूँ। अत: मैंने, अपने परिवार की सहमति से यह फैसला किया है कि मैं स्विज़रलैंड जाकर 'यूथेनेसिया' (इच्छा मृत्यु) का वरण करूँगा। आशा है आप सब मेरी इस इच्छा का आदर करेंगे। आपसे मेरी यह आख़िरी मुलाकात ज़रूर है पर मैं आपकी यादों में सदा साथ रहूँगा। एक प्रसन्नचित्त, तंदुरुस्त, हाज़िरजवाब और शैतान एडवर्ड के रूप में।'

'यूथेनेसिया.....' ज्योति के दिमाग़ में करेंट सा लगा। समझ नहीं आता था कि एडवर्ड जैसा ज़िंदादिल इंसान ऐसा कदम उठाने की कैसे सोच सकता है? एडवर्ड अपनी बात कह रहा था पर ज्योति को आगे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था।

एडवर्ड कैसे ऐसा कदम उठा सकता है? शायद थक गया होगा बीमारी झेलते झेलते। जो अपनी ज़िंदगी ठहाकों की तरह खुल के जिया और दूसरों की मदद के लिए भागता रहा, कैसे अपनी गिरती सेहत की लड़ाई हार गया! क्या मन: स्थिति रही होगी उसकी जब उसने इतना बड़ा निर्णय लिया होगा! क्या उसे दूसरों पर बोझ बनना मंज़ूर नहीं था? या वो अपने आपको इस तरह मरता हुआ देख नहीं पा रहा था? और कितना वक़्त लगा होगा उसे ऐसा कठिन फ़ैसला करने के पहले। और फिर ग्रेस? ग्रेस का क्या होगा? दोनों तो अब तक जैसे दो जिस्म एक जान थे। इतने साल साथ रहने के बाद एक प्रेमी दूसरे को कैसे अकेले छोड़ सकता है? पिछले पाँच साल से ग्रेस किस परेशानी भरे दौर से गुज़र रही थी ज्योति को इसका अंदाज़ा भी नहीं था।

उसे अचानक ग्रेस पर गुस्सा आने लगा। आख़िर एडवर्ड की बात वो क्यों मान गई? मना क्यों नहीं कर दिया उसने? किसी भी तरह उसे मना लेती, अपनी अकेलेपन का तकाज़ा करके उसे रोक लेती। ग्रेस तो पूरी ज़िंदगी एडवर्ड की परछाईं बनी रही और अंत में उसे इस तरह अपनी अंतिम यात्रा पर जाने के लिए मान क्यों गई? या हो सकता है कि एडवर्ड के फ़ैसले को उसे मानना पड़ा। एडवर्ड तो वैसे भी सबको कन्विंस करने में निपुण था।

ज्योति को लगा हाँ बिलकुल यही हुआ होगा। ग्रेस ने आख़िरकार हथियार डाल दिए होंगे। ग्रेस के मन के तूफ़ान का अंदाज़ा लगाना मुश्किल था। और फिर विल और जिल वो दोनों तो समझदार, पढ़े-लिखे लड़के हैं। वो ही रोक लेते एडवर्ड को। पर शायद किसी की कुछ न चली होगी। जिस आदमी ने ज़िंदगी भर किसी से कुछ न लिया हो, उसका बेबस और लाचार हो जाना एक सज़ा से बढ़कर नहीं है। एडवर्ड न किसी की सेवा लेना चाहता था, न किसी को परेशान करना चाहता था। वो एक हीरो की तरह जिया और शायद हीरो की तरह ही मरना चाहता होगा।

अचानक उसकी आँखों से बरसात होने लगी, अपूर्व ने उसका हाथ थामा और उसके हाथ में में टिशू थमा दिया।

आस-पास देखा सबकी आँखों में आँसू थे। इस तरह से इच्छा मृत्यु का स्वागत करना लोगों के गले से उतरना मुश्किल हो रहा था।

तभी ग्रेस आगे बड़ी, एडवर्ड का हाथ थामा, और एडवर्ड की पसंद का गीत गाने लगी। 'लिविंग ऑन अ प्रेयर' विल और जिल ने उसका साथ दिया। एडवर्ड के चेहरे पर अजीब सी शांति छाने लगी। अचानक ज्योति का मन किया कि वो एडवर्ड और ग्रेस से लिपट जाए और पच्चीस साल पहले की ज़िंदगी दुबारा जी ले।

***

लघु कथा

बॉयफ्रेंड

शराफ़त अली ख़ान

फिनिक्स मॉल के कैश काउंटर पर बिल भुगतान करने के बाद लड़की एकाएक तनाव में आ गई,''मॉम, आपने साढ़े चार हज़ार रुपये तो डेली नीड्स पर ही ख़र्च करवा दिए, अब मैं अमन से क्या कहूँगी ? उसने 5000 मुझे ब्रांडेड टॉप खरीदने के लिए दिए थे।''

माँ का चेहरा अकस्मात् असहज होकर फीका सा पड़ गया। शुष्क हो चुके होठों से वह कुछ बुदबुदाई। लड़की ने माँ के चेहरे की बेचारगी को पढ़ा और फिर सहज होकर बोली,''डोंट वरी मॉम! कह दूँगी उससे मुझे कोई टॉप पसंद नहीं आया और पैसे खाने-पीने में खर्च हो गए, वैसे भी वह बहुत भुलक्कड़ है।''

सामान का पैकेट उठाते हुए लड़की ने माँ की तरफ देखा। वह अब मॉल की कैंटीन की तरफ बढ़ी जा रही थीं, सांत्वना के मुलायम शब्दों ने उनके पेट की भूख जैसे जगा दी थी।

***

शराफ़त अली ख़ान
343, फ़ाइक इन्क्लेव
फेज-2
पो0 रूहेलखंड विश्वविद्यालय
बरेली-243 006(उ.प्र.)
मोबाइल: 7906849034, 9012174297
ईमेल: sharafat1988@gmail.com

एल्युमनी मीट

नीलम कुलश्रेष्ठ

होलिका दहन में थोड़ा ही समय रह गया है, वह उसे पूजने के लिए पूजा की थाली में रोली, चावल, हल्दी, माचिस व अपने बनाए तीन तरह के पूजा के लिए निकाले गूजे रखकर दिए में घी डालने ही वाली थी कि मोबाइल टुनटुना उठा,''क्या हो रहा है नीरा?''

''कौन ?''

''अरे..... पहचान।''

उसे ऐसा लग रहा था कि ये आवाज़ बरसों कान में उतरती रही है लेकिन याद नहीं कर पा रही कि ये किसकी है। तभी उधर से गीत का स्वर उभरा, ''चलो सखी नलवा से पनियाँ भर लाएँ।''

ओ... कितनी पुरानी....चालीस-पैंतालीस वर्ष पूर्व की बात.....दिमाग़ को जैसे अनगिनत परतों को अपने हाथों से बमुश्किल हटाकर गहरे तल में से उस दृश्य को बड़ी कठिनाई से खींचकर याद करना पड़ा रहा है.... क्या ऐसे ही पुनर्जन्म लेने वालों को अपनी बातें याद आतीं हैं? दिमाग़ में दृश्यों के झमाके होने लगते हैं ? एक दृश्य उसकी आँखों में झमक गया। वह जब आजकल के टी वी सीरियल्स में बेहोश होती हीरो की बाँहों में गिरती हीरोइन्स देखती है तो हँसी आ जाती है। वह तो ज़िंदगी में एक बार ही बेहोश हो गई थी वह भी केमिकल लैब में एच टू एस गैस सीधे उसकी नाक में घुस गई थी। जब कभी लैब के नल का पानी नदारद हो जाता था तो क्लास की पाँचों लड़कियाँ अपना सबसे बड़ा बीकर लेकर अपने विभाग से निकलकर कैम्पस के मैदान के दूसरी ओर लगाए नलों की तरफ़ यही गाना गाते,''चलो सखी नलवा से पनियाँ भर लाएँ।'' हँसती चल देतीं थी।

वहाँ दूसरी फ़ैकल्टी के दो चार लड़के खड़े ही होते थे, बिना कमेंट दिए कैसे रहते ? ''अरे यारो! सड़े अंडे की बदबू (एच टू एस गैस की बदबू) कहाँ से आ रही है ?''

या फिर कोई कमेंट नहीं सूझता तो फुसफुसाते, ''केमिस्ट्री....केमिस्ट्री।''

''ओ.... निशा... तू कहाँ से आ मरी ? मैंने तुम सबको कितना फ़ेसबुक पर ढूँढ़ा, किसी की सूरत दिखाई नहीं दी। मैं कभी सोच नहीं सकती थी कि उस टाइम की साइंस पढ़ी तुम सब ऐसी बुद्धू निकलोगी कि तुम इतनी उम्दा सोशल साइट से नहीं जुड़ोगी।''

''कौन करे फ़ेसबुक पर छोटा-छोटा टाइप ?''

''ये बता कि कैसे याद किया ?''

''अपने डिपार्टमेंट में कोई नई लेक्चरार शुभा शर्मा आईं हैं, जिनकी कोशिश से इसी चौबीस को एल्युमनी मीट रक्खी गई थी।''

''व्हॉट ? इतने वर्षों बाद कॉलेज जाग गया, उसे हमारी याद आ गई ? मैं तो एक वीक

नीलम कुलश्रेष्ठ
सी 6-151, ऑर्किड हारमनी,
एपलवुड्स टाउनशिप, एस. पी. रिंग रोड,
शैला, शान्तिपुरा सर्कल के निकट,
अहमदाबाद -380058 (गुजरात)
मोबाइल: 09925534694
ईमेल: Kneeli@rediffmail.com

के लिए इस महीने के फ़र्स्ट वीक में अपने शहर आई थी। तू ने पहले क्यों नहीं बताया ? तू फ़ेसबुक पर तो मैसेज कर सकती थी।''

''तुझे फ़ेसबुक पर देखा तू मिली नहीं।''

''गप्पा मत मार, ऐसा हो ही नहीं सकता। पूरे क्लास में सिर्फ़ तू ही जानती थी कि मैं किस नाम से लेखन करती हूँ। आसानी से फ़ेसबुक पर खोज सकती थी। फिर इस मीट के बाद ये फ़ोन नंबर कहाँ से मिला ?''

''देख मम्मी के जाने के बाद हमारा घर बिक गया तो कॉलोनी आना बंद हो गया। किसी लड़के को भेजकर आंटी यानी तुम्हारी मम्मी से तेरा मोबाइल नंबर मँगवाया था।''

उसे बेहद गुस्सा आने लगा,''पहले भी तो मँगवा सकती थी। अपने प्रोफ़ेसर्स, अपने क्लासमेट्स सबसे मिलना हो जाता। कितना अच्छा मौक़ा मेरे हाथ से निकल गया।''

''वह लड़का छुट्टी पर घर गया था।'' तभी दूसरी तरफ़ का मोबाइल 'होल्ड' पर चला गया। थोड़ी देर बाद उसे ही काटकर डायल करना पड़ गया। पता नहीं ये अपने आप 'होल्ड' पर गया है या कुछ लोग जानबूझकर भी होल्ड पर मोबाइल डाल देते हैं जब लम्बी बात करनी हो तो 'होल्ड' पर मोबाइल डाल दो। दूसरी तरफ़ वाला उत्सुकता में खुद ही डायल करेगा ही। उसके ख़र्चे पर इत्मीनान से बात करते रहो।

ज़िंदगी इतनी आगे निकल आई है, इतने ढेर से रिश्तों में बँध गई है, जैसे इस फ़ोन ने याद दिलाया है कि वंस अपॉन अ टाइम.....वह कभी कॉलेज भी पढ़ने जाती थी। उसने ही रीकॉल किया। उसने ज़बरदस्ती दिलचस्पी दिखाने की कोशिश की, ''वाह ! तुम और शशि तो लोकल हो फिर तो बहुत से लोग मिले होंगे?''

''हाँ, रवींद्र राजस्थान से आया था, टॉपर उज्जैन से, नवनीत दिल्ली से और....'' निशा किस-किस का नाम लेती जा रही थी। कुछ धुँधली शक्लें याद आ रहीं थीं, कुछ नाम दिमाग़ से फिसल रहे थे। वह समझ नहीं पा रही किस चेहरे पर कौन सा नाम फ़िट करे ?

''गर्ल्स में कौन-कौन पहुँच पाया ?''

''सिर्फ़ मैं और शशि ही पहुँच पाए। वैसे उस समय हम लोग थे ही कितने ? सिर्फ़ पाँच... चारू तो चेन्नई है, सदमे में है इसलिए आ नहीं पाई।''

''क्यों क्या हुआ ?''

''उसके हसबेंड को कैन्सर हो गया था, सात साल उसने बहुत सेवा की लेकिन...मैं चेन्नई अपने बेटे के पास गई थी तब उससे मिल आई थी। मारिया का भी पता नहीं चला कहाँ है ?''

''बेचारी... जिसने हमारे बैच की इज़्ज़त रखी थी, इश्क़ फ़रमाया था।''

निशा खिलखिलाकर हँस पड़ी, ''यार ! आजकल की लड़कियों को देखकर लगता है कि हमारे पास कितनी च्वाइस थी। हमारे ब्रांच में तेरह लड़के और सिर्फ़ पाँच लडकियाँ। कॉन्वेंट में पढ़ी कंचना से तो केमिस्ट्री की पढ़ाई नहीं हो पाई, उसने एम. एससी. छोड़कर इंग्लिश में एम.ए. किया था... फिर भी किसी का किसी के लिए दिल नहीं धड़का और कोई फ़िल्मी क़िस्सा बन नहीं पाया ....सो सैड।''

उसे भी हँसी रोकनी मुश्किल हो रही थी,''सिर्फ़ मारिया ने चुपके-चुपके जतिन से इश्क़ करने की कोशिश की और ज़ालिम ज़माना हिन्दू धर्म व ईसाई धर्म लेकर बीच में कूद पड़ा।''

''तुझे जानकर खुशी होगी अपने बैचमेट्स एक से एक अच्छी पोज़ीशन से रिटायर हुए हैं। अगर किसी का दिल भी धड़का होता तो वह आज लॉस में नहीं होती।''

''और ये बता। हमारे सामने जो नए लेक्चरार वोरा सर व बहल मैडम आईं थीं, जो हमेशा लाइब्रेरी या कहीं भी हमेशा साथ रहते थे, उनकी शादी हो पाई ?''

''हाँ, वो दोनों भी आए थे। तुझे याद है सिन्हा सर ने अपनी स्टूडेंट से शादी की थी। वे भी आए थे। उनकी हेल्थ बहुत ख़राब हो गई है, उन्हें व्हील चेयर पर लाया गया था। कड़क शामलाल सर, विंस्टन सर भी आए थे। यार, कभी हम भी ऐसे ही जर्जर हो जाएँगे?''

''ओ ! सोचने में भी डर लगता है। सबसे मिलने का बहुत अच्छी मौक़ा हाथ से निकल गया।''

''हम लोग जल्दी ही वॉट्सएप ग्रुप बनाने वाले हैं, तू ज्वाइन कर लेना।''

वो कह नहीं पाई कि उसे ज़बरदस्ती इन ग्रुप में जोड़ने वाले क्या कम हैं, जो एक से और जुड़ जाए। हैंग करते मोबाइल में मैसेज डिलीट करते करते हाथ दुख जाते हैं, लेकिन सबकी बदली हुई सूरत भी देखनी है।

निशा फिर पूछने लगी,''तू तो मुम्बई में है। मेरा बेटा भी वहीं पहुँचने वाला है फिर तो मुलाक़ात होगी और ये बता मुम्बई में तो होली फ़ीकी होती होगी?''

''अरे नहीं, नीचे एक लम्बे बड़े ड्रम में होली जलाई जा रही हैं, जिससे लपटों से बचे रहें व पूजा भी हो जाए और बाद में आसानी से सफ़ाई हो जाए। कल के होली के पैकेज के कूपन्स ख़रीद लिए हैं। बस सुबह नीचे उतर जाएँगे ब्रेक फ़ास्ट, लंच वहीं होगा। ऑरगेनिक कलर भी वही देंगे। रेन डांस का इन्तज़ाम भी है चाहे देश के अलग हिस्सों में कुछ लोग पानी को तरसते रहें। ये अपने बच्चों की अलबेली दुनिया है।''

''वाह।'' इसके बाद निशा से अपने-अपने बच्चों की सफ़लताओं व उनके परिवारों की बातचीत चलती रही।

रात को होली की पूजा व उसकी अग्नि के फेरे लेते समय मन भी जैसे गोल-गोल अतीत में घूम रहा था। हालाँकि उसे पीछे छूटी दुनिया से जुड़ना बेहद मुश्किल हो रहा था। खाना खाने के बाद टीवी देखते समय ऐसा लग रहा था की पिछले जन्म के दृश्य आ-जा रहे हैं। केमिस्ट्री, कुछ सूरतें पहचानी, कुछ अनजानी, कुछ याद आते नाम, कुछ फिसलते जाते नाम। कैसी थी वो प्यारी दुनिया भरोसेमंद। तब लड़के-लड़की के आपसी रिश्ते के लिए 'टाइमपास' कोई शब्द नहीं था। इक्का दुक्का लड़का - लड़की जो नज़दीक आने की हिम्मत करते थे तो इसका मतलब यही था कि उनकी शादी होनी ही है। और कहाँ होगी वह 'शंगमरमर'? ख़ूबसूरत भरा-भरा चेहरा व शरीर, सीप सी खुली आँखें, उसकी ख़ूबसूरती जैसे इतने वर्षों तक मन में फ्रीज़ पड़ी है। सिंघल सर को अपनी वह छात्रा इतनी पसंद थी कि अपने डॉक्टर बेटे से शादी करवाना चाहते थे। जाति का भी कोई चक्कर नहीं था। सारा डिपार्टमेंट मान चुका

था कि वह जिसे 'स' का उच्चारण ना कर पाने वाले सर 'शंगमरमर' कहते थे, के घर की बहू बनेगी।

वह जनवरी का महीना था। ठिठुरते से हम, लैब में ठंडे हाथों से पिपेट में कोई केमिकल भर रहे थे। फिर उसे बीकर में रक्खे दूसरे केमिकल में डालकर प्रेसिपिटेशन के लिए रख दिया व सभी अपने-अपने स्टूल्स लेकर एक साथ बैठ गईं क्योंकि ये रासायनिक क्रिया एक घंटे में पूरी होगी, हमारे पास गप्पें मारने का समय था। वातावरण को हल्की धुँध ढके हुई थी। इस धुँध को चीरता विस्फ़ोट हुआ था। शहर के प्रसिद्ध ज्वेलर्स की बेटी शर्मिला बोली थी,''कल शंगमरमर की शादी हो गई।''

''अरे नहीं! परसों तो मैंने उसे इनऑर्गेनिक लैब से स्टोर की तरफ़ जाते देखा था। सिंघल सर तो आज भी पढ़ाने आए हैं।''

''उनके बेटे से शादी नहीं हुई है। उसके पिता का बिज़नेस डूब रहा था इसलिए उसे उनके अधेड़ काले कलूटे मोटे पार्टनर से शादी करनी पड़ी।''

उस करवटें बदलती रात की यही उलझन थी कि कहाँ होगी वह शंगमरमर ? दूसरे दिन सुबह ही सुबह मोबाइल फिर 'टूँग' कर उठता है, ''हेलो नीरा ! मैं साहिल बोल रहा हूँ।''

''ओ.... टॉपर.... क्या हाल हैं ?''

''तुम सभी आज तक मुझे टॉपर ही कहते हो, वैसे ठीक हूँ। तुम हाउस वाइफ़ ही हो या कुछ कर रही हो ?'' नीरा ही सबके लिए पहेली थी क्योंकि वह दूर अहिन्दीभाषी प्रदेश में आ बसी थी।

''गूगल पर मेरा नाम देखो, पता चल जाएगा।''

''चलो कॉन्टेक्ट में रहेंगे।''

जब फ़ोन कट जाता है तो वह जल्दी से एस एम एस कर पूछती है- उसे ससुर के घर से काली कार मिली या नहीं ? क्योंकि वह हर पार्टी में गाना गाता था,''काली कार मिले ससुर के घर से।'' उसका उत्तर आता है, ''बीवी मैथ्स की लेक्चरार है -घर में दो-दो कारें हैं।''

पाँचवें दिन मोबाइल में वॉट्सएप पर एक नया ग्रुप चमक रहा था 'केमिस्ट्री नॉट आउट'। इस ग्रुप में बहुत से मैसेज थे- वेलकम नीरा व चारू !

वॉट्सएप पर ये मेसेज सभी सहपाठियों की तरफ़ से बार-बार था निशा को- धन्यवाद नीरा व चारू को खोजने के लिए।

चारु ने भाव विभोर होकर लिखा था- इस टेक्नोलॉजी को सलाम, जिसने हमको पैंतालीस साल बाद फिर जोड़ दिया। मेरे दोनों बेटे सॉफ़्टवेयर इंजीनियर्स हैं। एक बेटा यू एस है, दूसर चेन्नई। मेरे जीवन साथी ने सात वर्ष पूर्व मेरा साथ छोड़ दिया-

-आर आई पी -

-श्रद्धांजलि -

-नमन-

सभी को दिल तक बुरा लगा क्योंकि एक ही साथी के बारे में बुरी ख़बर थी। वॉट्सएप पर 'कंडोलेंस' के शब्द लिखने के अलावा क्या कर सकते थे ?

नीरा -प्लीज़ ! एल्युमनी मीट की फोटोज़ डालिए -

सानंद -नीरा ! ये रहीं फ़ोटोज़। अब पहेली है इनमे से कितनों को पहचान पाती हो?

नीरा मोबाइल पर आँखें गड़ाए अपने बैच में से नामों को खोज रही है। कुछ-कुछ विचलित है। उसके इन साथियों की युवा ज़िंदगी भी मकड़जाल की तरह व्यस्त व रोज़मर्रा समस्याओं से जूझते होगी ..वही अपने बच्चों की देखभाल, उनकी बीमारियाँ, उनका कॅरियर, नए रिश्तों को निबाहने की ज़िम्मेदारी, किसी रिश्ते से चोट खाने की तकलीफ़, घर के बुज़ुर्गों की बीमारी में देखभाल से और भी न जाने क्या-क्या। कितनी बार जीवन ने चक्करघिन्नी सा घुमा दिया होगा, ऑक्टोपस सा जकड़ लिया होगा। कोई रास्ता नहीं सूझता होगा। अपनी या परिवार के किसी सदस्य की छोटी या बड़ी बीमारी से मौत की आहट सुनते दलदल में फँसे जीवन को बड़ी जीवट से खींचकर निकाल लिया होगा। उन दुखों से निकलना असंभव लगा होगा लेकिन इस फ़ोटो में सभी जीवन को जीत लेने वाली मुस्कान से मुस्करा रहे हैं। इन कुछ-कुछ बुढ़ाए अनुभवी चेहरों जैसी हो गई है वह ? सूट-बूट पहने बालों में छिपी, कुछ खुली सफेदी लिए अच्छे लगते व्यक्तित्व में से किसको पहचाने ? निशा व शशि तो अपने शहर में ही प्राध्यापिका थीं, वह व सीनियर आरती उम्र की ढलान पर गरिमापूर्ण लगतीं साड़ी में पहचान में आ रहीं है लेकिन बाकी -वह लिखती है -एकदम दाएँ नीले सूट में सानंद हैं।

महेंद्र -नहीं ये तो मैं हूँ सानंद तो दाँई तरफ़ मुझसे तीसरे नंबर पर खड़ा है और ?

नीरा -तुम दोनों के बीच में हैं रवि व किशोर।

महेंद्र - नीरा! लगता है, सब वॉश्ड आउट हो गया है। रवि व किशोर तो एकदम मेरे पीछे खड़े हैं। मेरे पास तो प्रतीक व सुमंत खड़े हैं।

नीरा कैसे पहचाने चश्मा चढ़ाए कुछ-कुछ ड्रम जैसे बन गए उस समय के दुबले पतले रवि को या किशोर को।

नीरा -टॉपर ने फ्रेंच कट दाढ़ी रख ली है, फिर भी अपनी सदाबहार मुस्कान के कारण पहचान में आ रहे हैं।

महेंद्र -तुम मुझे पहचान भी कैसे पातीं ? मैं क्लास बंक करके क्रिकेट या फ़ुटबॉल खेलने में लगा रहता था।

नीरा -कैसा था वो ज़माना, हम लोग कितना रिज़र्व रहते थे। अपने क्लासफ़ेलो की अब हॉबीज़ पैंतालीस वर्षों बाद पता लग रही हैं।

टॉपर- नीरा! पता है ये जनाब आईओसी से डिप्टी मैनेजर के पद से रिटायर हुए हैं।

नीरा -वाह ! ये तो बहुत बड़ी बात है अपनी हॉबीज़ भी एन्जॉय कर लीं। कॉंग्रेट्स फॉर सच अ बिग सक्सेस।

महेंद्र के बॉक्स में डाउन टु अर्थ यानी कि नमस्कार करते दो जुड़े हाथ के इमोजी उभर आते हैं।

नीरा को अच्छा लग रहा है ये जानकार कि सानंद अपने ही शहर का जाना-माना वकील है, अजिताभ प्रदेश की प्रशासनिक सेवाओं से रिटायर हुआ है। किशोर ने अपने पारिवारिक व्यवसाय को चमका दिया है। रवि फोरेंसिक लैब से सीनियर साइंटिस्ट के पद से रिटायर हुआ है और अनिल के पास बयालीस वर्ष का विश्वविद्यालय में पढ़ाने का अनुभव है.....

कुछ दिन तक वही फ़ॉर्वर्डेड मैसेज व उनकी प्रतिक्रया में हाथों की अलग मुद्राओं के इमोजी का दौर चलता रहता है- हेल्थ कैसे मेंटेन हो -कुछ घरेलु नुस्खे, मखानों व

योग की अहमियत बताती पोस्ट। वॉट्सएप ग्रुप में पुरुष होंगे वहाँ 'पड़ौसन' को लेकर या पत्नी के स्थान पर 'वैकल्पिक व्यवस्था' के लिए मुँह में से टपकता पानी या पप्पू राहुल गाँधी जैसे कुछ जोक्स तो होंगे ही। सब उस पोस्ट पर डांसिंग इमोजी पोस्ट करते हैं जिसमें पैंसठ वर्ष की आयु को अधेड़ावस्था की शुरूआत बताई है यानी आज के फ़िटनेस के ज़माने में कोई पैंसठ वर्ष तक युवा जैसा तरोताज़ा रहता है।

तभी तीन चार दिन बात शशि व मधु वॉट्सएप ग्रुप में प्रगट होती हैं - नमस्कार ! सभी को। निशा ने इस ग्रुप के बारे में बताया।

-वेल्कम शशि व मधु -ये मैसेज बार-बार सबके बॉक्स में उभर रहा है।

सानंद -थैंक्स टु शशि कि उसने एक क्रूसेडर कोलम्बस की तरह निशा को खोज निकाला, निशा ने नीरा को वास्को डि गमा की तरह खोज लिया।

शशि जोश में अपने बढ़े हुए परिवार का परिचय देते हुए बरसों पहले हुई अपने बेटे की शादी का फ़ोटो डालती है।

सानन्द -शशि! मुझे याद है शक्तिनगर के बड़े कम्युनिटी हॉल में ये शादी हुई थी।

शशि -तुम्हें इतनी पुरानी बात याद है ?

सानंद के बॉक्स में स्माइली का इमोजी दिखाई देती है।

मधु -आप लोगों को जैसा पता है वह आज भी सच है कि मैं आज भी महाआलसी हूँ। मुझसे वॉट्सएप पर एक्टिव रहने की अधिक उम्मीद मत करिए।

नीरा- ..च ..च ..च अब तक कोई सुधार नहीं हुआ? तुम्हारी सास मेरे शहर में एक शादी में मिलीं थी। वे कह रहीं थी कि मधु हाउस वाइफ़ ही है। मेडिकल कॉलेज से पीएॅच. डी करने के बाद भी घर पर बैठी है।

मधु के बॉक्स में निर्द्वंद्व हँसता स्माइली का इमोजी उभर आती है।

दूसरे दिन ही शशि अपने मैसेज में फ़रमाइश करती है -नीरा व मधु तुम लोगों ने हमारी फोटोज़ तो देख लीं। अब तुम लोग भी अपनी फ़ोटो ग्रुप में डालो। हम भी तो देखें तुम्हारे चेहरों के बदलाव को।

नीरा -क्या करोगी हमारे दचके पिचके चेहरे देखकर ?

शशि -तुमने भी तो हमारे ऐसे चेहरे देख लिए, अब तुम्हारी बारी है।

नीरा -तुम मेरा नाम गूगल कर लो चेहरा भी दिखाई दे जाएगा व पता भी लग जाएगा कि मैं इन वर्षों में कौन सी घास छीलती रही हूँ।

लगता है कि सानंद ने सबसे पहले गूगल कर लिया है। दूसरी सुबह मैसेज चमकता है -नीरा ! बताओ कॉलेज मैगज़ीन में पब्लिश हुई तुम्हारी पहली कहानी 'केक्टस' के बाद की साहित्यिक यात्रा कहाँ तक पहुँची ?

नीरा के मन में झुरझुरी से लहरा गई। उसकी बी.एससी. करते समय लिखी प्रथम कहानी क्लास मेट ही नहीं बहुत से लोग उस कहानी के नाम से उसे पहचान लेते हैं। क्या यही होती है शब्दों से पहचान कि कोई अड़तालीस वर्ष पूर्व कहानी लिखे और लोग उस कहानी का नाम तक याद रक्खें ? वह आश्चर्य करती हँसते इमोजी साथ टाइप करती है।

-अरे ! तुम्हें उस कहानी का नाम आज तक याद है?

सानंद -हमें तो तुम्हारा पार्टी में गाया पहला गाना भी याद है - ज़िंदगी इक सफ़र है सुहाना।

नीरा के सच ही आसमान से नीचे गिरने की बारी है। ज़िंदगी ऐसे तेज़ दौड़ी कि उसे ही याद नहीं की उसने अपने बैच की वेलकम पार्टी में कौन सा गाना गाया था। एक सीनियर गुगलानी भी किशोर कुमार जैसी आवाज़ में उन्हीं के गाने गाता था। अब वह कहाँ होगा ? उसकी सब बहुत इज़्ज़त करते थे क्योंकि वह अपने पिता की दूध की दुकान पर अक्सर दूध बेचता दिखाई दे जाता था व पढ़ाई के लिए भी गंभीर था।

नीरा-तुम्हारी याददाश्त बहुत तेज़ है। मुझे तुम्हारे पापा की शक्ल याद है क्योंकि वह कॉलेज पत्रिका के संपादक थे। किस डिपार्टमेंट में थे, ये याद नहीं।

सानंद- वे इंग्लिश के प्रोफ़ेसर थे व हिंदी के व्यंगकार।

नीरा संकोच में बता नहीं पाती कि वह कैसा ज़माना था उसके उन्हीं सम्पादक पिता के लिए एक बार अपनी रचना क्लास के बहार खड़े सानंद को देते हुए उसके कैसे पसीने छूट गए थे कि कहीं कोई ग़लत न समझ ले।

कुछ दिनों बाद सानंद चुटकी लेता है - नीरा से पूछो कि नारी विमर्श क्या होता है ?

पीछे और भी मैसेज हैं यही माँग करते।

नीरा -जिसे आप 'फेमिनिज़्म' कहते हैं वही नारी विमर्श है।

बहुत से मैसेज - वी नो द फ़ेमिनिज़्म बट वी वांट मोर डिटेल्स।

तभी सानन्द नीरा के 'दचके पिचके चेहरे' कमेंट वाली पोस्ट को इंगित करके लिखता है -नीरा! महिलाओं की ख़ूबसूरती ढूँढ़ना हमारा काम है क्योंकि महिलाएँ एक दूसरे की क्रिटिक होतीं हैं।

नीरा -ये ग़लत अफ़वाह उड़ाकर महिलाओं में फूट डालने की कोशिश की गई है। सानंद ! समय कितनी हिम्मत दे देता है। कॉलेज में तो ऐसी बात कहने की तो हिम्मत नहीं थी।

सानंद -जब सब अंग शिथिल हो जाते हैं तो ज़ुबाँ तेज़ चलने लगती है।

बीच में नीरा व मधु के लिए फ़ोटो डालने के सन्देश आ रहे हैं।

महेंद्र -सानंद ने अच्छी बात कही। हम लोग सिलेक्शन करेंगे कि सन 1974 की मिस में से कौन सी सबसे ख़ूबसूरत मिस 2018 है।

ग्रुप में नीचे उठे हुए अँगूठे व स्माइली के इमोजी की लाइन लग गई है।

सानंद -हममें से कौन निर्णय लेगा कि हमारे बैच की कौन सी लड़की आज सबसे ख़ूबसूरत है। मैं प्रेसीडेंट से उसके लिए परमवीर चक्र रिकमंड करूँगा।

अनिल -भाई मैं तो सिर्फ़ वोटिंग करूँगा। ग्रुप का प्रत्येक मेंबर टी वी शो की तरह वोट देगा।

महेंद्र -सन् 2018 की सबसे सुन्दर महिला के लिए चर्चा चल रही है हमको मालूम है सानंद साहब तो महिला की आँखों व बालों के हिसाब से सिलेक्शन करेंगे।

सानंद -नहीं, नहीं मैं तो समाजवादी हूँ। मेरे लिए सब मित्र समान हैं।

तभी नीरा के मैसेज से विस्फ़ोट होता है -मैं तो ये मेसेज पढ़कर बहुत हैरान हो रही हूँ। हम लोग एक दूसरे की प्रगति जानने के लिए जुड़े हैं। जबसे लेडी क्लासमेट्स की ख़ूबसूरती की चर्चा वॉट्सएप पर शुरू हुई है,

मैं इस बातचीत के आरम्भ से ही बहुत जलभुन रही हूँ। ये हम सहपाठियों का ग्रुप है न कि कोई ब्यूटी कॉम्पीटीशन स्टेज। आपकी सभी महिला मित्रों को इस उम्र में ऐसी बात सुनकर बहुत बुरा लग रहा होगा, बस मैंने लिखने की हिम्मत कर दी है।

तुरंत ही प्रतीक का नीरा के मैसेज के नीचे मैसेज चमकने लगता है -हम लोगों ने कॉलेज में दो वर्ष बहुत अच्छे बिताए हैं। हमारे अंदर का बच्चा अब शादीशुदा है, हम नन्हें-मुन्नों के दादा-दादी बन चुके हैं। हम कोशिश करें कि दोबारा उस बचपने की तरफ़ नहीं लौटें। ये हमारा नया बना परिवार है। हमें किसी को दु:ख नहीं पहुँचाना चाहिए। मैं सबकी तरफ से क्षमा माँगता हूँ। आगे से हम सभी एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करेंगे।

रवि व किशोर भी अपने मैसेज से इस बात का समर्थन करते हैं।

दूसरे दिन सुबह ही सुबह सानंद गोल-गोल मैसेज लिखता है -पॉज़िटिव एटीट्यूड इन नेगटिव डायरेक्शन/थिंकिंग इज़ आल्सो नॉट गुड।

नीरा अपने विरोध वाला मैसेज नीचे इंगित करके लिखती है -इट इज़ कॉल्ड 'नारी विमर्श' एन्ड 'फ़ेमिनिज़्म' यानी कि जब भी स्त्री प्रतिष्ठा पर आघात हो तब कोई उसके विरुद्ध आवाज़ उठाए।

सब महिलाएँ कानों में तेल डाले हैं। नीरा जान बूझकर निशा को फ़ोन नहीं करती क्योंकि वह जोशीली आवाज़ में ज़रूर शाबासी देगी,'नीरा! बहुत अच्छा किया।' सामने तो क्या वॉट्सएप पर भी टाइप करने की कोई ज़हमत नहीं उठाना चाहती हैं- 'नीरा ! मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ।'

जब वे एम. एससी. फ़ाइनल में थे तब भी उसने ऐसे ही मोर्चा सँभाला था। उस वर्ष उनकी ऑर्गेनिक कैमिस्ट्री ब्राँच से टॉपर विभाग के सचिव पद के लिए खड़ा हुआ था। लड़के टॉपर के पक्ष में थे लेकिन सब लड़कियाँ फ़िज़िकल ब्राँच के विनय को वोट दे आईं थीं। उसी के पक्ष में थीं, शायद वो हैंडसम अधिक था। शायद उस समय लड़कियों का मनोविज्ञान हो कि विभाग का प्रतिनिधित्व कोई सजीला व्यक्तित्व करे। इनऑर्गेनिक ब्रांच से कोई खड़ा नहीं हुआ था।

चुनाव के बाद विनय ने एक रेस्टॉरेंट में में लंच का इन्वीटेशन दिया था। चौदह पंद्रह लड़के-लड़कियों का एक साथ रेस्टोरेंट में जाना उन दिनों के हिसाब से बहुत ही हाई टैक बात थी। चारू जिसके अकेले बाल कटे थे, वह कार में आती थी उसने पहले ही लंच पर आने के लिए मना कर दिया था व मायूसी से कहा था,'मैं अपने घर वालों को जानतीं हूँ। वे परमीशन नहीं देंगे तो उनसे पूछना भी बेकार है।'

दूसरे दिन वे सब चुपचाप केमिकल लैब में काम कर रहे थे। टॉपर अपनी जलन दिखाए जा रहा था, कुछ बेइज़्ज़ती की बात भी थी कि साथ की लड़कियों ने दूसरे ब्रांच के लड़के को सचिव बनवा दिया, 'और सुनाओ रवि ! कल बिहाइव रेस्टोरेंट के लंच में क्या-क्या खाया ? क्या मज़े उड़ाए ?'

सारे लड़के दबी हुई आवाज़ में हँसने लगे। वह गुस्से में पिपेट दबाना छोड़ बीकर मेज़ पर रखकर ज़ोर से बोली थी, 'इनडाइरेक्ट वार क्यों किया जा रहा है ? हम लोग कल बिहाइव रेस्टोरेंट गए थे। हमसे पूछिए कि लंच में क्या-क्या खाया ?'

पिन ड्राप साइलेंस क्या होती है, यह उसने तब जाना था। सब लड़के सकपकाए उस बेहद शांत लैब में शांति से काम करते रहे थे। कहाँ होगा विनय ? उसका ही कोई पता नहीं है।

बाईस अप्रैल को ये सभी वैज्ञानिक 'पृथ्वी दिवस' के उपलक्ष में वॉट्सएप पर एक दूसरे को बधाई देते हैं। पर्यावरण सरंक्षण के लिए क्या काम हो रहा है, उसकी जानकारी देते हैं। कुछ उत्साही अपने विभाग में अपने सहकर्मचारियों के साथ पौधा लगाते हुए अपनी पुरानी फ़ोटो डाल देते हैं। वह भी पर्यावरण सरंक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दम्पति का फ़ोटो डालती है व बताती है कि इनके सम्पर्क में रहकर उसने इस विषय पर पुस्तक लिखी थी। अभी-अभी तो उसकी ई-बुक भी आ गई है। तीन चार घंटे के बाद वह वॉट्सएप चैक करती है कि उसकी जानकारी पर तो बधाई के ढेर लग जाएँगे। कम से कम ये वैज्ञानिक आश्चर्य तो करेंगे कि 'एनवायरमेंट' के लिए 'पर्यावरण' संस्कृत शब्द एक गुजराती वैज्ञानिक ने दिया था।

प्रतीक, रवि व मधु उसे बधाई देते हैं व उत्सुकता जताते हैं कि वे उसकी ई-बुक पढ़ेंगे; लेकिन बाकी सबकी उँगलियाँ मैसेज टाइप करने से चुप हैं..... सुन्न पड़ गईं हैं। यहाँ तक कि निशा भी तस्दीक नहीं करती कि वह पुस्तक जब प्रकाशित हुई थी तो नीरा ने मुझे भेजी थी। ना कोई उस वैज्ञानिक को सैल्यूट, ना कोई दो जुड़े नमस्ते करते हाथ के इमोजी डालता है। अलबत्ता वह वॉट्सएप पर निशा का फ़ॉरवर्डेड मैसेज देखकर हैरान है -हमेशा अपने दोस्तों की सुनो, क्योंकि घर में उनकी कोई नहीं सुनता। निशा के मैसेज पर लाइक्स का ढेर लग गया है, जिनकी लम्बी लाइन है।

वह बेशर्म होकर मोबाइल पर टाइप करती है -निशा ! मधु, शशि व चारु पृथ्वी दिवस की मेरी पोस्ट पर ना सही, कम से कम सन 2018 की इनकी ब्यूटी क्वीन चुनने की बात पर तो कुछ कमेंट करो।

बार-बार वह मोबाइल पर वॉट्सएप खोलकर साइंस ग्रुप चेक कर रही है.... वॉट्सएप पर सन्नाटा है। निशा, मधु, शशि व चारु, बैंक अकाउंट भरे, पेंशन लेती दादी, नानियों में से किसी ने भी उसके समर्थन में खड़े होने की कोशिश नहीं की। उसे अपनी सरकारी मेडीकल डॉक्टर जिठानी याद आ जाती हैं, जो अक्सर कहती रहती थीं,''मेरी माँ हमे हमेशा समझाया करती थीं कि आदमियों के मुँह नहीं लगना चाहिए।''

उसे लग रहा है पृथ्वी सच ही बेहद गोल है। उसने शब्दों के झंडे उठाए जिस बिंदु से यात्रा आरम्भ की थी -बरसों बदहाल चलकर भी वह वहीं धड़ाम गिर पड़ी है। कुछ भी तो नहीं बदला। उसे लगता है चौराहे पर उल्टी कोई आकृति सिसक रही है। वह हलके से उसे पकड़कर सीधा करती है, देखकर हैरान हो जाती है उसके चेहरे से पता नहीं लग रहा ये स्त्री है या पुरुष। किसी एब्स्ट्रेक्ट पेंटिंग सा धुँधलाया चेहरा लग रहा है। फिर भी वह पहचान लेती है ये वही है जिसके लिए वह लड़ती रही है। ऐसा लगता है उसके सिर के ऊपर का हिस्सा जानबूझकर काट दिया गया है। वह बुरी तरह झुँझला जाती है। सदियों से चले आ रहे सड़े-गले विचारों की 'एल्युमनी मीट' आख़िर किस सदी में बंद होगी ?

***

अनुत्तरित प्रश्न

डॉ. प्रदीप उपाध्याय

आज वास्तव में मैं बहुत घबरा गया था जब उसका मैसेज आया कि- ''डार्लिंग, आज रात की फ़्लाइट से निकल रही हूँ और कल सुबह तुम्हारे इण्डिया के समय के हिसाब से 9:30 बजे पहुँच जाऊँगी।''

मैंने अपनी घबराहट के बावजूद उसे मैसेज किया था कि- ''ओ.के. डार्लिंग, आई विल बी देयर, लेकिन तुम कहाँ पहुँच रही हो, दिल्ली या मुम्बई!''

तब उसने कहा था कि -''मैं अपने एजेंट से बात करके तुम्हें बताऊँगी। वैसे भी इण्डिया में पहली बार विज़िट करुँगी। मुझे प्लेस का नाम याद नहीं आ रहा है। पिछली बार तुम्हें जब मैसेज किया था और मैंने पूछा था कि इण्डिया में किस जगह रहते हो,तब तुमने जो जगह बताई थी, वही जगह मैंने अपने एजेंट को बता दी थी।''

इस पर मैंने उससे प्रतिप्रश्न भी किया था कि - ''ठीक है एजेंट ने ही टिकट बुक किया होगा लेकिन जब आप किसी अन्य देश में जा रहे हो तो आपको भी इसकी पूरी जानकारी होना चाहिए।''

इस वार्तालाप के बाद उसका कोई रिप्लाई नहीं आया तो मुझे संशय भी होने लगा कि कोई विदेशी लड़की केवल संदेशों के आदान-प्रदान के आधार पर किसी फ़ेसबुक फ्रेंड पर कैसे आँख मूँदकर विश्वास कर सकती है! उसके बारे में तरह-तरह के विचार मेरे मन में आने लगे। मेरी बेचैनी भी बढ़ती जा रही थी। सामने आती विपत्ति और मन में घबराहट के चलते यह भी विचार आ रहा था कि मैं भी कहाँ इस सोशल मीडिया के चक्कर में पड़ गया। माना कि साहित्यकारों को पाठकों और श्रोताओं की ज़रूरत होती है जब तक वे वाह-वाह सुन न ले... उनका खाना हज़म नहीं होता है और इसीलिए अपने अनुसरणकर्ताओं की संख्या बढ़ने पर वह फूला नहीं समाता है ..लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि आँखे मूँदकर सभी को मित्र बना लिया जाए!.....उसके आने से सबसे बड़ा डर तो यही सता रहा था कि श्रीमतीजी को क्या कहूँगा..कि स्काटलैंड से मेरी एक मित्र आ रही है और उसके साथ मुझे इण्डिया की सैर पर जाना है। वैसे भी इस लिखने-पढ़ने के चक्कर ने मुझे शौकीन मिजाज का तमगा तो दिलवा ही दिया था। घर वालों की निगाह में भी अपना कैरेक्टर कुछ संदेहास्पद हो गया था.. श्रीमतीजी बात-बात पर ताने भी देती रहती हैं कि यह बुढ़ापे में बाल डाय करने और जींस-टीशर्ट पहनने का शौक क्यूँ चर्राया हुआ है! तुम अपने जवानी के दिनों में भी इतना बनते सँवरते नहीं थे, जितना अब बनने-सँवरने लगे हो। पहले तो तुम्हारे शर्मीले स्वभाव के कारण कोई महिला मित्र नहीं होती थी, अब

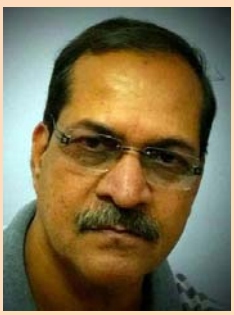

डॉ. प्रदीप उपाध्याय
16,अम्बिका भवन
उपाध्याय नगर, मेंढकी रोड़
देवास, म.प्र.455001
मोबाइल: 9425030009
ईमेल: pradeepru21@gmail.com

सोशल मीडिया पर इतनी महिला मित्रों के साथ कैसे चैटिंग कर लेते हो। ख़ैर, उनसे इतना सुनने के बाद भी जैसे-तैसे समझा लेता हूँ और मना भी लेता हूँ। मुझे लगता है कि इस बार भी मना लूँगा ...कह दूँगा कि प्रिये वह मेरी फॉलोअर है.. बहुत बड़ी प्रशंसक है लेकिन बच्चे कहाँ मेरी बात का विश्वास करेंगे.. नई जनरेशन को फुसलाना इतना आसान भी तो नहीं! वे सीधे-सीधे कह देंगे कि ''पापा, क्यों बुढ़ापे में जगहँसाई करवा रहे हैं, अपनी उम्र का तो कुछ ख़्याल करिए।''

मैंने सोचा कि घरवालों को सभी को बता दूँ कि वह तो फ़ेसबुक फ्रेंड है...पहली बार भारत भ्रमण के लिए आ रही है। हम सभी लोग मिलकर घूमने का प्लान बना लेते हैं लेकिन फिर मेरे मन में विचार आया कि क्या यह संभव है। मैंने अपने से ही प्रश्न किया कि दोस्ती जिस तरीके से हुई और आगे बढ़ी, उसे देखते हुए पारिवारिक स्वरूप देना क्या संभव होगा? मैं अपने लिखने-पढ़ने के समय के अलावा बाकी समय में तो मोबाइल और लैपटॉप से ही चिपका रहता हूँ।

कितनी ही तो फ्रेंड रिक्वेस्ट आती रहती हैं। समझ ही नहीं पाते हैं कि कोई क्यों मित्र बनना चाह रहा है या चाह रही है; जिनका साहित्य से दूर-दूर तक कोई नाता ही नहीं है। कई स्त्री वेशधारी यानी मुखौटों वाले पुरुष और ऐसे ही बैंक खातों में साइबर डाका डालने को तत्पर विदेशी महिलाएँ भी मित्र बनाने को तत्पर। कई लोगों को न चाहकर भी मित्र बना लिया, अपनी लम्बी-चौड़ी मित्र सूची दिखाने के लिए। कई विदेशी ललनाएँ भी फ्रेंड रिक्वेस्ट भेजती हैं, मालूम रहता है कि फ़र्ज़ी हैं, इरादे नेक नहीं है फिर भी बहुत से लोग झाँसे में आ जाते हैं।

जब एनी केविन की फ्रेंड रिक्वेस्ट आई तो मुझे ऐसा ही लगा कि यह भी फ़र्ज़ी ही होगी लेकिन जैसा कि मैं मित्रता अनुरोध स्वीकारने के पहले मैसेज कर पूछता भी रहा हूँ कि क्या आपकी साहित्य में रुचि है और आपने मित्र अनुरोध क्यों भेजा है। तब एनी का जवाब भी आया। उसने लिखा कि ग़लती से भेज दिया था, चाहें तो ब्लॉक कर दें। मुझे लगा कि वह ईमानदारी बरत रही है और मुझे भी एक विदेशी मित्र मिल रही है, तो मैंने उसकी फ़ेसबुक प्रोफ़ाइल देखी और पुष्टि कर ली। संतुष्ट होने पर मैंने भी मैसेज़ कर दिया कि नहीं, कोई बात नहीं, आपका मित्रता अनुरोध स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। वैसे भी मुझे तो अपनी कहानियों के लिए नए-नए किरदारों की ज़रूरत रहती ही है और फिर इस बार तो एक विदेशी बाला थी। मैंने सोचा चलो अपना टाइम भी पास होगा और लिखने के लिए एक विदेशी कैरेक्टर मिलेगा किन्तु यह किसे पता था कि वह तो गले ही पड़ जाएगी!

मित्रता अनुरोध स्वीकारने के बाद कई दिनों तक गुड मॉर्निंग, गुड नाईट, लंच, डिनर हुआ या नहीं, आज का दिन कैसा रहा, अभी क्या कर रहे हो जैसे औपचारिक मैसेज ही चलते रहे। इसके बाद उसी ने मुझसे मेरा वह मोबाइल नंबर माँगा जिस पर मैं वाट्सएप यूज करता हूँ। मैंने कारण पूछा तो उसने लिखा कि वह फ़ेसबुक पर कम समय तक ही रह पाती है, वाट्सएप पर चैटिंग में सुविधा होगी। मुझ पर भी बुढ़ापे में जवानी सी मदहोशी छाने लगी थी तो बिना सोचे-समझे नंबर भी दे दिया। उसने एक किस करते हुए अपनी फ़ोटो वाट्सएप पर भेज दी, जैसा कि आजकल हिन्दुस्तान की नई पीढ़ी पर भी असर देखा जाने लगा है। उसकी फ़ोटो देखकर मेरा मन बाग-बाग हो गया। मुझे भी उससे चैटिंग में आनंद आने लगा था। हालाँकि न तो उसने और न ही मैंने कभी मोबाइल पर बातचीत की न वीडियो कॉलिंग की कोशिश की। अपनी दोपहर तो उसकी सुबह, अपने सोने का समय तो उसकी शाम, फिर भी मैसेज का इंतज़ार तो रहता ही था।

उसने अपने संबोधन में डियर से डार्लिंग कर दिया और एक बार तो हद ही कर दी जब उसने भारत आने का प्रोग्राम बताया और अपने मैसेज में लव यू लिख दिया। मुझे लगा कि शायद कहीं कुछ ग़लतफहमी पैदा हो गई है और इसीलिए पुष्टि के बतौर मैसेज कर दिया कि डार्लिंग, तुमने मेरी प्रोफ़ाइल फ़ेसबुक पर तो देखी ही होगी। उसने बदले में यह लिख भेजा कि क्या तुमने भी देखी है। तब मैं समझ गया कि उसने मेरी प्रोफ़ाइल देखी है। आगे उसने यह भी मैसेज किया कि उसके वैकेशन नेक्स्ट वीक से प्रारंभ होंगे, अत: जल्दी ही पैंडिंग काम निपटाना है। हालाँकि मैं अंग्रेज़ी जानता हूँ और उससे संदेशों का आदान-प्रदान भी अंग्रेज़ी में ही हो रहा था तब भी मैंने उसे यह मैसेज किया था कि- 'मैं ज़्यादा अंग्रेज़ी नहीं जानता, हो सकता है कि मेरे मैसेज तुम्हें समझ न आते हों। तुम ही मुझे अंग्रेज़ी सिखाते रहना।'' तब उसने रिप्लाई किया था कि- ''डोंट वरी,व्हेन वी विल बी टुगेदर इन योर कन्ट्री, आय विल टीच यू इंग्लिश।''

मुझे भी इस तरह के संवादों में मज़ा आ रहा था। मुझे लगा कि वह भी इन क्षणों का उसी तरह से आनंद ले रही है जिस तरह से मैं ले रहा हूँ। फिर भी मुझे इस बात का अहसास नहीं था कि वह भारत आने के मामले में इतनी गंभीर है। मैं तब भी उसकी बातों की गंभीरता को नहीं समझ पाया जब उसने मैसेज किया कि मेरे वैकेशन प्रारम्भ हो चुके हैं और मुझे इण्डिया आने के लिए अपने एजेंट को टिकट बुक कराने के लिए प्लेस बताना है। तुम इण्डिया में कहाँ रहते हो।

मैंने कहा कि-''सामान्य रूप से विदेशी सैलानी दिल्ली या मुम्बई ही आते हैं।'' तब उसने कहा था कि -''नहीं, उस जगह का नाम चाहिए, जहाँ तुम रहते हो। क्या तुम जहाँ रहते हो, वहाँ की खास जगहों पर घुमाना नहीं चाहते हो।'' उसे बुरा न लगे, इस लिहाज से मैंने बोल दिया था कि - ''नहीं ऐसी बात नहीं है। मैं मध्यप्रदेश के इंदौर शहर में रहता हूँ।''

लेकिन मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि वह वास्तव में वैकेशन पर इण्डिया आने का प्लान कर रही है। आज जब उसने मैसेज किया तो मैंने घबराहट में सबसे पहले वाट्सएप पर उसे ब्लॉक कर दिया और फ़ेसबुक पर मित्रता सूची से निकाल दिया। इतना हो जाने के बाद रात में नींद कोसो दूर थी...कभी किताबों के पन्ने पलटता रहा, तो कभी सोने की कोशिश करता रहा।... घबराहट भी रही कि कहीं वह फ़ोन लगाकर अपना गुस्सा न उतार दे या फिर कल इंदौर पहुँचकर परिवार के सामने अपना आक्रोश प्रकट न कर दे; क्योंकि फ़ेसबुक पर मेरी सभी जानकारियाँ उपलब्ध थी ही। मुझे

अपना बुढ़ापा बिगड़ने और साहित्य के क्षेत्र में बदनामी का डर सताने लगा। रात में बिस्तर पर इधर से उधर करवटें बदलता रहा। आख़िरकार मोबाइल फिर से हाथ में थामकर अपनी बैचेनी दूर करने का प्रयास करने लगा। पहले वाट्सएप पर मैसेज चेक किए फिर मैसेंजर पर मैसेज चेक करने लगा। अचानक सामने एनी कैविन का मैसेज देखकर चौंक गया क्योंकि यहाँ मैंने उसे ब्लॉक नहीं किया था, उसने अंग्रेज़ी में ही लिखा था जिसका भावार्थ कुछ इस प्रकार था- ''तुम्हें क्या हो गया जो अचानक मुझे व्हाट्सएप पर ब्लॉक कर दिया। मैं बहुत ही निराश हो गई, तुम्हारे इस व्यवहार से। तुम यह सब मुझे पहले ही बता सकते थे इन दिनों में कि तुम इच्छुक नहीं हो। कम से कम मेरा पैसा और समय तो बर्बाद नहीं होता तुमसे तुम्हारे देश में मिलने के नाम पर। यह कोई समस्या नहीं है। फिर भी जैसा मैंने सुना और मेरी धारणा थी कि इण्डिया के लोग बहुत सभ्य और सुसंस्कृत हैं और उनका व्यवहार दुनिया के देशों में अद्वितीय है लेकिन तुम्हारे व्यवहार ने मेरी धारणा बदल दी। मैंने तुम्हें एक अच्छे मित्र और अभिभावक के रूप में देखा था और सोचा था कि तुमसे इण्डिया के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानने को मिलेगा। तुम्हारे साथ देश की सभ्यता और संस्कृति के दर्शन हो सकेंगे लेकिन बहुत हर्ट किया है तुमने। अब मैं तुम्हारे देश कभी नहीं आना चाहूँगी। गुड बाय। आय हेट यू।''

मैं स्तब्ध रह गया मैसेज पढ़कर.. उफ्फ, यह क्या कर दिया मैंने ...अपने क्षुद्र स्वार्थ की ख़ातिर। एनी मेरे बारे में जो भी धारणा बना लेती, उसका मुझे इतना अफ़सोस न होता लेकिन मेरे देश और मेरे देशवासियों के प्रति! मैं अपने आप को माफ नहीं कर पा रहा था। फिर भी एक ख़्याल मन में था ही कि क्या वास्तव में वह यहाँ आकर मुझसे मिलने को इच्छुक थी और यहाँ की सभ्यता और संस्कृति से रू-ब-रू होना चाहती थी। कई प्रश्न थे जिनका जवाब मिलना अब मुश्किल था; क्योंकि अब उससे संदेशों के माध्यम से भी बात नहीं हो सकती थी, आख़िर उसने मुझे सभी जगह ब्लॉक जो कर दिया था।

***

लघु कथा

अहसास

चन्द्रकान्ता अग्निहोत्री

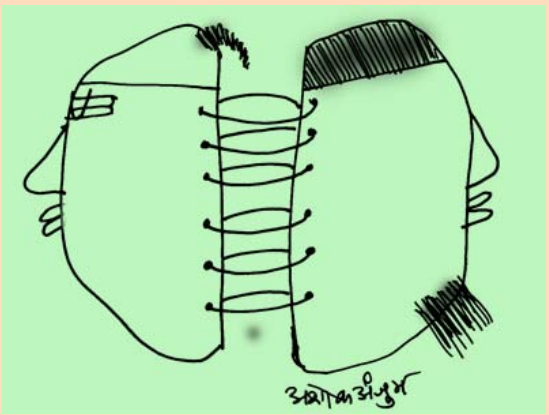

लायलपुर स्टेशन पर गाड़ी वहाँ बस रहे लोगों को बँटवारे के बाद हिन्दुस्तान ले जाने के लिए खड़ी थी। हरी वर्दी वाले नंगी तलवारें लिए हुए आते और लोगों का सामान लेते हुए भाग जाते। रमाकांत सामान लेकर स्टेशन पर आया। बेटी और पत्नी को वह घर ही छोड़ आया था। घर स्टेशन के बिलकुल सामने था। उसने सामान रखा ही था की कोई छीन कर भाग गया। पलक झपकते ही मार-काट शुरू हो गई। रमाकांत पास के अस्पताल में घुस गए। सामने देखा तो होश उड़ गए क्योंकि डॉक्टर भी मुसलमान था।

उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा ''मुझे बचा लीजिए डॉक्टर साहब ! सब कुछ लुट गया, बस बीवी और बच्ची के लिए जीना चाहता हूँ।''

डॉक्टर ने पीछे के स्टोर की ओर संकेत किया। कुछ देर बाद कुछ लोगों के भीतर आने की आवाज आई। ''यहाँ कोई आया है क्या ?''

''सुबह से मक्खियाँ मार रहा हूँ। कोई नहीं आया।''

वे चले गए। कुछ देर बाद शान्ति हुई।

''बाहर आ जाओ।

वह डॉक्टर के पैरों पर गिर पड़ा। उसकी आँखों में आँसू थे।

''चलो, तुम्हारे घर छोड़ दूँ।

''नहीं, शुक्रिया।

''भाई तुम नहीं जानते मैं कितना खुश हूँ। तुमसे भी ज़्यादा। जाओ अपने बीवी बच्चों को ले आओ। अभी सब ठीक है। ख़ुदा तुम्हारी मदद करे। और मुझे जो अहसास हुआ है, मैं उसका बयान नहीं कर सकता।''

''मैं भी। मुझे आज समझ में आया कि जब कोई इंसान होता है सिर्फ इंसान, वह न तो हिन्दू होता है न मुसलमान।''

***

चन्द्रकान्ता अग्निहोत्री, 404, सेक्टर - 6, पंचकूला 134109, हरियाणा
मोबाइल: 7973833595, ईमेल: agnihotri.chandra@gmail.com

अकेलापन

डॉ. कुसुम नैपसिक

आज सब काम जल्दी ख़त्म हो गया अब और क्या रह गया। बस खिड़की के किनारे खड़े होकर आते-जाते लोगों को निहारना। आज सोच ही लिया बाहर जाना ही है, यह भी कोई बात है इतनी दूर, परदेस में कोई दो पल बात करने को भी नहीं। कल ही एक देसी लड़की दिखी थी। आसपास ही रहती होगी। यह सोचकर लता घर से निकल गई। सामने वही लड़की आती दिखी। लता मन ही मन सोच रही थी कैसे बात करूँ! यहाँ विदेशी लोग तो फिर भी मुस्कराकर 'हेलो' कह देते हैं लेकिन देसी लोग तो देख के भी बिना देखे एक तटस्थ भाव से आगे बढ़ जाते हैं।

जैसे ही वह लड़की पास से गुज़री लता ने एक मधुर मुस्कान फेंकी, उधर से जवाब में मुस्कान मिली। अरे भई! जो दोगे वही तो मिलेगा। लता का दिल गुनगुना उठा। लड़की चली जा रही थी। अरे थोड़ी देर ठहर तो, लता ने सोचा।

''कहाँ से हो?,'' लता ने पीछे मुड़कर पूछा।

लड़की रुकी और हँसकर बोली, ''इंडिया से।''

''अरे! मैं भी वहीं से हूँ।''

''इंडिया में कहाँ से?''

''दिल्ली से।''

''अरे यह क्या इत्तेफ़ाक है मैं भी दिल्ली से हूँ।''

''तुम तो मेरी पड़ोसी निकली।''

''यहाँ कहाँ रहती हो?'' लता ने अगला सवाल दागा।

लड़की ने थोड़ा हिचकते हुए बताया इस सामने वाली बिल्डिंग के पीछे एच ब्लॉक में। और फिर वहीं पे खड़े-खड़े दोनों ने अपने घरों की खिड़कियाँ दिखा दीं। लड़की ने अपना नाम रुचि बताया।

इस छोटी सी मुलाक़ात ने लता का दिन गुलज़ार कर दिया। उसे पता लगा कि रुचि यहाँ अपने पति के साथ रहती है और उसका पति ओहायो यूनिवर्सिटी में पढ़ता है। वह कोई काम नहीं करती, घर पर ही रहती है। लता को लगा एक सहेली मिल गई। उम्र में ज़रूर वह उसकी बहू के ही बराबर है लेकिन बात करने के लिए एक हमउम्र की नहीं हमदिल की ज़रूरत होती है।

लता ऐसे ही जहाँ भी जाती कोई न कोई सहेली बना ही लेती। यों तो उसका भी एक घर है दिल्ली में। इलाहाबाद में खेती भी है लेकिन उसकी समझ में ही नहीं आता कि वह कहाँ जाए, कहाँ रहे? भगवान् ने सब कुछ दिया एक बेटा और एक बेटी। लता को किसी से कोई शिकायत नहीं है लेकिन अपना बेटा और अपनी बेटी कहाँ अपने होते हैं जब उनका अपना परिवार बस जाता है। लता के पति ने तो पन्द्रह साल पहले ही उसका साथ छोड़ दूसरे लोक में पनाह ले ली। परिवार में अपने बच्चों को पालने के लिए उनको पढ़ाने-

Kusum Knapczyk
Hindi lecturer, Duke University,
Asian & Middle Eastern Studies,
2204 Erwin Road. Box 90414,
Durham, North Carolina
27708-0414
Email : kusum.knapczyk@duke.edu

लिखाने के लिए उसने हज़ारों संघर्ष किए। इस संघर्ष ने उसे मान-सम्मान दिया और उसके चेहरे पे खरे सोने सी चमक आ गई। उसके बच्चे भी अच्छे निकले और पढ़-लिखकर अच्छी नौकरियों पर लग गए। यह लता के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। आज सब कुछ था उसके पास। काश राकेश आज यहाँ होते तो देखते कैसे उसने सब कुछ सँभाल लिया है। लेकिन यह भी क्या? इतनी ख़ुशी लेकिन कोई बाँटने वाला ही नहीं। बच्चों की शादियाँ हुईं और रह गई लता अकेली।

उसके बच्चे तो हमेशा ही ज़िद करके उसे अपने पास बुलाते लेकिन वह कहाँ जाए उसकी समझ में ही नहीं आता था। बेटी के घर जाए तो समाज और दामाद का ही डर सताता था। कभी कोई ग़लती हो जाए तो दामाद जी तो कह देंगे जाओ अपने बेटे के पास और बेटे के पास जाती है तो बहू से यही डर लगता है कि कहीं कोई बात बुरी न लग जाए। वैसे दामाद और बहू दोनों ही भले थे। उसके साथ कभी भी किसी ने कहा-सुनी नहीं की; लेकिन उसके साथ रहने की ख़ुशी और दुख भी नहीं जताया तो उनके भावों को लता कभी समझ नहीं पाई। अगर वह वहाँ है तो भी कोई परेशानी नहीं है अगर वह वहाँ नहीं है तो भी नहीं। अरे यह भी कोई बात हुई? यही सोचते हुए लता छह महीने बेटी के घर चली जाती है और छह महीने अमेरिका अपने बेटे के पास।

कभी-कभी लता सोचती, काश कि उसकी बहू उसे ताने कस के उसका दिल छलनी कर देती या कुछ बुरा-भला ही कहती तो वह कुछ आँसू बहा कर अपनी बहू की बुराई ही कर लेती। कुछ दिन इसी बहाने कट जाते लेकिन यहाँ तो सब ठीक है लेकिन जैसे कुछ ठीक नहीं है। उसे हमेशा लगता कि बेटे और बेटी के घर में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। किसी को न कोई परवाह है और न ही कोई परेशानी है और ना ही कोई परेशान करनेवाला। उसे अपना जीवन महत्त्वहीन लगने लगा। किसी को उसकी ज़रूरत नहीं है। यही ख़ालीपन और सूनापन भरने के लिए वह हमेशा ही बाहरी लोगों से दोस्ती करती फिरती। संघर्ष के दिनों में कितना मज़ा होता है यह उसने अब ही जाना।

पहले बच्चों को सुबह-सुबह तैयार करके वह दौड़ती-भागती दफ़्तर पहुँच जाती थी। कितने लोग उसके साथ काम करते थे, उनके साथ दुख-सुख की बातें करके और काम की आपाधापी में दिन गुज़र जाता था। शाम को घर जाते ही बच्चों के साथ बतियाते और कल के सपने देखते उसके दिन मज़े से कट रहे थे। बच्चे भी बिना किच-किच किए अपना सब काम निपटा देते थे। इससे उसे आस-पड़ोस में भी आने-जाने का मौक़ा मिल जाता। दिल की साफ़ लता हमेशा ही दूसरों के कामों में सहायता करती जिससे लोग उसे बहुत इज़्ज़त देते थे।

लेकिन आज बुढ़ापे में वह लोगों से बात करने को तरस गई है और अमेरिका में इस कमबख्त अंग्रेज़ी ने उसका रास्ता रोक दिया है। पिछले साल जब वह अमेरिका आई थी तो उसने लौरा से दोस्ती बढ़ानी चाही तो बात ''हेलो'', ''हाय'' से आगे नहीं बढ़ पाई क्योंकि लौरा के अमेरिकन उच्चारण को समझना उसके लिए बहुत कठिन था और उसके अंग्रेज़ी के उच्चारण को समझना लौरा के लिए बेहद मुश्किल। लौरा को घी के बारे में समझाते हुए उसकी ज़बान सूख गई और शायद ही लौरा के पल्ले कुछ पड़ा हो। इसके बाद तो लता ने सोच लिया देसी लोगों से ही बात करेगी, चाहे हिन्दी भाषी हो या नहीं।

आज रुचि से हुई मुलाक़ात उसे बहुत अच्छी लगी. वह सारा दिन हल्का-हल्का महसूस कर रही थी। अगले दिन जैसे ही बेटा-बहू दफ़्तर के लिए रवाना हुए, लता ने नाश्ता करके रसोई की झटपट सफ़ाई कर दी। सारे बर्तन तरतीब से लगा दिए। तीन ही तो कमरे थे, उसने सब कमरों में बिस्तर झाड़कर वैक्यूम करने का निश्चय किया। बेटे के कमरे में जैसे ही उसने तकिया हटाया तो गर्भनिरोधक गोलियों के पैकेट मिले। उसका तो जैसे दिमाग़ ही सुन्न हो गया। कहाँ तो वह पोते-पोतियाँ खिलाने का सपना पाल रही थी और कहाँ उसके बच्चे इस बारे में सोच भी नहीं रहे थे। क्या हो गया है इस पीढ़ी को? ज़िंदगी में स्वतंत्रता की कितनी चाह है इस पीढ़ी को, लेकिन वास्तव में वे समझते ही नहीं कि बच्चे पति-पत्नी के लिए बंधन नहीं बल्कि जुड़ाव है। अब वह क्या करे? अपने बेटे से साफ़-साफ़ कह भी नहीं सकती, बहू से तो कहने का सवाल ही नहीं उठता। पता नहीं क्या सोच बैठे। अपनी इस व्यथा को किससे बाँटे! यही सोचते-सोचते उसकी नज़र खिड़की पर गई। सामने रुचि अपने पति के साथ कहीं जा रही थी। उन दोनों को वहीं बैठी-बैठी हाथों से गालों को दबाए वह देखती रही, गुलाबी स्कर्ट और सफ़ेद ब्लाउज रुचि के गहरे साँवले रंग पर फब रहा था। हँसती चहकती वह अपने पति से बात करती जा रही थी। लता उनको देर तक देखती रही, जब तक वह दोनों आँखों से ओझल न हो गए।

थोड़ी देर और ऐसे ही बैठी रही तो सुस्ती घेर लेगी और यूँ ही दोपहर हो जाएगी, यह सोचते ही वह उठी और बेटे का कमरा ज्यों का त्यों छोड़ दिया। मन ही मन निर्णय भी ले लिया कि कुछ नहीं बोलेगी। आख़िर उनको अपनी ज़िंदगी के फ़ैसले लेने का पूरा अधिकार है।

मन कड़ा कर उसने बाक़ी के काम निपटाए यह सभी काम उसे बहुत प्रिय हैं और वह बड़ी ख़ुशी से करती है लेकिन गानों के साथ। उसके बेटे ने कंप्यूटर में दुनिया भर के पुराने गाने भर दिए हैं। लताके गानों की आवाज़ तेज़ करके सभी काम फ़टाफ़ट निपटाती जाती है; लेकिन आज उसे कुछ भी उतना अच्छा नहीं लग रहा है। वह थोड़ी देर बैठकर सुस्ताने लगी तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई। सामने रुचि थी। दरवाज़ा खुलते ही बोली, ''नमस्ते आंटी। आप कैसी हैं? मैंने कहीं आपको डिस्टर्ब तो नहीं किया?''

लता ने हँसते हुए उसके सिर पे हाथ रखा और बोली, ''नहीं बेटा, अन्दर आओ। आज मैं तुम्हें एक स्पेशल चाय पिलाती हूँ, तुलसी वाली!''

''क्या?,'' रुचि की आँखें फटी की फटी रह गईं। ''यहाँ तुलसी कहाँ मिलती है?''

''अरे बेटा, मैं ही कुछ तुलसी के बीज अपने पर्स में रखके इंडिया से ले आई थी। यहाँ गमले में बो दिए और देखो, वे जी गए।''

रुचि की ललचाई आँखें देख के वह भाँप गई कि अभी भी उसमें अपनी संस्कृति

और धर्म ज़िंदा है। चाय पीकर दोनों ने ढेर सारी बातें कीं। फिर रुचि अपने घर चली गई। लता को बहुत अच्छा लगा चलो रुचि ख़ुद ही उसके घर आई है अब वह भी उससे बेतक़ल्लुफ़ी से मिल सकेगी। यहाँ आए दस दिन हो गए थे और लता को कोई साथी नहीं मिला था। अगले दो-तीन दिन तक रुचि दिखी नहीं तो लता को लगा ज़रूर कोई बात हो गई है। लता रुचि के घर पहुँच गई। रुचि ने उसे अदरक की चाय और गुझिया खिलाई। बातों बातों में रुचि रुआँसी होकर बोली, ''अच्छा हुआ आंटी आप आ गईं, मेरे पास तो आपका फ़ोन नंबर भी नहीं था। इधर कुछ दिनों से उदास थी क्योंकि मेरी मम्मी को आना था लेकिन उनको वीज़ा नहीं मिला।''

लता ने कहा, ''कोई बात नहीं तुम्हारी मम्मी अगली बार आ जाएँगी।''

रुचि ने कहा, ''मैं बहुत दिनों से सोच रही थी कुछ काम करूँ। बहुत बोर हो गई हूँ। लेकिन मेरा वीज़ा इसकी इजाज़त नहीं देता।''

लता ने नौकरी से सेवानिवृति के बाद काम के बारे में सोचा भी नहीं। उसने रुचि से कहा, ''आज कहीं बाहर घूमने चलें?''

''कहाँ?''

''फार्मर्स मार्किट चलते हैं।''

''वहाँ क्या है?,'' रुचि ने पूछा।

अभी तक तुम कभी फार्मर्स मार्किट नहीं गई। अरे फिर तो तैयार हो जाओ मैं तुमको वहाँ ले चलती हूँ। पास ही है।

रुचि जल्दी से तैयार हो गई। दोनों साथ-साथ निकल पड़ीं। सच में ज़्यादा दूर नहीं था। वहाँ लोकल किसानों ने बहुत सारी सब्ज़ियाँ बेचने के लिए सजा रखी थीं। पहली बार रुचि ने ताज़ी हल्दी और अदरक को उसके पत्तों सहित देखा था। दोनों ने बहुत थोड़ी-सी सब्ज़ियाँ खरीदीं क्योंकि वह दुकान से ज़रा ज़्यादा ही महँगी थीं। बाज़ार के आख़िरी छोर पर कुछ दुकानें खाने-पीने की थीं। पिज़्ज़ा, बर्गर, बरीतो, पीता-हम्मस से लेकर, शिकंजी और जूस के स्टॉल लगे थे। दोनों ने बर्गर और शिकंजी ली।

दोनों ने एक साथ ही कहा, ''अगर समोसा और चाय होता तो मज़ा आ जाता। यह बर्गर भी कोई खाने की चीज़ है!''

दोनों हँस पड़ीं।

''क्यों ना हम दोनों ही समोसे और चाय का स्टॉल लगाएँ।'' लता ने यूँही कह दिया।

''मैंने मास्टर्स की है वह भी साइंस में, मैं तो ऐसा करने का सोच भी नहीं सकती। लोग क्या कहेंगे। भारत में लोग मेरा मज़ाक उड़ाएँगे कि अमेरिका दुकान खोलने गई थी।'' रुचि बोली।

लता ने कहा, ''हाँ, तुम ठीक कहती हो। भारत में तो सबके काम से ही उसकी पहचान होती है। कौन छोटा कौन बड़ा यह उसका काम ही बताता है। लेकिन यह तो सोचो समय और स्थिति के साथ बदलना चाहिए या नहीं?''

रुचि ने कहा, ''बदलना तो चाहिए लेकिन यहाँ अपने मन पर भी चोट लगेगी।''

लता को ख़ुद ही बहुत अजीब लग रहा था इस बारे में बात करके, लेकिन उसने रुचि को मनाने की कोशिश की। उसने कहा, ''अच्छा हम इस मार्किट में अगली बार चाय और समोसे का स्टॉल लगाएँगे अगर अच्छा नहीं लगा तो फिर बंद कर देंगे।''

रुचि को लगा चलो कुछ मज़े के लिए ही कर लेते हैं कौन-सा यह असली काम है।

दोनों बर्गर के स्टॉल पर गईं और पूछा, ''स्टॉल लगाने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है?'' पता चला ज़्यादा कुछ नहीं बस दस डॉलर देने होते हैं और एक मेज़ पर स्टॉल लगा सकते हैं।

दोनों को बात जँच गई।

रुचि ने कहा, ''समोसे और चाय मेरे घर पर ही बनेंगे।''

रुचि के पति को भी कोई दिक़्क़त नहीं थी। वह भी चाहता था कि बस पत्नी व्यस्त रहे। रात को ही पति-पत्नी समोसे और चाय का सारा सामान खरीद लाए। अगले दिन लता ने घर का काम जल्दी ही निपटाया और रुचि के घर पहुँच गई।

रुचि ने पहले ही आलू उबाल लिए थे। लता आलू छिलने बैठ गई और रुचि को मिर्च और धनिया काटने का निर्देश देने लगी। काम जल्दी होने लगा। लता ने आलू का मसाला तैयार कर उसे मटर और अदरक के छौंके के साथ भून दिया। अब बारी थी समोसे को बेलने, भरने और तलने की। दोनों ने गाने चला दिए और बातें करती रहीं। इस तरह पता भी नहीं चला कब समोसे बन गए। क़रीब सौ समोसे और चाय के साथ वे दोनों तैयार हो गईं। रुचि ने कार निकाली और सब सामान उसमें डालकर फार्मर्स मार्किट की ओर चल दी।

थोड़ा-थोड़ा डर भी था दोनों को। पता नहीं क्या होगा? आज कोई आएगा भी या नहीं। खैर वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक मेज़ के पैसे देकर चाय और समोसे सजाकर रख दिए। थोड़ी देर में एक औरत आई और समोसे को देखकर बोली, ''व्हाट इज दिस?'' रुचि ने बताया कि इसमें आलू-मटर है और इसे समोसा कहते हैं। औरत ने एक समोसा ख़रीदा और चली गई। लता को एक बात सूझी और उसने एक काग़ज़ पर समोसे की सामग्री और दाम लिख कर मेज़ पर लटका दिया। जिससे लोगों को समझने में आसानी हो। थोड़ी देर में पहले वाली औरत वापस आई और बोली, ''इट वाज़ वैरी टेस्टी, कैन आई हेव वन मोर?''

लता ने उसे समोसा दिया। उसको समोसा खाते देख बहुत से और लोग भी वहाँ आ गए और समोसा और चाय ख़रीदने लगे। सभी सिर्फ़ यही कहते जा रहे थे, ''इंडियन फ़ूड इज़ वैरी टेस्टी।''

बस देखते ही देखते सब समोसे ख़त्म हो गए और चाय भी थोड़ी ही बची थी। रुचि और लता को विश्वास नहीं हुआ कि इतनी जल्दी सब सामान ख़त्म हो जाएगा। तभी कुछ और लोग भी आए लेकिन लता और रुचि को अफ़सोस के साथ बताना पड़ा कि सब समोसे और चाय ख़त्म हो गई है।

रुचि ने आधे पैसे लता को दे दिए और आधे खुद रख लिए। रुचि और लता को इस काम में बहुत मज़ा आया, सबसे ज़्यादा मज़ा तो इस बात में आया कि वे दोनों अपने भारत के खाने को दुनिया के सामने ला रही हैं। भारत की तारीफ़ वह भी विदेश में बहुत सुकून देती है। उन दोनों ने फ़ैसला किया कि वे इस काम को करती रहेंगी।

अब तो रुचि और लता दोनों ही बहुत व्यस्त हो गईं, साथ ही उन्हें आमदनी और जीने का एक मकसद भी मिल गया। ज़िंदगी एक ढर्रे पर आ गई।

***

माँ तुम मदर इंडिया क्यों नहीं बन गई

ममता शर्मा

मुझे नहीं पता कि तुम ये पत्र पढ़ पाओगी भी या नहीं मगर हर ख़त पढ़ने के लिए लिखा भी तो नहीं जाता।

मेरे लिए यह ख़त वह सब कुछ कहना सुनना चाहता है जो मैं किसी और को कह या सुना नहीं सकती। हो सकता है यह ख़त यूँ ही संदूक के किसी कोने में पड़ा रह जाए या फिर यह भी हो सकता है यह ख़त कभी छुपाने के लिए किसी किताब के अंदर रखा जाए और वहीं दबा रह जाए और फिर किसी दिन पीला ज़र्द होकर और टुकड़े-टुकड़े होकर अस्तित्व हीन हो जाए; मगर मेरे लिए इसका होना या ना होना या अपनी मंज़िल तक पहुँचना उतना मायने नहीं रखता, मेरे लिए तो बस यह एक आस है ; मेरे मन का एक आईना है।

माँ हम दो ही तो थे मैं और क। मैं जानती थी कि हम दोनों को ही तुमने अपनी कोख से जन्म दिया था। यह तो तुमने बहुत बाद में बताया था कि क और मेरे बीच का 6 साल का फासला ख़ाली नहीं था। उसमें भी तुम्हारी कोख से किसी ने जन्म लिया था; क्या पता वह कौन था शायद उसे तुम्हारी कोख नसीब नहीं थी। मैं जानती हूँ आज तुम बेहद उदास होगी; कौन माँ होगी ऐसी जो ऐसी घटनाओं से विचलित नहीं हो जाए। हर माँ होती होगी, मुझे नहीं पता माँ तुम्हारा विचलित होना कितना क के लिए है और कितना क के किए के लिए। मैं तुमसे सवाल नहीं करना चाहती। माँ तुमने तो मुझे सवाल करने का हक़ कभी दिया भी नहीं। याद करो माँ जब हमने शहर बदला था तब जबकि बौजी ज़िंदा थे और क का और मेरा स्कूल बदलने की बारी आई थी तो तुमने मेरे लिए सरकारी स्कूल चुना था और क को तुम 20 किलोमीटर दूर एक अंग्रेज़ी स्कूल में भेजने का ख्वाब देख रही थी। सच कहूँ माँ मुझे उस दिन अच्छा नहीं लगा था। क्यों उस दिन मुझे अच्छा नहीं लगा था यह मुझसे कोई उस दिन पूछता तो मैं बता नहीं पाती क्योंकि मैंने तो हमेशा से यही देखा था कि क के लिए तुम कैसे जान निछावर किया करती थी। मुझे भी वही सब सही लगता था। लगता था कि सब ठीक-ठाक है, इसमें कुछ भी अलग नहीं है। क का दुनिया में होना कितना ज़रूरी है और बाकियों का होना ना होना बराबर है। इतनी शिद्दत से यह बात लगती थी कि मैं अपनी दुनिया में होने की बात भूल जाया करती थी। और तुम भी तो माँ, तुम्हें भी तो यही लगता था कि दुनिया में मेरा और तुम्हारा होना तो हो ही जाएगा लेकिन क और बौजी का होना कितनी बड़ी बात है; उसके लिए तुम कितनी कोशिश किया करती थी। सच बताना माँ तुम किसके लिए दुखी हो आज क के लिए, किए के लिए। तुमने भी तो कितने दु:ख सहे माँ, बौजी जब तक रहे तुम पर आतंक करते रहे और तुम भी सहती रही वह सब। तुम कितनी नार्मल थी माँ वह सब झेलते हुए। आख़िर तुमने बौजी के जाने के बाद भी घर की दहलीज़ पार की। मगर बौजी के रहते तुम इतनी कमज़ोर क्यों बनी रही। मुझे वह दिन बहुत अच्छी तरह याद है जिस एक दिन क के सामने और मेरे सामने बौजी ने पहली बार तुम्हारे बाल कस कर पकड़ लिए थे। क यह सब देख कर तुम्हारे साथ चिपक गया था। उस दिन तुमने घर की दहलीज़ क्यों नहीं पार करी थी माँ; अगर तुम उसी दिन घर की दहलीज़ लाँघ जाती तो हो सकता है इस कहानी का अंत कुछ और ही होता। क उन दिनों कितना मासूम था माँ और तुम भी कितनी भोली थी।

मैंने भी उसी दिन ही तो पहला पाठ पढ़ा था औरत और मर्द के रिश्ते का। उसी दिन पहला पाठ पढ़ा था मर्द और औरत के रिश्ते का इससे पहले तो बौजी सिर्फ बौजी थे और माँ सिर्फ माँ थी। लेकिन उस दिन बौजी ने जब तुम्हारे बाल खींचकर तुम्हें मारा था तो मर्द

ममता शर्मा
57, साउथ एंड, मानसरोवर रोड 2
पोस्ट हटिया,
राँची 834003, झारखंड
मोबाइल: 9430734424 /9973958722
ईमेल: mailtomamta.s@gmail.com

हो गए थे और तुम औरत। तुमने बताया था कि बौजी की मार में दरअसल अत्याचार जैसा कुछ नहीं था और यह बताया था कि मर्द का मज़बूत होना ही प्रकृति है..उस दिन मेरा भी मन हुआ था ताक़तवर बनने का शायद इस दर से कि कहीं कोई किसी दिन मुझे भी ऐसे ही .....

हम दोनों मूकदर्शक थे। हम कर भी क्या सकते थे। उस दिन बौजी मुझे तो कल्पनाओं के दानव लगे थे माँ और माँ पता नहीं क को बौजी कैसे लगे थे शायद डरावने या शायद बहुत ज़्यादा शक्तिशाली; मगर मुझे तो उसके बाद बौजी कभी अच्छे नहीं लगे। मेरे अंदर भी समझ नहीं थी मगर फिर भी मन में डर और उदासी जैसी कोई चीज़ भर गई थी। बौजी उसके बाद कभी अच्छे नहीं लगे उस दिन भी नहीं जिस दिन अस्पताल में बिस्तर पर पड़े हुए खाली आँखों से तुम्हें देख रहे थे। उनकी आँखें कितनी बड़ी-बड़ी लग रही थीं। बड़ी और डरावनी भी। तुम क्यों रोई थी उस दिन माँ। मुझे तुम्हारा रोना बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा था। सच कहो माँ तुम बौजी के जाने से दुखी थी या तुम्हें मेरी और का की परवरिश की चिंता सताती थी। उस दिन बौजी दुनिया छोड़कर चले गए थे लेकिन अपना एक अंश छोड़ गए थे।

बहुत कुछ याद आता है माँ....याद है ना माँ पीली ड्रेस जो मैं अन्ना के साथ जाकर अपनी फीस के पैसे से ले आई थी और तुमने कहा था कि मैं दिन भर फैक्टरी में खटकर तुम्हें पालूँ और तुम फीस के पैसे उड़ाओ। जब भी मैंने वो ड्रेस पहनती थी मुझे तुम्हारी वही बात याद आती थी इसीलिए एक दिन मैंने उसे संदूक में बंद कर दिया था और फिर जब उसे निकाला था तो मैं उससे बहुत बड़ी हो चुकी थी। मुझे उससे बड़ा हो जाना बहुत अच्छा लगा था माँ क्योंकि मैं उसे कभी पहनना ही नहीं चाहती थी। क को तुमने ऐसा कुछ कभी नहीं कहा जब वह शाम को देर से बाहर रहने लगा तो तुम डरने लग गई थी....यह डर तुम मुझसे बाँट लिया करती थी लेकिन हर बार जब क बाहर से आता तो तुम उसके सामने पानी हो जाएगा करती; तुम्हारी आवाज़ भी धीमी हो जाती। कभी-कभी तो तुम्हारी आँखें भी भर आती थी, जब तुम उसके सिर पर हाथ फेरती और मुझे लगता मुझे भगवान ने क क्यों नहीं बनाया। आज मैं तुम्हारे सामने एक सच बयान करना चाहती हूँ कि मेरी गुस्ताख़ियों को जब तुम माफ नहीं करती थी तो मैं भगवान के सामने जाकर यही मानती थी कि अगले जन्म में मुझे क होना है। क और मैं एक साथ बड़े हो रहे थे। मैं 6 साल आगे और वह मुझसे 6 साल पीछे। मगर तुम्हारी नज़र में सिर्फ मैं बड़ी हो जाती थी और क हमेशा छोटा रहता था।

एक दिन जब मोहल्ले के लड़कों ने क की शिकायत की थी और वे सारे हमारे दरवाज़े पर आकर खड़े हो गए थे तब भी तुमने क को निर्दोष माना था और तुम बाकियों के घर पर झगड़ने चली गई थी; तुम्हें लगा था कि यह सारे बाकी लोग इस बिन बच्चे बाप के बच्चे के पीछे पड़ गए हैं; क्योंकि तुम्हें हमेशा यही लगता था कि क के सिर से बाप का साया उठ जाने के कारण यह सब कुछ हो रहा है। क सचमुच बड़ा हो रहा था उसकी आवाज़ बदल रही थी ; मगर वह पढ़ाई में पिछड़ने लग गया था एक दिन जब स्कूल से बुलावा आया तो पहली बार तुमने मुझ पर अपना भरोसा जताया था और कहा था कि मैं भी स्कूल चलूँ क्योंकि वहाँ टीचर जो कुछ कहेगी उसे मैं ही समझ सकती हूँ। उस दिन पहली बार तुम्हें दुखी होते देखा था। इससे पहले क के लिए तुम हमेशा खुश ही रहा करती थी तुम तो उसे घर का चिराग, घर का इकलौता सहारा, परिवार और समाज में तुम्हारी इज़्ज़त का सबब ही तो जानती और मानती आई थी। उस दिन तुम्हें पता चला था कि उन तमाम दिनों में जब तुम सोच रही थी कि क स्कूल जा रहा है असल में वह कहीं और जा रहा था और उसके बारे में किसी को भी पता नहीं था कि दरअसल वह जा कहाँ रहा था। स्कूल वालों ने कह दिया कि एक मौका और देंगे अगर ऐसा आगे चलता रहा तो वे क को स्कूल से निकाल देंगे।

उस दिन पहली बार माँ तुम्हें अपनी परेशानी को अपनी मैली साड़ी के पल्लू से पोंछते हुए देखा था। मैं तुम्हारे साथ-साथ और सिर नीचे झुका कर चल रही थी। मेरे अंदर हिम्मत नहीं थी कि मैं तुम्हारे चेहरे की तरफ देखूँ। उस दिन मैं तुम्हारी परेशानी में परेशान नहीं थी मैं खुश थी मुझे लगा था कि आज जब क शाम के समय घर आएगा तो तुम उसे वैसे ही कुछ सुनाओगी जैसे तुम मुझे सुनाया करती हो लेकिन तुमने वैसा कुछ नहीं किया था तुम तो फिर पानी हो गई थी। याद है ना माँ मैंने एक दिन स्कूल से लौटकर तुम्हें बताया था कि मदर इंडिया में नरगिस दत्त ने अपने बेटे को मार दिया था तो उस दिन तुम अजीब नज़रों से मुझे देखती रही थी।

'ऐसी अशुभ बात नहीं किया करते।' तुमने यही कहा था।

'माँ भी कभी अपने बेटे को मारती है वह भी अपने हाथ से!' तुमने यह कहा था।

'उसने ग़लत काम किया था माँ' मैंने तर्क दिया था।

'जिस दिन माँ बनेगी उस दिन पता चलेगा क्या सही है और क्या ग़लत।'

क अब नहीं बचेगा तुम जान गई हो न माँ इसीलिए तुम जीते जी ऐसा कुछ देखना नहीं चाहती; और इसीलिए तुमने ख़ुद को ख़त्म करने के लिए ..... तुम तो किसी की भी माँ हो सकती थी माँ उसकी भी जिनके साथ क और उसके दोस्तों न.....

डॉक्टर कहते हैं कि तुम ख़तरे से बाहर हो जाओगी और तुम कहती हो तुम जीना नहीं चाहती और क को तुम अब भी मरने नहीं देना चाहती। तुम बिस्तर पर पड़ी हुई अभी भी कहती हो कि उन चार लड़कों के बीच क नहीं था जिन्होंने लड़की को उस रात भजन सिंह की दुकान के सामने से अगवा कर लिया था। दो पल को मान भी लो कि क उन चारों में नहीं था मगर वे तीन.....उनका क्या माँ उन्होंने भी ऐसा क्यों किया तुम बाकी तीनों की भी तो माँ बन सकती हो। सच्ची बताओ माँ तुम क के लिए दुखी हो या क के किए के लिए। माँ उस पहले दिन जब बौजी ने तुम्हारे बालों को भींचकर पकड़ लिया था तो मेरे अंदर एक बड़ा सा डर पैदा हो गया था, तुम्हारे अंदर सब कुछ ख़ाली था। किसी बड़े गहरे और सूखे कुँऐं जैसा ख़ाली और क के अंदर डर उसी दिन मर गया था। माँ सब कुछ उसी दिन हो गया था और उसके बाद सब कुछ रक्तबीज होता चला गया था !

बस इतना ही.... इतिश्री !

तुम्हारी.....

* * *

पोस्टमार्टम

विकेश निझावन

आज फिर एक हत्या हो गई। इस मोहल्ले में यह चौथी हत्या है। कमाल है, एक माह के भीतर चार हत्याएँ, और हत्यारे का पता नहीं चल पा रहा।

जनाब! ये हत्या नहीं, आत्महत्या है। कोई गले में फंदा लगाकर या ज़हर खाकर मर जाए तो हम क्या कर सकते हैं।

जी हाँ, नंदनी ही है यह। जिसने सुबह सवेरे ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली। सुबह दरवाज़ा खोला, तो देखा फ़र्श पर गिर पड़ी थी। बदन पूरी तरह से नीला हो आया था। सच में, बड़े दु:ख की बात है। छोटे-छोटे दो बच्चे। पति वैसे ही दमे का मरीज़ है। सुनते तो यही थे कि पति-पत्नी में ख़ूब बनती है। फिर यह सब कैसे हो गया?

पुलिस आ चुकी है। अभी सारी छानबीन करेगी। लाश तो पोस्टमार्टम के लिए अस्पताल भेज दी गई है। नंदनी के पति शिबु ने बहुत कहा था, रहने दीजिए साहब। बदन पहले ही कैसा हो आया है; लेकिन पुलिस वाले कहाँ मानने वाली थी। एक ने तो शिबु की बाज़ू पर कसकर छड़ी जमा दी थी-ऐ ! पीछे हट!

नंदनी के मायके में यह ख़बर जाने कैसे पहुँची कि सभी रिश्तेदार झट से आ पहुँचे। फिर तो कोहराम ही मच गया। बच्चों को देखकर तो गली मोहल्ले वाले भी आँसू बहाए बिना न रह सके। अधिकतर लोग ऐसे थे, जिन्हें दु:ख कम, यह जानने की उत्सुकता अधिक थी कि नदंनी ने आत्महत्या क्यों की..... और फिर वाकई में यह आत्महत्या या हत्या?

पूरे आठ साल होने को आए हैं नंदनी के ब्याह को। बड़ी ख़ुश दिखाई देती थी। कभी कोई ऐसी बात न देखी, न सुनी। सारे मोहल्ले वालों के मुँह पर यही बात थी, लेकिन लक्ष्मी हाथ नचाती बोली थी, 'आए-हाय! भीतर की बात कोई चेहरे पर लिखी होवे क्या क्या! अब मुझे ही देख लो, पचास बरस होने को आए बिरजू के बाप के साथ रहते हुए, आज तक कभी किसी ने जाना कि मैं कितनी दु:खी हूँ!' वहाँ बैठे सभी लोग ठहाका मार कर हँस दिए थे।

विकेश निझावन
557-बी सिविल लाइन्स,
अम्बाला सिटी 134003, हरयाणा
मोबाइल: 8168724620
ईमेल: vikeshnijhawan@rediffmail.com

नंदनी की माँ का तो बुरा हाल था। ज़रा होश आता कि फिर पछाड़ खाकर गिर पड़ती। नंदनी का बाप पहले रोता रहा, फिर चुप हो गया। मर्द है, कहाँ तक आँसू बहाए! लोग भी तो अब उसी के पास आ रहे थे। दुनियादारी भी तो निभानी है। लोगों की ज़ुबान पर एक ही सवाल था- यह कैसे हो गया?

नंदनी का बाप एक ही बात दोहराए चला जा रहा था, 'ससुराल वालों से हमें कोई शिकायत नहीं। दामाद तो बहुत अच्छा है जी। नंदनी ने भी कभी किसी की शिकायत न की। बस कोई फ़ितूर सवार हो गया होगा सिर पर। जब अपनी ही मति मारी जाए, तो कोई क्या कर सकता है?'

शिबु तो अब भी चुप था। वह टकटकी बाँधे बच्चों की ओर देखे जा रहा था। नंदनी के बाप ने ऐलान किया,'अब लाश इधर लाने की ज़रूरत नहीं। अस्पताल से सीधे ही ले चलते हैं।'

'नहीं, पहले वह इधर ही आएगी।' शिबु लगभग चिल्ला पड़ा था।

'रहने दे बेटा!' नंदनी की माँ बोली, 'अब इधर लाकर क्या होगा। बच्चे और तड़पेंगे।'

'नहीं, एक बार और अपने घर को देख लेगी। बच्चों से भी मिल लेगी।'

'अब वह कुछ नहीं देख सकती बेटा। किसी से नहीं मिल सकती।' नंदनी की माँ फफक पड़ी।

'नहीं!' शिबु एक बार फिर गरजा, 'एक बार उसने कहा था मरने के बाद भी वह इस घर का सब कुछ देखती रहेगी।'

शिबु पर पागलपन सवार हो गया है, सभी ने यही सोचा और चुप हो गए। एक बार उसे और देख लेगा, तो ठीक हो जाएगा।

जगन ने भीतर आकर ख़बर दी, 'बाहर दो पुलिसवाले आए हैं। शिबु को बुला रहे हैं।' 'अब मुए ये पुलिस वाले न छोड़ेंगे!' नंदनी का बाप गरजा, 'घबरा नहीं बेटे! हम तेरे साथ हैं। हम जानते हैं तुम लोगों का कोई दोष नहीं। वह तो अपनी मौत मर रही है बेटा।' शिबु का पीला पड़ गया चेहरा देख नंदनी का बाप उसे सांत्वना दे रहा था।

शिबु ने एक पलक अपनी बच्ची की ओर देखा, फिर झटके से बाहर निकल गया। नंदनी की माँ होश में आते ही बच्चों के पास आ गई थी।

सभी की नज़रें बाहर को जा लगीं। जाने पुलिस वाले शिबु को उसे क्या कह रहे हैं ? पुलिस कोर्ट कचहरी ये सब तो अब भुगतना ही पड़ेगा, सभी यह सोच रहे थे। शिबु अंदर आया तो उसके चेहरे का रंग बिलकुल उड़ा पड़ा था।

'क्या कहते हैं, पुलिसवाले?' नंदनी के बाप ने पूछा तो शिबू चुप बना रहा। बच्चों के पास बैठ फिर से उन्हें टकटकी बाँध देखने लगा।

नंदनी की माँ बार-बार छाती पर हाथ पर हाथ रखकर चीख पड़ती,'हाय मेरी बेटी कहाँ चली गई?' अगले ही पल वह नातिन को छाती से लगाकर बोली, 'हे परमात्मा किसी को बेटी मत देना!'

अम्मा ने यही वाक्य पुनः दोहराया तो शिबु अम्मा के चेहरे की ओर देखने लगा। उसे याद हो आया, एक बार नंदनी उसके सीने पर सर रख कर ख़ूब रोई थी। बोली थी, 'मेरे जन्म के वक़्त अम्मा ने ख़ूब मातम मनाया था।'

'क्यों ?'

'वह बेटा जो चाहती थीं।'

'औरत जात होकर.....'

नंदनी देर तक आँसू बहाती रही थी। जब ज़रा शांत हुई तो बोली थी, 'जब हमारी बेटी होगी न, हम उसे बहुत प्यार करेंगे।'

रामेश्वर अस्पताल से पोस्टमार्टम की रिपोर्ट ले आया था और शिबु के हाथ में थमा दी।

'बेटा, क्या लिखा है रिपोर्ट में?' अम्मा ने पूछा तो शिबु ने एक कड़वी नज़र डाली और एकाएक बोल उठा, 'उसकी हत्या हुई है अम्मा!'

'हत्या!' अम्मा चीख पड़ी, 'हाय राम! मेरी बेटी को किसने मार डाला?'

'रिपोर्ट में कुछ और भी लिखा है अम्मा!' शिबु के स्वर में तल्खी थी।

'और क्या लिखा है, बोल तो बेटा।'

'इसमें लिखा है, यह हत्या छब्बीस बरस पहले हुई थी।' शिबु ने लपक कर अम्मा की गोद में से अपनी बच्ची छीन लिया। सभी लोग अवाक् शिबु के चेहरे की ओर देखने लगे थे।

***

ग़ज़ल

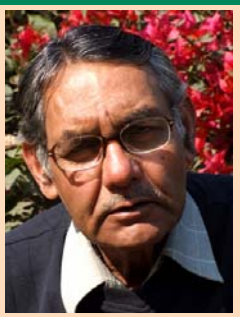

विज्ञान व्रत की ग़ज़लें

तुम तो सब कुछ कह बैठे
काश कि हमको भी सुनते
मिसरा ऊला थे हम तो
काश कि सानी तुम होते
देख न पाए होंगे आप
हम भी उस महफ़िल में थे
टाँग दिए कंदील मगर
इनको रौशन तो करते
कोरा ख़त ही भेज दिया
काश कि मन की भी लिखते

***

जब तक वो अरमान रहा
जीने का सामान रहा
दुनिया उसको जान गई
जो ख़ुद से अनजान रहा
अपना साथ निभाकर भी
वो मुझ पर अहसान रहा
साफ़ लिखा था चेहरे पर
गूँगा एक बयान रहा
उसकी मंज़िल ग़ायब थी
जो रस्ता आसान रहा

***

मैं ठिकाना था कभी
वो ज़माना था कभी
आप मेरी जान थे
ये न जाना था कभी
अब हक़ीक़त हूँ यहाँ
इक फ़साना था कभी
मैं अगर नाराज़ था
तो मनाना था कभी
आपका हूँ या नहीं
आज़माना था कभी

***

विज्ञान व्रत, एन-138, सेक्टर-25,
नोएडा-201301 (भारत)
मोबाइल: 09810224571
ईमेल : vigyanvrat@gmail.com

चाउमिन

मुरारी गुप्ता

ब्लिंक हार्ट रेस्तराँ का बैरा सिर्फ चाउमिन के ऑर्डर से हैरान था। उसे उम्मीद थी कि कोई बड़ा ऑर्डर मिलेगा तो अच्छी-खासी टिप भी मिलेगी। हालाँकि रेस्तराँ के चाउमिन की एक प्लेट की कीमत मीडियम क्लास के किसी भी रेस्तराँ से लगभग तीन गुना थी। काव्या के चाउमिन के ऑर्डर को सुनकर बैरे ने बहुत ही फीकी हँसी से रेहान को देखा, कि शायद वह इस ऑर्डर में कुछ और शामिल करेगा। मगर रेहान भी मुस्कराकर रह गया। बैरा वहाँ से बहुत कम उत्साह के साथ ऑर्डर पूरा करने चला गया। यह शाम का वक्त था। शाम को ढलने में अभी थोड़ा वक्त था। बैंगलुरू शहर के बीचों बीच मौजूद इस रेस्तराँ के पहले फ्लोर पर रेस्तराँ में किशोर उम्र पार कर चुके और युवावस्था में प्रवेश करते हसीन जोड़े शाम का वक़्त साथ बिताया करते थे। कुछ मेज़ें उन लोगों के लिए भी लगभग आरक्षित थीं, जो युवा होने के साथ साथ प्रोफेशनल ज़िंदगी जी रहे थे। नीचे के फ्लोर पर बना रेस्तराँ सबके लिए खुला था।

वेज चाउमिन की एक बड़ी प्लेट दोनों के बीच थी। रेहान चेहरे पर खुशी जाहिर करने की भरपूर कोशिश कर रहा था। अपने होठों को फैलाकर उसने हँसने की कोशिश की। काव्या ने भी मुस्कराते हुए अपने बिखरे बालों को इकट्ठा कर एक टेडी जैसी क्लिप उनमें ठूँस थी। टेडी का मुँह बगल में से रेहान को देख रहा था। रेहान उस टेडी को देखकर मुस्कराया। काव्या ने आँखों के इशारे से उसकी मुस्कराहट का कारण जानना चाहा। रेहान ने आँखों से टेडी के बारे में इशारा किया तो काव्या भी खिलखिलाकर हँस पड़ी। कुछ पल की खामोशी के बाद काव्या ने हल्की मुस्कराहट के साथ कहा- ''पता नहीं इस टेडी के मुस्कराते चेहरे को अब कोई तुम्हारी तरह भी देख भी पाएगा।'' रेहान उसकी बात पर मुस्करा दिया और कहने लगा- ''फिलहाल तो मैं देख रहा हूँ ना। मैंने तुम्हारे लिए बहुत सारे टेडी वाले क्लिप इकट्ठा किए हैं, जो हमेशा तुम्हारी इन खूबसूरत जुल्फों में मुस्कराते रहेंगे।'' उसने अपने कैरी बैग को उठाकर मेज़ पर रखा और उसे खोलकर उसमें से रंग - बिरंगी टेडी क्लिप्स को एक-एक कर निकालने लगा। जैसे-जैसे वह टेडी क्लिप्स को कैरी बैग से बाहर निकालकर दिखा रहा था, काव्या एकटक रेहान को प्रेमभरी निगाहों से देख रही थी। काव्या नए रास्तों को खुशी के माहौल में अलग करना चाहती थी, लेकिन उसके कँपकँपाते मन में रेहान के लाए टेडी क्लिप्स ने अजीब से जादू कर दिया था। वह कहना चाहती थी- 'प्लीज़, रेहान, बस करो। हम यहाँ अपनी राहों को खुशी-खुशी अलग करने के लिए आए हैं। तुम मुझे क्यों अपने बंधन में जकड़े रखना चाहते हो। तुम जानते हो कि टेडी क्लिप्स मेरी कमज़ोरी है। और इसकी वजह भी तुम ही हो। तुम्हारे दिए टेडी क्लिप्स को मैं चाहकर भी अपने बालों से अलग नहीं कर पा रही हूँ। न जाने क्यों ये मेरे बालों के साथ-साथ मेरी खुशी का भी हिस्सा बन गए हैं। क्या तुमको आज भी टेडी क्लिप्स ही लाने थे।'

''क्या सोचने लगी काव्या। क्या तुम्हें ये टेडी पसंद नहीं आए।''

काव्या मुस्करा दी

''तुम्हें पता है ना रेहान कि अब हम हमारी मंज़िलें अलग-अलग हैं। हमारे रास्ते अब

मुरारी गुप्ता
ई-37 ए, शंकर विहार, सिद्धार्थ नगर,
एयरपोर्ट, जयपुर-302017
राजस्थान
मोबाइल : 9414061219
ईमेल : murli4you@gmail.com

अलग हो रहे हैं। फिर ये सब क्यों...'' कहते-कहते काव्या कुछ पलों के लिए ख़ामोश हो गई। कुछ पलों की ख़ामोशी के बाद लंबी साँस लेते हुए कहने लगी, ''रेहान हमारी ज़िंदगी इस चाउमिन की तरह क्यों इतनी उलझन भरी। इतनी स्वादिष्ट होने के बावजूद, देखो न, कितनी अजीब ढंग से एक दूसरे में उलझी रहती हैं। एक उठाओ, तो साथ में न जाने कितनों को साथ में लाती हैं।'' काव्या ने चाऊमिन को चम्मच में घुमाते हुए कहा

''काव्या, लेकिन देखो न, इतनी उलझी चाउमिन को भी तुम कितनी आसानी से सुलझा लेती हो। और तुमको तो हमेशा से ही लंबी, उलझी हुई चाउमिन पसंद थी।''

''मैं ज़िंदगी की बात कर रही हूँ, रेहान। कैसे हम ज़िंदगी के हज़ारों लम्हों को दूसरों की ज़िंदगी के लम्हों में इतना उलझा देते हैं कि उन्हें सुलझाने में पूरी उम्र लग जाती है। कुछ लम्हे तो सदा के लिए अमर हो जाते हैं। अगर कोई उन्हें भूलना भी चाहें, तो भी नहीं भुला सकता। क्योंकि कुछ लम्हे आपके दिल पर सदा के लिए अंकित हो जाते हैं।'' कहते कहते काव्या की आँखों के सामने रेहान के साथ गुज़ारे हज़ारों पल एक साथ किसी पुरानी रील की तरह सामने आ गए। उसे वह पल याद हो आया था, जब माइक्रोसॉफ्ट कंपनी के एक प्रोजेक्ट टूर पर उसे रेहान के साथ मलेशिया जाना पड़ा था। उस वक्त तक रेहान के साथ उसके सिर्फ प्रोफेशनल संबंध थे। कुआलालम्पुर में जिस होटल में वे ठहरे हुए थे, उसी दिन शाम को होटल से लगते एक बहुमंज़िला टॉवर पर बड़ा आतंकी हमला हुआ था, जिसमें तीन सौ से ज़्यादा विदेशी नागरिक मारे गए थे। इनमें बीस भारतीय भी थे। उनकी होटल में भी उसी वक़्त एक छोटे हमले में कुछ विदेशी नागरिकों को निशाना बनाया गया था। इस घटना से काव्या बुरी तरह घबरा गई थी। उसने अपने कमरे से सटे कमरे में रेहान को कॉल कर उसे उस रात साथ रहने के लिए मनाया। रेहान ने हिचकिचाते हुए रात साथ गुज़ारने की रज़ामंदी दी। उसने काव्या की आँखों में छाए डर को देख लिया था। कुछ ही घंटों बाद दोनों को होटल की लॉबी में गोलियाँ चलने की आवाज़ सुनाई दी। लोगों की चीखने और चिल्लाने की आवाज़ें आने लगी। उसके कमरे के दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी। उन्हें अरबी में ज़ोर-ज़ोर से गाली जैसा कुछ चिल्लाने आवाज़ आने लगी। काव्या और रेहान दोनों बुरी तरह घबरा गए। दरवाज़ा खुला तो बाहर हाथ में गन लिए नकाबपोश ने रेहान से नाम पूछा। रेहान तुरंत सारे मामले को समझ गया था। उसने काव्या को अपने पीछे किया और अपना नाम बताते हुए कहा- अस्सलाम वालेकुम भाईजान, मैं अब्दुल वाहिद उस्मान फ्रॉम मीरपुर काश्मीर और ये मेरी शरीके हयात नाज़नीन...। इससे पहले रेहान कुछ और कहता, वह नक़ाबपोश..वालेकुम सलाम और होटल को जल्दी ख़ाली करने की नसीहत देते कमरे के दरवाज़े को ज़ोर से बंद कर आगे बढ़ गया। काव्या ने आँखें बंद कर लंबी साँस ली और रेहान की बाज़ुओं में लिपटकर रोने लगी। इस घटना से बुरी तरह घबरा गई काव्या को रेहान ने मुश्किल से उस डर से बाहर निकाला। लेकिन काव्या की आँखों में अभी भी डर पसरा हुआ था। रात के तीन बजे पूरे होटल को खाली करवाकर सभी यात्रियों को सुरक्षा एजेंसियों की निगरानी में दूसरे होटल में शिफ्ट कर दिया गया था। रेहान के इनकार के बावजूद काव्या, रेहान के साथ उसी के कमरे में शिफ्ट हो गई। काव्या के दिल से आतंकी हमले का डर काफी हद तक निकल चुका था। वह रेहान की चतुराई पर मुस्करा भी रही थी और उस दृश्य को याद कर रो भी रही थी। उसका दिल कर रहा था उस रात को वह अब्दुल उस्मान की नाज़नीन बनकर गुज़ार दे, जिससे यह भयानक रात अच्छे ख्वाब में तब्दील हो जाए और....।

''ऐ...मिस काव्या....किधर हो, कौन से लम्हों में फँस गई हो...बाहर निकलो, देखो तुम्हारी चाउमिन में से गर्माहट के सारे लम्हे हवा बनकर उड़ रहे हैं।'' रेहान ने चुटकी बजाई।

काव्या उन लम्हों को पीछे छोड़ चाउमिन की मेज़ पर लौट आई थी। वह रेहान को नम पलकों से देखने लगी थी। मन ही मन कहने लगी, रेहान, अगर उस दिन तुम नहीं होते तो....।

''अच्छा रेहान, तुमको किस तरह की लड़की पसंद है।'' उसने कहा

''यह भी कोई पूछने वाली बात है...तुम्हारी जैसी। बल्कि तुम ही''

''हम्म..तो तुमको मेरे जैसी लड़की पसंद है।''

''मगर तुमको तो मेरे जैसा लड़का बिलकुल भी पसंद नहीं है, है ना....।''

''नहीं रेहान, ऐसा तो बिलकुल नहीं है..।'' काव्या ने उसकी हथेली पर अपना हाथ रखते हुए कहा, ''तुम्हारे जैसी शख्सियत वाला व्यक्ति मिलना बहुत मुश्किल है। कैसा संयोग है कि एक बुरी घटना की वजह से हम एक दूसरे करीब आए तो पुरानी खूबसूरत दिल की बातें मुझे तुमसे अलग कर रही है। और देखो न तुम दोनों के नामों में भी कितनी नज़दीकियाँ हैं। तुम रेहान हो और वो रोहन है।''

''ओह, तो वह रोहन है जिसने तुमको मुझसे दूर करने की साज़िश की है।''

''ऐसा नहीं है, रेहान। दरअसल पिछले दो साल में तुमको कभी रोहन के बारे में बताने का मौका ही नहीं मिला। और फिर तुमने भी कभी इस तरह का ज़िक्र नहीं किया कि तुम मुझे चाहने लगे हो। इसलिए मैंने तुम्हारे बारे में कभी उस ढंग से सोचा ही नहीं। मैं हमारे बीच के तमाम संबंधों को सिर्फ दोस्ती तक ही मानती रही हूँ। हाँ, दोस्ती में भी कभी-कभी हमारे कदम कुछ पलों के लिए बहक जाते हैं, लेकिन मैंने इसका कभी दूसरा मतलब नहीं निकाला। यह सच है कि तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो। क्योंकि तुम हो ही अच्छे।'' काव्या ने अपने मोबाइल से रोहन की कुछ तस्वीरें रेहान को दिखाई, ''आईआईटी मुंबई के दौरान हम एक दूसरे को पसंद करते थे। हम दोनों के मम्मी और डैड को हमारे बारे में पता था। दोनों परिवारों के बीच हम दोनों को लेकर सभी तरह की बातें हो चुकी थी। लेकिन फाइनल सेमेस्टर से पहले एक छोटी सी बात पर हम दोनों के ईगो इतने बड़े हो गए थे कि कोई भी झुकने को तैयार नहीं था। मगर हमारे बीच के प्यार पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ा। फर्क इतना पड़ा कि हम बोलने से ज़्यादा एक दूसरे को लिखने लगे थे।'' काव्या ने कहा, ''यह लंबी कहानी है। फिर कभी बताऊँगी। और इन्हीं हालात में रोहन को एक स्विस कंपनी में बड़ा ऑफर आ गया था और मैं यहाँ बैंगलुरू में। वह जब भी भारत आता था, एक हफ्ता मेरे

घर पर ही रहता था। और मज़ेदार बात, कि हम साथ-साथ घर पर लंच, डिनर करते, मम्मी डैडी के सामने बात भी करते थे, लेकिन बाद में एक दूसरे से चिढ़े रहते थे कि पहले कौन सॉरी बोले।''

''तो अब रोहन ने सॉरी बोल दिया, और तुमने उसे माफ कर दिया?'' रेहान ने पूछा।

''नहीं।''

''मतलब, ईगो अपनी जगह कायम है।''

''कुछ ऐसा ही समझ लो, लेकिन पिछले हफ्ते, जब वह घर आया तो साथ में यह रिंग मुझे मम्मी-डैडी के सामने पहनाकर चला गया।'' काव्या ने उँगली में पहनी हीरे की रिंग की ओर इशारा करते हुए कहा।

''काव्या, लेकिन तुमने कभी इन बातों का ज़िक्र ही नहीं किया, मैं खामख्वाह, तुम्हारे बारे में सोचता रहता था। न जाने कितनी शायरियाँ, कविताएँ मैंने तुमको सुनाई। कई प्रेम कविताएँ तुमको सुना डालीं, लेकिन तुमने कभी नहीं कहा कि यह सब तुमको अच्छा नहीं लगता।''

''तुम इतने अच्छे हो, रेहान कि मुझे तुम्हारी कविताएँ, शायरियाँ तुम्हारी ज़ुबान से सुनना हमेशा अच्छा लगता था। तुम्हें याद है तुम एक बार मुझे एक काव्य पाठ में मुंबई लेकर गए थे। और तुमने तमाम प्रेम कविताएँ मुझे देखते-देखते ही वहाँ मौजूद दर्शकों को सुनाई थी। एक बात बताऊँ, तुम्हारी कविताओं में इतनी मोहब्बत बरसती है कि अगर रोहन मेरी ज़िंदगी में नहीं होता न, तो उसी दिन मैं तुमसे अपने प्यार का इज़हार कर देती...पर क्या करूँ....।'' काव्या मुस्कराई।

''मगर वह मेरा वास्तविक प्यार था। तुमको क्या लगता है कि मैं सिर्फ तुम्हें कविताओं में ही प्रेम करता हूँ।''

''नहीं, ऐसा बिलकुल भी नहीं लगता। मुझे पता है रेहान कि तुम मुझे बहुत प्यार करते हो। मैंने तुम्हारी कविताओं में उसे महसूस किया है। इसलिए तो तुम्हारे साथ तुम्हारे कवि सम्मेलनों में जाती हूँ। मुझे तुम्हारी हर कविता दिल को छूने वाली लगती है.... अच्छा अब वो कविता सुनाओ ना...जिसमें तुम कहते हो- तुमसे मिलना आऊँगा अंतिम बार..।''

''आ गया ना काव्या।'' रेहान ने कहा

''नहीं ऐसे नहीं...वो जो तुमने मेरे लिए कहा था...समंदर सोख जाएँगे..भाप बनकर उड़ जाएँगे।''

''क्या यह वही अंतिम बार है?'' रेहान ने कहा- ''अगर ऐसा है तो नहीं सुनाऊँगा''

''नहीं रे बाबू...इतनी आसानी से कहाँ तुमसे पीछा छूट पाएगा।''

''तो फिर सुनाता हूँ।'' उसने अपनी पॉकेट डायरी निकाली और पढ़ने लगा

'करुणा क्रंदन होगा / शोक संतप्त होकर / जीवन मृत्यु से आलिंगन होगा / पंचभूत परोक्ष होंगे / समंदर सोख जाएँगे / भाप बनकर उड़ जाएँगे / जो बादल बनेंगे / फिर गरजकर बरसेंगे/ अंतिम बार/ अवनि अंबु से आप्लाप्वित होंगी/ अनंत आत्माओं के समूह / परम को प्रस्थान करेंगे/ उस समय / हाँ, उसी समय/ जलोघमग्न धरा पर / कलश में तैरता हुआ / अंतिम बार / मैं तुमसे मिलने आऊँगा।'

''काव्या, मैं तुमसे मिलने आऊँगा....अंतिम बार।'' रेहान ने आख़िरी पंक्ति को ज़ोर देकर दोहराया। काव्या ने अपनी पलकें खोली और मुस्कराकर रेहान को देखा। ''हाँ, रेहान मैं जानती हूँ। तुम मुझसे मिलने आओगे। मगर अंतिम बार क्यों। हर बार क्यों नहीं।'' वह खिलखिलाने लगी। वह कहने लगी- ''न जाने क्यों, तुमको हर बार सुनना अच्छा लगता है रेहान। तुम्हारी कविताएँ मेरे भीतर इश्क़ सा भर देती हैं। मैंने कुछ अंग्रेज़ी हिंदी में कोशिश की है, सुनाऊँ, दो लाइन हैं- 'तुम्हारे इतने क़रीब होने के बारे में सोचती हूँ कि तुम ब्रीद आउट करो, मैं ब्रीद इन करूँ/ मेरे भीतर तुम्हारी कार्बन डाई ऑक्साइड का ग्रीन हाउस बन जाए/ मैं तपती रहूँ हमेशा..।'

''अच्छी है, लेकिन तुम्हारे भीतर ग्रीन हाउस इफेक्ट पैदा करने के लिए तुम्हें अब मेरी कार्बन डाई आक्साइड की कहाँ ज़रूरत है काव्या!'' रेहान ने दार्शनिक अंदाज़ में कहा।

रेहान की दार्शनिक अंदाज़ में कही इस मासूमियत भरी बात पर काव्या ज़ोर-ज़ोर से खिलखिलाकर हँसने लगी। उसकी खिलखिलाहट आसपास की मेज़ों तक पसर गई थी। आसपास की मेज़ों पर बैठे कुछ जोड़े उन्हें बगलों से देखने लगे। काव्या को जब यह महसूस हुआ तो उसने अपनी हँसी को रोका और होठों को बंद कर कुछ देर हँसती रहीं। वह कहने लगी-''रेहान, कंपनी में हम तीन साल से साथ-साथ काम कर रहे हैं। कितनी बार हमने साथ-साथ टूर किए। आउटिंग की। साथ-साथ लंच-डिनर किया। याद है ऊटी में टूर के दौरान तुमने एक प्रेम कविता भी मेरे लिए रची थी। सच कहूँ, तो मैं तुम्हारे खुलकर इज़हार करने से डरती थी। मैं खुद नहीं चाहती थी कि तुम कभी अपनी प्यार का मेरे सामने इज़हार करो। शायद इसलिए कि, तुम्हारे इज़हार के जबाव में मैं क्या प्रतिक्रिया देती। मैं तुम्हें भी किसी भी हालत में खोना नहीं चाहती। तुम्हारे जैसा प्यारा दोस्त मिलना आसान भी तो नहीं है। सच कहूँ तो, रोहन हमेशा से मेरे ज़ेहन में रहता है। हाँ, उसे इतनी अच्छी प्रेम कविताएँ कहना नहीं आती। मगर, पता नहीं, हम दोनों का शुरू से ही कुछ है। उसी कुछ ने ही मुझे उससे अभी तक बाँधे रखा है।'' काव्या ने अपनी आँखों को रेहान की आँखों में डालकर कहा, ''रेहान, मैंने तुम्हारे प्रेम को महसूस किया है। मैं चाहती हूँ तुम हमेशा ऐसे ही प्रेम करते रहो। मैं भी तुम्हें बहुत प्रेम करती हूँ.....सुन रहे हो न...प्रेम करती हूँ..लेकिन इश्क़ वाला लव नहीं।'' काव्या अपनी ही इस आख़िरी लाइन पर खूब हँसी। काव्या कहने लगी, ''मगर सच कहूँ तो ये जो इश्क का ग्रीन हाउस पिछले कुछ सालों में मेरे भीतर पैदा हुआ है न, वह तो तुम्हारी ही साँसों का असर है। अगर तुम मेरी ज़िंदगी में ना होते तो शायद मुझे एहसास ही नहीं होता कि इश्क इतना रुमानी भी होता है। तुमने इश्क के इतने रंग, रूप और आकार बताए हैं, कि मुझे सच में तुम्हारी कविताओं से इश्क़ हो गया है।''

''काव्या, हमने कितने ही पल साथ-साथ गुज़ारे हैं। ऑफिस की कैंटीन, कॉफी हाउस, ब्लिंक हार्ट रेस्तराँ, हमारे फ़्लैट्स। तुमको कभी नहीं लगा कि, मैं तुम्हें इश्क़ करने लगा हूँ।'' रेहान ने गुज़रे दिनों के रोमांस भरे पल टटोले।

''लगा ना, इसीलिए तो मैं डरती थी, कि कहीं तुम अपने प्यार को ज़ाहिर न कर दो। क्योंकि फिर मेरे सामने बहुत मुश्किल

हो जाती। सच कहूँ तो इश्क़ के चक्कर में मैं तुम्हारे जैसे दोस्त को खोना नहीं चाहती थी। इसीलिए दोस्ती और प्यार के बीच की बारीक लाइन को मैंने जानबूझ कर कभी कभी घिसने दिया। तुम यह बात जानते हो न।'' काव्या ने शरारती अंदाज़ में मुस्कराकर कहा, ''लेकिन तुमने अपनी ज़ुबान से अपने प्रेम को साफ-साफ ज़ाहिर करने के लिए कभी एक लफ़्ज़ भी नहीं कहा, क्यों।''

''तो क्या प्रेम को ज़ाहिर करने के लिए कहना भी ज़रूरी है?''

''यह तो लड़की पर निर्भर करता है न, रेहान कि प्यार को ज़ाहिर करने का लड़के का कौन सा तरीका उसे पसंद है...तुम अपनी पसंद तो उस पर थोप नहीं सकते ना।'' काव्या मुस्कराई। ''तुम लड़कियाँ भी ना, बहुत इम्तहान लेती हो...।'' रेहान ने गहरी साँस छोड़ी।

''अच्छा, रेहान, लेकिन तुमने कभी खुलकर अपने प्यार को मेरे सामने ज़ाहिर क्यों नहीं किया। क्या तुम किसी बात से डरते थे।'' अब काव्या की बारी थी।

''काव्या, तुम भी न.. अपने हाथ में सगाई की अँगूठी पहनकर अब मुझसे यह सब पूछ रही हो....क्या अब भी किसी तरह की गुंजाइश बची है....।''

''इतने उदास क्यों होते हो यार?'' काव्या ने रेहान की हथेली पर अपनी हथेली को रख दिया, ''अच्छा बताओ, क्या तुम्हें अब मुझसे प्रेम नहीं है।'' रेहान को समझ नहीं आ रहा था कि वह इसका क्या जबाव दे। वह सोचने लगा कुछ दिनों पहले ही काव्या की सगाई हुई है, और आज यह मेरे साथ फिर से प्रेम की बात कर रही है। न जाने ये किस मिट्टी की बनी है। क्या इसके लिए यह सब इतना आसान था। उसे काव्या की वे तमाम बातें याद आने लगी, जब उसने पहली बार माइक्रोसॉफ्ट कंपनी ज्वाइन की थी और एक प्रोजेक्ट पर वे दोनों कई महीनों तक साथ काम करते रहे। काव्या की संजीदगी उसे हमेशा उसकी ओर आकर्षित करती था। इंजीनियरिंग की स्टूडेंट काव्या को उसकी कविताओं में खूब दिलचस्पी थी। सच कहूँ, तो वे तमाम कविताएँ और शायरियों की प्रेरणा काव्या ही थी। काव्या ने कितनी बार मुझे महसूस करवाया था कि वह मेरी कविताओं, शायरियों को बहुत पसंद करती है। उसकी अंग्रेज़ी, हिंदी और इसके लिए एक बार उसने अपने अमरीकी टूर से लौटने के बाद उसे एक बहुत खूबसूरत डायरी भी भेंट की थी और कहा था, इस डायरी में मेरे लिए प्रेम भरी कविताएँ लिखना। और जब यह डायरी पूरी हो जाएँ, तो उसके जन्मदिन पर इसका तोहफा देना। रेहान आज वह डायरी लाया था। लेकिन इस बार काव्या का जन्मदिन आने से पहले उसकी सगाई का दिन आ गया था।

रेहान के ज़ेहन में समाज की बंदिशें और काव्या की ज़िंदगी की उलझनों की बातें आने लगी थी। रेहान सोच रहा था, क्या काव्या को अब यह डायरी देकर उसके भीतर अपने तथाकथित प्रेम को ज़िंदा रखना ठीक रहेगा। वह कैसे दो ज़िंदगियों को एक साथ सँभाल पाएगी। लेकिन काव्या कुछ दूसरी ही मिट्टी की बनी थी।

''मिस्टर चाउमिन, मैंने तुमसे कुछ पूछा है।'' काव्या ने उसके जूतों पर अपने सैंडल ठोकते हुए कहा।

''तब ही तो आज तुम्हारे सामने हूँ।''

''तुम ज़िंदगी को चाउमिन की तरह इतना उलझाकर क्यों रखते हो रेहान। तुम सोचते बहुत ज़्यादा हो।''

''क्योंकि तुम्हें चाउमिन बहुत पसंद है।''

''हाँ, आई लाइक चाउमिन एवरीटाइम एवरी व्हेअर। खासकर तुम्हारे फ़्लैट पर तुम्हारे हाथों की बनी।'' काव्या मुस्कराती हुई चुप हो गई। कुछ पलों के लिए दोनों के बीच ख़ामोशी पसर गई थी। दोनों एक दूसरे की आँखों में अपने बीते लम्हों को तलाश रहे थे। पुरानी यादों की गुनगुनी धूप में दिलों को नहला रहे थे। उधर शाम ढलकर रात के आग़ोश में जाने वाली थी। सूरज पश्चिम में डूब रहा था। रेस्तराँ की मेज़ें धीरे-धीरे गुलज़ार होने लगी थी। रेस्तराँ में हल्की रोशनी कर दी गई थी। युवा जोड़े हाथों में गुलाब, बुके और तरह-तरह की चॉकलेट्स लेकर मेज़ों पर जमने लगे थे। रेहान और काव्या अब तक चार बार चाउमिन का ऑर्डर कर चुके थे। दोनों इस पल को एक स्थायी रूप में ढाल देना चाहते थे। हमेशा के लिए।

''मन मरुथल की किसी कुई से कम कहाँ है/ न भूजल से भरता है, न बरखा से/ खुद में रिस रिस कर भर आता है'' काव्या गुनगुनाने लगी। उसने कहा, ''रेहान मैं जानती हूँ कि तुम अपने साथ उस डायरी को लेकर आए हो, जिसमें तुमने मेरे लिए प्रेम कविताएँ लिखी हैं। मगर मैं चाहती हूँ, उस डायरी को तुम अभी नहीं, शादी के रिसेप्शन में मुझे गिफ़्ट करना। करोगे ना...।'' रेहान ने अपने बैग में से वह डायरी निकाली और उसमें लिखी कई प्रेम कविताएँ काव्या को सुनाई। काव्या उन्हें सुन मुस्कराती रही। वह कहने लगी, ''सच कहूँ, रेहान, तुमने मुझे प्रेम करना सिखाया है।''

''मुझे लगता है, अब हमारे चलने का वक़्त हो गया है।'' काव्या ने अपनी घड़ी को देखा और रेहान से कहा, ''आख़िर में कुछ कहोगे नहीं''

रेहान मुस्कराया। वह काव्या के पास उसकी कुर्सी के पास आकर उसके पास सटकर बैठ गया और काव्या की आँखों में आँखे डाल कहने लगा, ''तुम्हें अपनी एक आख़िरी मूक कविता भेंट करना चाहता हूँ, जो ज़िंदगी भर तुम्हारे होठों पर मेरी याद दिलाती रहेगी। क्या मैं तुमको वह भेंट कर सकता हूँ।''

''मुझे तुम्हारी इस मूक कविता का कबसे इंतज़ार था।''

''तो अपनी आँखें बंद करो।''

रेहान ने पलकें झुकाए काव्या को अपनी आगोश में भरते हुए उसके कँपकँपाते होठों पर अपनी मूक कविता के सैकड़ों स्पंदन अंकित कर दिए।

''शुक्रिया रेहान, तुम्हारी यह कविता मुझे ज़िंदगी भर तुम्हारे प्रेम की याद दिलाती रहेगी।'' काव्या ने आँखें खोली और मुस्कराते हुए कहा। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े रेस्तराँ से बाहर निकले और दरवाज़े पर एक दूसरे को अलविदा कहते हुए अलग-अलग राहों पर चल दिए थे।

अब तक ढलकर रात की आग़ोश में जा चुकी थी। रात के सितारे आसमान में टिमटिमाते दिखाई देने लगे थे। रेस्तराँ के काउंटर पर विविधभारती से महेंद्र कपूर की आवाज़ में मंद गति से गीत के बोल सुनाई दिए -'वो अफसाना जिसे अंजाम तक लाना ना हो मुमकिन/ उसे एक खूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा...../'

***

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
सहायक आचार्य (हिन्दी),राजकीय
मॉडलडिग्री कॉलेज, अरनियां, खुर्जा,
बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश
ईमेल : vickysingh4675@gmail.com
मोबाइल : 8218405797

'आग में गर्मी कम क्यों है?'

(कहानीकार : सुधा ओम ढींगरा)

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
डॉ. उमा मेहता

डॉ. उमा मेहता
आसिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
एम.पी.शाह आर्ट्स एन्ड साइंस कॉलेज
सुरेन्द्रनगर : 363001, गुजरात (भारत)
मोबाइल : 94296 47368
इमेल : umhindi13@gmail.com

'आग में गर्मी कम क्यों है?' कहानी और समलैंगिकता का परिवार पर प्रभाव

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह

विषय प्रवेश-

प्रवासी साहित्यकारों में सुधा ओम ढींगरा का नाम सुपरिचित है। सुधा जी की कहानियों में एक साथ दो देशों, दो संस्कृतियों, दो परिवेशों में चित्रण उन्हें प्रवासी साहित्यकार होने का स्वयंमेव प्रमाण प्रदान करता है। उनकी अधिकांश कहानियों में न तो भारत कहीं छूटा हुआ दिखाई देता और न ही प्रवासी देश कहीं पूरी तरह हावी होता हुआ परिलक्षित होता है। कहानियों का ताना-बाना इस तरह बुना हुआ है कि पाठक को एक साथ दो अलग-अलग देशों के बीच आवागमन का सुअवसर घर बैठे ही प्राप्त हो जाता है। सुधा जी के कहानी साहित्य में भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति, परिवेश, भाषा और परंपरा का, शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान और मानवीयता का, संवेदना और वेदना का, मानव जीवन की सहजता और असहजता आदि का प्रवाह धीमे-धीमे प्रवाहित होने वाली ऐसी सरिता के रूप में प्राप्त होता है, जो बहुत ज़्यादा शोर न करते हुए धीमी करलव ध्वनि के साथ मन को असीम शांति का अनुभव कराती है। साथ ही पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का सम्मिश्रण

पाठक के मानस पटल पर अमिट प्रभाव अंकित करते हुए अंदर की हलचल का स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है। कहानियों में जहाँ एक ओर अमेरिका का सूक्ष्म से सूक्ष्म परिदृश्य शब्द चित्रण सम्पूर्ण कैनवस की उपस्थिति देता है वहीं प्रवासी भारतीयों के जनजीवन में कहीं न कहीं भारतीय संस्कृति भी जीवित दृष्टिगत होती है। प्रस्तुत आलेख 'कमरा नंबर 103' संग्रह में संकलित 'आग में गर्मी कम क्यों है?' कहानी पर आधारित है।

भारत और समलैंगिकता-

'कमरा नंबर 103' संग्रह की प्रथम कहानी है- 'आग में गर्मी कम क्यों है?'। प्रस्तुत कहानी पर विश्लेषण के पूर्व समलैंगिकता को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देख लेना समीचीन होगा। भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 377 पर पुनर्विचार याचिका पर सुनवाई प्रारंभ करने के साथ ही इस मामले को लेकर भारतीय संस्कृति और हिंदू धर्म में समलैंगिकता पर चर्चा होने लगी। धारा 377 में समलैंगिकता का अपराध एवं गैरकानूनी माना गया। सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिक समुदाय को भी समान अधिकार प्रदान किया। मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता वाली पाँच सदस्यीय पीठ ने आईपीसी की धारा 377 को मनमाना और अतार्किक बताते हुए असंवैधानिक घोषित किया। अब भारत में भी समलैंगिक लोग कानून स्वेच्छा से रह सकते हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत में समलैंगिकता हाल ही में आया कोई नवीन विकार है। यदि प्राचीन भारत में प्रचलनों पर दृष्टिपात करें तो समलैंगिकता के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। महादेव शिव का एक रूप अर्धनारीश्वर वाला है जिसे आज की शब्दावली में एंड्रोजीनस सैक्सुअलिटी कहा जाता है। धर्म की आड़ में एंड्रोजीनस शिव पूजा एवं आराधना के पात्र हैं और सहज रूप में स्वीकृत भी। मिथकीय आख्यान के अनुसार भगवान् विष्णु मोहिनी रूप धारण कर शिव जी को रिझाते हैं। ये समलैंगिकता नहीं कही जा सकती है परंतु किसी भी भक्त को यह कार्य अप्राकृतिक अनाचार नहीं लगता। महाभारत में भी अर्जुन को बृहन्नला का रूप धारण करना पड़ता है। भारत में लैंगिक परिवर्तन का बहुत अच्छा उदाहरण माना जा सकता है शिखंडी का लिंग परिवर्तन। भारतीय इतिहास के गुप्त काल में रचित वात्स्यायन के कामसूत्र में निर्मोछिए चिकने नौकरों, मालिश करने वाले नाइयों के साथ शारीरिक संबंध बनाने वाले पुरुषों का वर्णन भी प्राप्त होता है। भारत में प्राचीन काल में स्त्रैण गुणों वाले व्यक्तियों को पापी या अपराधी नहीं घोषित किया गया। स्त्रियों की परस्पर रतिक्रीड़ा का भी सहज वर्णन प्राप्त होता है। खजुराहो के मंदिरों, ओडिशा के कोणार्क आदि मंदिरों की दीवारों पर जो मूर्तियाँ उकेरी गई हैं भी यौन शिक्षा का खुला रूप दिखाई देता है। ख़ैर सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बाद समलैंगिक लोगों को जीवन जीने की सहजता प्राप्त होगई है।

समलैंगिकता पर आधारित साहित्य संक्षिप्त परिचय-

'कमरा नंबर 103' कहानी संग्रह की भूमिका में पंकज सुबीर ने सत्य ही लिखा है कि ''समलैंगिकता पर कलम चलाने में पुरुष लेखक ही डरते रहे हैं, ऐसे में कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों है' लिखना और वह भी पूरी ज़िम्मेदारी से लिखना। कहानी का शीर्षक पूरी-की-पूरी कहानी में प्रतिध्वनित होता रहता है। एक रहस्मय अँधेरी दुनिया के कुछ परदों को उठाने का प्रयास लेखिका ने बहुत सफलता के साथ किया है। कहानी उन 'समस्याओं' की बात करती है, जो समलैंगिकता से जुड़ी हैं। और इस समस्या का वैज्ञानिक पक्ष भी तलाशने की कोशिश करती हैं। रसायनों के खेल के माध्यम से समलैंगिकता विषमलैंगिकता की अबूझ पहेली का हल तलाशने की कहानी है ये।'' (सुधा ओम ढींगरा 2013, पृष्ठ सं.3)

इस्मत चुगतई की 'लिहाफ', पंकज सुबीर की 'अंधेरे का गणित', आकांक्षा पारे की 'सखी साजन' और जयश्री रॉय की 'निर्वाण' में स्त्री समलैंगिकता का चित्रण हुआ है। राघवेंद्र नारायण सिंह की 'यह बच्चा मेरा है', फणीश्वरनाथ रेणु की 'रसपिरिया', रश्मि शर्मा की 'बंद कोठरी का दरवाज़ा' पुरुष समलैंगिकता आधारित कहानियाँ हैं। नागार्जुन के उपन्यास 'रतिनाथ की चाची', सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का उपन्यास 'कुल्लीभाट', राजकमल चौधरी का उपन्यास 'मछली मरी हुई' सुरेंद्र वर्मा का 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता', पंकज विष्ट का 'पंखों वाली नाव' समलैंगिकता पर आधारित उपन्यास हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी ख़बर' में युवकों और किशोरों की समलैंगिक प्रवृत्तियों का यथार्थ वर्णन प्राप्त होता है। परंतु आज भी बहुतायत नहीं है समलैंगिकों पर आधारित साहित्यिक रचनाओं की। कुछ लेखकों ने बहुत ही खुले तौर पर समलैंगिकता को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है परंतु सुधा जी ने अपनी लेखन शैली के अनुरूप बेबाकीपन से बचते हुए मर्यादित रूप से बहुत ही सहजता के साथ समलैंगिकता का एक परिदृश्य इस कहानी में प्रस्तुत किया है ।

समलैंगिक संबंधों का परिवार पर प्रभाव-

'आग में गर्मी कम क्यों है?' कहानी अपनी संवेदना एवं मनोवैज्ञानिकता के कारण लेखकीय विशिष्टता का परिचय देती है। इस कहानी में समलैंगिकता के भँवर में फँसता तो पुरुष पात्र (शेखर) है परंतु उसका दुष्परिणाम है उसकी पत्नी (साक्षी) एवं उसकी संतानों सोनू, जय तथा चार माह की पुत्री पर पड़ता है। फँसना कहना इसलिए उचित है क्योंकि शेखर जेम्ज़ नामक प्रोजेक्ट लीडर के साथ समलैंगिक संबंधों के कारण अपने परिवार की अवहेलना करता है और जब जेम्ज़ किसी अन्य व्यक्ति के प्रति आकर्षित होकर उसके साथ संबंध बनाकर शेखर को छोड़ देता है तो वह इस विच्छेद से पनपे वियोग को सह नहीं पाता है और स्वयं को एक मालगाड़ी के सामने आकर समाप्त कर लेता है। यहाँ समलैंगिकों के मनोविज्ञान के संबंध में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्या स्त्री-पुरुष प्रेम की तरह समलैंगिकों का प्रेम भी इतना गहरा होता है कि वे वियोग सहन नहीं कर पाते हैं। बात सिर्फ शारीरिक सुख या यौनांद की होती हो शेखर को और भी कोई समलैंगिक साथी मिल सकता था। इसके लिए उसे आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कहानी की नायिका साक्षी जो कि एम.एससी.की शिक्षा प्राप्त होने के कारण समलैंगिक लोगों में आने वाले रासायनिक परिवर्तनों को

अच्छी तरह जानती है। तभी तो वह जितनी व्यथित शेखर के समलैंगिक होने से नहीं होती है जितनी की उसकी उसके प्रति बेवफाई से। साक्षी कहती है-''मैं वैज्ञानिक हूँ, हारमोंज़ के अनुपात की मात्रा के गणित को समझती हूँ....और आपकी इस शारीरिक संरचना को स्वीकार करती हूँ। बता देते तो शायद इतनी चोट न पहुँचती।'' (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.19)

स्त्री का मनोविज्ञान-

स्त्री का मनोविज्ञान बहुत ही जागृत होता है। अपने साथी पुरुष में आए छोटे - छोटे से परिवर्तन को वह बहुत जल्दी महसूस कर लेती है। कहानी के अनुसार ''शेखर का धोखा उसके अंग-अंग को बींध गया था। पूरा शरीर पीड़ा से कराह रहा था। पिछले कई दिनों से उसका अंतर्मन उसे रिश्तों में आ रही दूरियों से परिचित करवा रहा था, पर वह उसे अपना मानसिक विकार और शारीरिक रसायनों के अनुपात का जमा-घटाव समझती रही, वह सोचती रही कि उसके कैमिकल्स का संतुलन बिगड़ गया है।'' (सुधा ओम ढींगरा: 2013, पृष्ठ सं.17) भारतीय स्त्री अभाव, ग़रीबी आदि बहुत आसानी से सहन कर लेती है वह सहन नहीं कर पाती है तो किसी और का उसके पति के जीवन में आना। वह स्वयं को अपने पति को बहुत ही पवित्रता के साथ सौंपती है और जब उसे पता चलता है कि उसका पति किसी अन्य को छूकर उसके शरीर को छूता है तो उसकी आत्मा छलनी हो जाती है। जब साक्षी पहली बार शेखर और जेम्ज़ को अंतरंग क्रियाओं में लीन देखती है तो वह दृश्य उसके अंदर की औरत को झकझोर देता है। कहानी के अनुसार-''उसके पेट में उथल-पुथल हुई, घबरा गई वह, मरोड़ उठा था और मतली आ गई थी। वह तेज़ी से वाशरूम की तरफ भागी,वर्ना वहीं कापरेट पर उलट देती। उसे अपने बदन से बदबू आने लगी थी। उसने बच्चों के कमरे में जाकर दरवाज़ा बंद कर लिया था। पूरी शरीर का पानी आँखों और रोम-रोम से बह निकला था। उसे अपनी त्वचा और अंगों से दुर्गंध आने लगी और वह गर्म पानी के शॉवर में खड़ी होकर साबुन से रगड़-रगड़कर बदन धोने लगी।'' (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.16)

''साक्षी बच्ची को दूध पिलाती हुई सामने वाली सफेद, खाली दीवार की ओर देख रही है, जिस पर कोई चित्र नहीं टँगा हुआ। उसका जीवन भी इसी तरह से सूना हो गया है। शायद उसके जीवन में तो पहले ही कुछ नहीं था, वह उसे स्वीकार नहीं कर रही थी, जब अस्वीकार का विकल्प नहीं रहा....।'' कहानी का यह अंश एक स्त्री के जीवन में पति के होने न होने के महत्त्व को रेखांकित करता है। जो कि परंपरागत भारतीय सोच भी माना जा सकता है क्योंकि भारतीय स्त्री के जीवन में पति का स्थान कोई नहीं ले सकता। भले ही पति बेकार हो, निठल्ला या नालायक हो भारतीय नारी उसके साथ अपने अधूरेपन में भी पूर्णता का आभास कर जीवन जीने लगती है। इसी कारण शेखर का आत्महत्या कर लेना उसे रिक्तता दे जाता है। यद्यपि शेखर अपने समलैंगिक साथी जेम्ज़ के साथ चला जाता है और कभी कभार ही घर आता है फिर भी साक्षी को कहीं न कहीं यह आशा होती है कि वह उसके पास पूर्व रूप में वापस आ जाएगा। परंतु अब उसके पास कोई पति के होने का आभास करने का विकल्प भी नहीं रह जाता है।

समलैंगिकता की स्वीकारोक्ति-

समलैंगिक या विपरीत लिंगी आकर्षण मानव शरीर में उत्पन्न विभिन्न रसायनों कारण होता है। शेखर अपने समलैंगिक संबंध को पत्नी साक्षी से छुपाता है और कार्यालय में काम अधिक होने का बहाना करता है, लेकिन जब साक्षी अपने ही घर में एक दिन शेखर और जेम्ज़ को अंतरंग क्रीड़ारत देख लेती है तो पहले-पहल तो उसका स्त्री मन अंदर से इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाता है परंतु एक वैज्ञानिक होने के कारण वह स्थिति को समझती है उसे शेखर के झूठ से पीड़ा होती है। अधिकांशत: किसी भी ग़लती के लिए पति-पत्नी एक दूसरे पर दोषारोपण करते हुए चित्रित किये जाते हैं और आमतौर पर परिवारों में होता भी यही है परंतु ये सुधा जी की एक और लेखकीय विशिष्टता है कि इस कहानी में कोई भी पात्र एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हुए स्वयं को सही सिद्ध नहीं करता है। शेखर भी सुबह चाय के समय सत्यता के साथ अपने समलैंगिक होने या परिवर्तित होने को साझी के समक्ष स्वीकार करता और साझी भी रासायनिक परिवर्तनों से परिचित होने के कारण उस स्थिति को समझती है। शेखर साक्षी से अपने अंदर हुए बदलाव को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत न करते हुए चिकित्सकीय ढंग से प्रस्तुत करता है - ''अभी नए शोधों से पता चला है कि पुरुषों में मेनोपाज़ होता है, जिसे एन्ड्रोपाज़ कहते हैं और उनमें धीरे-धीरे शारीरिक परिवर्तन होते हैं, महिलाओं की तरह एकदम नहीं । बाई सेक्सुअल इंसान उम्र के किसी भी हिस्से में, स्त्री-पुरूष, दोनों की तरफ़ आकर्षित हो सकता है और मेरी बदक़िस्मती है कि मैं बाई सेक्सुअल हूँ''। (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.19)

नए ज़माने की नई स्त्री-

साक्षी असामान्य स्थिति में सामान्य ग्रहणी जैसा व्यवहार नहीं करती है। वह एक सुलझी हुई स्त्री के रूप में जेम्ज़ के साथ शेखर के रिश्ते को परिवार एवं बच्चों की परवरिश को दृष्टिगत रखते हुए स्वीकार कर लेती है। सुधा जी ये स्त्री चरित्र परंपरागत न होते हुए नए ज़माने की नई स्त्री का है, जो संकट के क्षणों में घबराती नहीं है और न ही परिस्थिति का सामना करने से भागती है। आज की स्त्री साक्षी की तरह संवेदनशील है, अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है परंतु अपने साथ हुए धोखे से परेशान भी बहुत है, फिर भी पारिस्थितिजन्य सत्य को स्वीकार करती है, परिवार तोड़ने के स्थान पर उसे जोड़ कर रखने के हित को समझती है। बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करना चाहती है। पति-पत्नी के आंतरिक संबंधों में भले उसके अंदर से प्यार की गर्मी कम पड़ने का अहसास हो जाता है परंतु वह पति का साथ सिर्फ शारीरिक सुख में कमी के कारण नहीं छोड़ती है। सुधा की स्त्री का यह बहुत ही मज़बूत पक्ष है। पति से धोखा मिलने के बाद साक्षी शेखर की तरह पलायनवादिता का परिचय देते हुए आत्महत्या या तलाक जैसा कोई कदम उठा सकती थी परंतु वह ऐसा न करते हुए परिस्थिति का सामना करती है। वह शेखर से अपने अधिकार की माँग भी नहीं करती है बल्कि वह स्पष्ट रूप से उसे अपने समलैंगिक साथ के रहने के लिए मुक्त कर

देती है परंतु परिवार का विच्छेदन नहीं करती है । यह उत्तरआधुनिक नारीवाद का एक प्रतीक है, जो कि स्वच्छंद बिल्कुल नहीं है। स्वच्छंद व्यवहार को उत्तर आधुनिकता का एक गुण माना जाता है। सुधा जी का यह स्त्री पात्र स्वच्छंद होने की धारणा को खंडित करता है। साक्षी परिस्थितियों से भागती नहीं, बल्कि गम का घूँट पीकर भी समझदारी से परिस्थिति को स्वीकार करते हुए उसका सामना भी करती है, क्योंकि उसके ऊपर बच्चों को पालने पोषने का उत्तरदायित्व है और आगे भी उसे बहुत कुछ करना है।

साक्षी के व्यवहार में एक कमी भी नज़र आती है, वह यह है कि वह शेखर को बहुत ही अंतर्मुखी और उदास पाती है तो वह उससे एक इंसान होने के नाते ही सही यदि कारण पूछ लेती या विचार-विमर्श करती तो शायद शेखर, जो कि उस दौरान जेम्ज़ के छोड़कर चले जाने कारण नितांत निस्सहाय एवं एकाकीपन में मानसिक रूप से संघर्षरत था, पत्नी का सहारा पाकर आत्मग्लानि के बोध से कुछ हद तक मुक्त हो पाता और आत्महत्या न करता । ये मानव स्वभाव होता है कि परेशानी के दौर में जो भी व्यक्ति उसे ज़रा सा सहारा देता है वह उसी का हो जाता है। हो सकता है कि वह समलैंगिकता की लत से बाहर आ जाता और न भी आ पाता तो भी उसके जीवित रहने की संभावना बढ़ सकती थी। साक्षी की इस छोटी सी भूल की ओर भी सुधा जी ने इंगन किया है- ''पर्दा तो शेखर स्वयं ही उठा गया, उसके और पुलिस के नाम पत्र लिखकर। काश। उसने ज़ोर डालकर पूछा होता कि उसे परेशानी क्या थीं? शायद वह उसे बचा लेती। दुर्घटना रुक जाती... सोचों के भँवर में वह धँसने लगी।'' (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.21)

पुरुष का कमज़ोर रूप-

सुधा जी इस कहानी का नायक शेखर एक कमज़ोर पुरुष के रूप में चित्रित हुआ है। भले ही रासायनिक कारणों से ही उसके अंदर समलैंगिकता का उत्पन्न होना उसके हाथ में नहीं था किंतु एक स्त्री एवं तीन बच्चों के साथ ईमानदार न होना शेखर के व्यक्तित्व का दुर्बल पक्ष है। वह स्वयं तो अपनी पत्नी को धोखे में रखता है और जेम्ज़ से मिले धोखे को सहन नहीं कर पाता बल्कि आत्महत्या कर लेता है - ''जेम्ज़ उसे किसी और के लिए छोड़ गया, वह उसका अलगाव सह नहीं सका । वह जेम्ज़ को बहुत प्यार करता था, उसके जीवन का कोई अर्थ व औचित्य नहीं रहा । ऐसे जीवन को समाप्त करना उसने बेहतर समझा''। (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.22)

परिवारों में प्राय: यह भी देखने में आता है कि पति अपनी पत्नी को बहलाने के लिए झूठे प्यार का सहारा लेता है ताकि उसका ध्यान उसकी कमी की ओर न जा पाए। इस कहानी में भी शेखर जब भी साक्षी नाराज़ होती है तो वह मुस्कुराता हुआ बाँहें फैला देता है। वह उसे दुलारते हुए कहता है- ''जानू, तुम्हारे लिए ही तो सब कुछ कर रहा हूँ, तुम्हारे और बच्चों के अतिरिक्त मेरा कौन है यहाँ?'' (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.13) यहाँ भारतीय पुरुष का पितृसत्तावादी रूप ही दिखाई देता है। उसकी दृष्टि में पत्नी झूठ बोलकर बरगलाई जाने के लिए है। झूठे प्यार के दिखाबे में भरमा कर शेखर प्रतिदिन देर रात घर आता है क्योंकि वह अपने समलैंगिक साथी के साथ समय गुज़ारता है। वस्तुत: वह साक्षी को नहीं स्वयं को धोखा दे रहा होता है।

तथाकथित मर्द का स्वरूप होता है कि वह स्त्री को कमज़ोर मानता है परंतु अब स्थितियों में परिवर्तन आने लगा है। स्त्री भी परिवर्तित हो रही है। कहानी के अनुसार ''शेखर हारे हुए राजनीतिज्ञ सा बैठा रह गया, जिसे वह आज तक भावनात्मक स्तर पर एक कमज़ोर औरत समझता था और कुछ भी बताने से कतराता था, डरता था कि जब भी वह उसे अपने और जेम्ज़ के बारे में बताएगा, वह रोएगी, गिड़गिड़ाएगी, लड़ेगी, झगड़ेगी और उसे कई तरह की दुहाई देकर विचलित करेगी। अपनी दृढ़ता से वह उसे स्तब्ध और बेज़ुबान कर गई।'' (सुधा ओम ढींगरा : 2013, पृष्ठ सं.20)

सामाजिक नैतिकता के लिए चुनौती-

'आग में गर्मी कम क्यों है?' कहानी समलैंगिक-विमर्श के माध्यम से मानव समाज में नैतिकता के स्तर पर चुनौती देती है कि एक परिवार के लिए पति का आचरण कैसा होना चाहिए। भले ही शेखर में समलैंगिकता का विकास हो जाता है जिस पर उसका कोई वश नहीं है परंतु उसे पत्नी के प्रति ईमानदार होना चाहिए। बच्चों के प्रति कर्त्तव्य का बोध होना चाहिए। माता-पिता के सम्मान का भान होना चाहिए। क्या समलैंगिकता इतनी उच्छृंखल या दायित्वहीन होनी चाहिए कि उसे उससे संबंधित किसी भी परिवारिक सदस्य का कोई ख़्याल ही न रहे। सिर्फ और सिर्फ उसका समलैंगिक साथी ही सर्वाधिक महत्पूर्ण होना चाहिए। ऐसा है तो क्या समलैंगिकों के लिए आम इंसानों से अलग कोई बस्ती बनाई जानी चाहिए। यदि ऐसा है तो क्यों समलैंगिकता के पक्षधर अपने आप को इसी समाज का हिस्सा बताते हैं। दायित्व निवर्हन विमुखता कभी भी किसी के व्यक्तिगत स्तर से सामाजिक स्तर तक उचित नहीं मानी जा सकती है। मेरे विचार से कहानी का नायक यदि ईमानदारी बरतता और जब प्रारंभ में ही उसके अंदर रासायनिक परिवर्तनों के होना कहानी के नायक को आभासित हो गया था तो उसे अपनी जीवन संगिनी जो कि पर्याप्त रूप से समझदार है, के साथ बात करनी चाहिए थी। हो सकता है एक समर्पित पत्नी के प्रेम एवं प्रयासों से वह अप्राकृतिक शारीरिक संबंधों के भंवर से बच जाता। माना कि उसकी मानसिक स्थिति एवं शरीर का विज्ञान उसके नियंत्रण से बाहर हो भी गया था, तो उसे अपने पिता होने के उत्तरदायित्व को याद रखते हुए बच्चों की परवरिश का पूरा करना चाहिए था, न कि किसी बेवफा के लिए अपने आप को आत्महत्या के हवाले करना चाहिए था। यदि अपराधबोध था तो साक्षी जैसे समझदार पत्नी के पास आकर प्रायश्चित करते हुए अपने फ़र्ज़ को पूरा करना चाहिए था। यदि शेखर अपने समलैंगिक होने को ग़लत मानता था तो उसे सुधार की दिशा में कदम उठाने का विकल्प अपनाना चाहिए था।

उपसंहार-

अंतत: यही निवेदन किया जा सकता है कि भले ही सुधा जी की यह कहानी समलैंगिकता से प्रभावित परिवार की कहानी है और इसके फलस्वरूप पति-प्रेम में संवेदना कम पड़ जाती है। यह मानव जीवन की अँधेरे पक्ष की कहानी भी कही जा सकती है; क्योंकि जब-जब मानव अपने

कर्त्तव्यपथ से विमुख होगा तब-तब उसे दुष्परिणाम भुगतने होंगे। भले ही कोई इस तथ्य को स्वीकार करे या न करे, सत्यता तो यही है। समलैंगिकता भले ही अपराध नहीं है परंतु कर्त्तव्यविमुखता को अपराध न मानना भी पत्नी एवं बच्चों की दृष्टि से अन्याय होगा। क्योंकि कर्त्तव्यपथ विमुख व्यक्ति जो भी करता हो उससे संबंधित परिवारिक जनों का जीवन भी बहुत गहरे तक प्रभावित होता है। भले ही नायिका साक्षी बहुत ही सक्षम और सशक्त स्त्री है परंतु वह एक माँ भी है और पति की आत्महत्या के उपरांत भी उसकी संवेदना जड़वत् ही रहती है । वह न तो पति के खोने के पश्चात् पूरी तरह से टूटती है और न ही धोखेबाज़ पति से छुटकारा मिलने पर प्रसन्न होती है। वह यह कतई नहीं सोचती है कि चलो पीछा छूटा, अब आगे की सोचेंगे, परंतु उसकी शून्यता अपूर्णता का बोध भी कराती है। विगत तीन-चार दशकों से अमेरिकी प्रवास के बाद भी सुधा जी की कहानियों में भारत के वर्तमान सरोकारों की प्रस्तुती उनके भारतीय समाज से जुड़ाव का दर्शाती हैं। कई अन्य प्रवासी रचनाकारों की तरह सुधा जी कहानियाँ उनके भारत से जाने समय पर ही रुकी हुई न होकर निरंतर परिवर्तनशील होते भारतीय समाज से जुड़ी हुई हैं। भाषा प्रयोग के स्तर पर भी देखने पर हम पाते हैं कि सुधा जी की कहानियों के पात्र तीस-पैंतीस वर्ष पूर्व की हिन्दी का उपयोग अपने संवादों में नहीं करते हैं बल्कि परिवर्तित परिवेश के अनुरूप सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हैं। जिसमें हिंदी, अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द भी शामिल होते हैं। शिल्पगत प्रयोग के स्तर पर देखें तो सुधा जी की कहानियों में समकालीनता को बोध स्पष्ट झलकता है, इसका कारण सुधा जी समकालीन साहित्य एवं साहित्यकारों से परिचय एवं अध्ययन कहा जा सकता है। उनकी कहानियाँ वर्तमान पीढ़ी की संवेदनाओं एवं सरोकारों को प्रस्तुत करने में पूरी तरह से सक्षम हैं।

संदर्भ - सुधा ओम ढींगरा : कमरा नंबर 103,साहित्य निकेतन, साहित्य विहार, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, 2013

***

'आग में गर्मी कम क्यों हैं?' : समलैंगिकता की समस्या

डॉ. उमा मेहता

समलैंगिक व्यक्ति वह चाहे 'गे', 'लेस्बियन' या 'बायो सेक्सुअल' हो उसे हमारे भारतीय समाज में मान्यता प्राप्त न होने की वजह से घृणा, तिरस्कार व अपमान का पात्र बनना पड़ता हैं। हमारा समाज शादी से इतर एक पुरुष का दूसरी स्त्री के साथ संबंध स्वीकार करता हैं पर पुरुष का पुरुष के साथ संबंध स्वीकृत नहीं करता। न स्त्री का दूसरी स्त्री के साथ। कुछ एक देशों में समलैंगिकता को कानूनी समर्थन मिल चुका हैं, जबकि भारतीय संविधान में धारा 377 के तहत इसे समर्थन प्राप्त नहीं हुआ हैं। वैसे 'मानसिक स्वास्थ्य संगठन' ने समलैंगिकता को मानव संबंधों का नॉर्मल रूप माना हैं। यह मनुष्य के शरीर में होने वाली एक 'रासायनिक प्रक्रिया' हैं, जिसका कभी-कभी स्वयं उस व्यक्ति को भी पता नहीं होता। समाज में मानहानी होने के डर की वजह से समलैंगिक व्यक्ति संकुचित ग्रंथि से पीड़ित होने लगते हैं। कभी-कभी कुण्ठा और घुटन इतनी बढ़ जाती हैं कि वह निराश होकर आत्महत्या भी कर लेते हैं। अपराध वृत्ति की तरफ भी मुड़ जाते हैं। अगर समाज द्वारा उन्हें समझने की कोशिश की जाए तो इस समस्या का कुछ हद तक समाधान मिल सकता हैं। तथा समलैंगिक व्यक्तियों में हो रही आत्महत्या के प्रमाण को कम किया जा सकता हैं।

प्रवासी साहित्यकार सुधा ओम ढींगरा ने अपनी कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों हैं?' में समलैंगिकता की समस्या को उठाकर यथार्थ से हमारा सामना करवाया हैं। सुधा ओम ढींगरा ने अपनी कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों हैं?' में समलैंगिकता जैसे संवेदनात्मक विषय पर अपनी कलम चलाई हैं। इस कहानी की पृष्ठभूमि अमेरिका के एक भारतीय परिवार के यथार्थ की ठोस ज़मीन पर तैयार की गई है। इस बात का उल्लेख करते हुए स्वयं सुधा जी ने अपने आत्मकथ्य में कहा हैं कि ''एक भारतीय (जिसका नाम गुप्त रखा गया हैं) ने मालगाड़ी के आगे आकर जान दे दी। दुर्घटना के इस समाचार और उसके बाद की स्थितियों ने मुझे सोचने पर विवश कर किया। शोध शुरू हो गया।''[1] और इस तरह एक वास्तविक घटना से 'आग में गर्मी कम क्यों हैं?' कहानी का निर्माण हुआ।

शेखर अमेरिका की सिस्को सिस्टम कंपनी में सॉफ्टवेयर इंजीनियर था। शेखर और साक्षी की शादी को नौ साल हुए हैं। आज वह अंत्येष्टि गृह के एक कोने में बैठी अपने सामने पड़ी प्लास्टिक बैग को एक टक देख रही हैं। जिसमें उसके पति की लाश पड़ी है। शेखर का शरीर गाड़ी से कट गया हैं, आत्महत्या की है उसने। शेखर की आत्महत्या के लिए भी साक्षी स्वयं को ज़िम्मेदार मानती हैं। वह चाहती तो आत्महत्या रोक सकती थी, लेकिन कैसे? शेखर ने साक्षी को कभी कुछ नहीं बताया और अंत में भी जब जेम्ज़ शेखर को छोड़ चला जाता हैं तब भी उसने साक्षी को कुछ नहीं बताया। वैसे साक्षी ने शेखर को बहुत चाहा है। शेखर हमेशा नौकरी से देर से आता। इस वजह से साक्षी परेशान रहती। वह न घर में ध्यान देता न बच्चों में। सारी ज़िम्मेदारी साक्षी को ही निभानी पड़ती। साक्षी जब पड़ोस के लोगों को एक दूसरे के साथ समय बिताते देखती तो उसके हृदय में दर्द होता, उसे ऐसा अपनापन शेखर से कभी नहीं मिला था। फिर जब शेखर घर आता तो उस पर वह गुस्सा हो जाती। लेकिन शेखर सारी बातें हँसने में निकाल देता कहता कि, ''प्रोजेक्ट पर काम चल रहा हैं, सब लोग बैठे थे, मैं कैसे उठकर आता। ऐसे में देर तो हो ही जाती हैं।''[2] सास -ससुर के कहने पर वह शांत हो जाती।

साक्षी ने फिजिक्स में एम.एससी. की डिग्री हासिल की है और अमेरिका से डिप्लोमा की भी। वह दिन भर एक सिंगल मदर की तरह घर व बाहर तथा बच्चों का काम करते हुए थक जाती। शेखर ने उसे क्रेडिट कार्ड भी दे रखा था ताकि साक्षी उससे कोई फरियाद न करे। जब भी साक्षी थक कर शेखर पर भड़क उठती तब वह उसे अपनी बाँहों के घेरे में लेकर मुस्कुराते हुए पिघला देता। लेकिन फिर भी साक्षी को शेखर के साथ अपने रिश्तों में गिरावट ही महसूस हो रही थी। ''रिश्तों के ठोस धरातल में छेद हो गया था; जैसे कुछ रिस

रहा था वहाँ से, वह उसे ढूँढ़ नहीं पा रही थी। शेखर के प्यार में वह कर्त्तव्य अधिक और मादकता कम पाती थी।''3 इसके लिए भी वह स्वयं को ही दोषी ठहराती रही कि शायद उसी में कोई कमी है जिसकी वजह से शेखर उससे उखड़ा-उखड़ा रह रहा हैं। परिवार के प्रति भी वह एक दम नीरस व निर्लिप्त था। तब साक्षी चिंतित हो तर्क करने लगती कि शादी के इतने सालों बाद शायद रिश्तों में गिरावट आ जाती होगी। ''शेखर की बाँहों के घेरे में उसे पहले सी गर्माहट नहीं मिलती थी। ठंडापन महसूस होता। संसर्ग में भावनाओं का संवेग न होता।...कोमल क्षणों में भी वह कहीं खोया रहता। हर बार उसका शरीर चुगली काटता कि शेखर का दिल कहीं ओर था, वह उसके साथ होकर भी उसके साथ नहीं था। वह तृप्त होकर भी अतृप्त रहती।''4 जिसकी वजह से साक्षी की मानसिक स्थिति बिगड़ने लगी थी। उसने डॉक्टर से संपर्क कर टेस्ट करवाए, तब डॉक्टर ने सलाह दी कि वह नौकरी करे ताकि अपने आसपास के वातावरण से कुछ देर के लिए मुक्त रह पाए।

साक्षी को वेकटैक कम्यूनिटी कॉलेज में फिज़िक्स पढ़ाने की नौकरी मिल गई। शेखर भी उत्साह से बच्चों की ज़िम्मेदारी स्वीकार कर जेम्ज़ के साथ घर पर ही प्रोजेक्ट का काम करने लगा। साक्षी कहती हैं कि ''पहले दिन जब वह जेम्ज़ से मिली थी, तो किसी मैगज़ीन के पृष्ठों से निकला चेहरा लगा था। पुष्ट देह। नीली आँखें। भूरे बाल। शिष्ट और शर्मिला। व्यवहार में सभ्य। बच्चों को मिलते ही वह उनका दोस्त बन गया था। कुछ दिनों में वह उसकी प्रशंसिका हो गई थी।''5 एक दिन उसके कॉलेज में क्लास केंसिल हो गई। वह घर जल्दी आ गयी। घर में सन्नाटा छाया था। ''ज्यों ही उसने दरवाज़ा खोला, बिस्तर पर जेम्ज़ और शेखर अंतरंग क्रियाओं में लीन थे। वह दृश्य उसके अंदर की औरत को झकझोर कर, उसके अस्तित्व को जड़ों से उखाड़ गया। वह तेजी से वॉशरूम की तरफ भागी, वरना वहीं कारपेट पर उल्टी कर देती। उसे अपने बदन से बदबू आने लगी थी।''6 दूसरे कमरे के बाथरूम में जाकर वह शॉवर के नीचे जाकर खड़ी रह गई उसे अपने बदन से बदबू आने लगी और रगड़ रगड़ कर अपने बदन को धोने लगी। आज तक रिश्तों की गिरावट के लिए वह स्वयं को दोषी मानती रही जबकि शेखर ने उसके साथ धोखा किया था। आज उसके मन में सारी बातें स्पष्ट हुई कि शेखर के साथ अंतरंग पलों में भी गर्माहट की कमी नज़र क्यों आ रही थी। जेम्ज़ के साथ रत्यात्मकता करने के बाद भी वह उसे छूता रहा यह सोच कर भी उसे घिन आने लगी। दर्द व पीड़ा से उसका बदन कराह ने लगा। शेखर की बेवफ़ाई का दर्द असह्य हो रहा था। उसने भारत में अपने सास ससुर व माता पिता को यह बताना उचित न समझा और सारा दर्द अकेले ही झेल गई। क्योंकि उनके रिश्तेदारों की सोच उदारवादी नहीं हैं। अंतत: साक्षी ने यह विष पीकर स्वयं में समाहित कर लिया।

वास्तव में शेखर को स्वयं अपनी इस शारीरिक ज़रूरत व संवेगों का पता नहीं था। वह लड़कियों के प्रति बहुत आकर्षित होता था, तभी तो उसने साक्षी के साथ शादी की थी। कुछ सालों बाद जेम्ज़ उसका प्रोजेक्ट लीडर बनकर आया और उसके साथ रिश्तों के बहाव में वह बह गया। शेखर में अपनी इस वृत्ति की वजह से अपराध बोध व कुंठा का भाव उत्पन्न हो गया था। तभी उसने मनोविशेषज्ञ की सलाह ली थी, उन्हीं की मदद से वह अपनी शारीरिक संरचना समझ पाया था।

शेखर स्वयं साक्षी के सामने स्वीकार करता हैं कि ''मेरी शारीरिक संरचना ऐसी है कि मैं दोनों लिंगों के प्रति आकर्षित हो सकता हूँ।... अभी नये शोध से पता चला हैं कि पुरुषों में भी मेनोपोज होता हैं, जिसे एन्ड्रोपोज कहते हैं और उनमें धीरे-धीरे शारीरिक परिवर्तन होते हैं, महिलाओं की तरह एक दम नहीं । बाई सेक्सुअल इंसान उम्र के किसी भी हिस्से में, स्त्री- पुरुष दोनों की तरफ आकर्षित हो सकता है और मेरी बद किस्मती हैं कि मैं बाई सेक्सुअल हूँ।''7

वैसे साक्षी ने साइंस पढ़ी हैं। वह हारमोंज के अनुपात की मात्रा को जानती हैं। इस में शेखर का कोई दोष नहीं हैं। उसे दु:ख इस बात का नहीं था कि शेखर 'बाई सेक्सुअल' हैं पर दु:ख इस बात का था कि इतना सब कुछ होने पर भी शेखर ने उससे यह बात छिपायी। जब कि उसका मानसिक संतुलन भी बिगड़ने लगा था फिर भी शेखर ने उसे यह बताना उचित न समझा। वह स्वयं में ही रचा-पचा रहा। अगर उसने साक्षी को सब बता दिया होता तो आज उसे इतनी चोट न पहुँचती। साक्षी ने शेखर को मुक्त कर दिया था जेम्ज़ के लिए। अब शेखर भी सप्ताह में एक बार घर आने लगा। वह अपनी ज़िम्मेदारी व कर्त्तव्यों के प्रति और लापरवाह हो गया। वह गुमसुम भी रहने लगा था। जेम्ज़ उसे छोड़कर चला गया इससे दु:खी होकर उसने आत्महत्या कर ली।

शेखर ने जो पत्र लिखा उसमें उसने स्वीकार किया था कि ''जेम्ज़ उसे किसी और के लिए छोड़ गया, वह उसका अलगाव सह नहीं सका। वह जेम्ज़ को बहुत प्यार करता था, अब उसके जीवन का कोई अर्थ व औचित्य नहीं रहा। ऐसे जीवन को समाप्त करना उसने बेहतर समझा।''8 अंत्येष्टि गृह में बैठी साक्षी की नज़रों के सामने शेखर की लाश पड़ी है। वह इतनी जड़ हो गई है कि उसकी आँखों से आँसू भी नहीं निकलते हैं। दाह संस्कार के बाद वह जैसे ही बाहर निकली तो वहाँ उसने जेम्ज़ को सर जुकाए खड़ा देखा। अब जेम्ज़ को भी पछतावा हो रहा हैं, लेकिन उसका कोई अर्थ नहीं हैं। साक्षी बिना कुछ बोले वहाँ से चली जाती हैं।

संदर्भ सूची :-

1. नई सदी का कथा समय, संपा. पंकज सुबीर, आत्मकथ्य, सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन, म.प्र., सिहोर, प्रथम संस्करण- 2014, पृ. 223
2. कमरा नंबर 103, आग में गर्मी कम क्यों हैं ?,सुधा ओम ढींगरा, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण- फरवरी 2013, पृ. 12
3. वही, पृ.13
4. वही, पृ.15
5. वही, पृ.15,16
6. वही, पृ.16
7. वही, पृ.19
8. वही, पृ.22

***

उज्ज्वला अनंत केळकर
प्रकाशित पुस्तकें: 6 उपन्यास, 4 कथा संग्रह, 2 कविता संग्रह, 6 लघुतम कथा संग्रह, 14 लघुकथा संग्रह, 30 पुस्तकें बालवाङ्मय-(कविता, नाटिका,चरित्र, बाल उपन्यास, बालकथा, भौगोलिक - भारतीय नद्यांची ओळख), 8 पुस्तकें प्रौढ़वाङ्मय, 32 हिन्दी से अनुदित पुस्तकें, हरिशंकर परसाई की चुनी हुई रचनाओं का मराठी अनुवाद।
सम्मान: अखिलभारतीय साहित्य परिषद, रजस्थान, कोटा शाखा - शब्दसरोज सन्मान - 2008 म. प्र. लघुकथाकार परिषद - डॉ. श्रीराम दादा ठाकुर संस्कारधानी सम्मान - 2009, पं.क.स. अकादमी जालंदर - विशिष्ट अकादमी अवॉर्ड - 2010
उज्ज्वला अनंत केळकर
173/2 'गायत्री 'प्लॉट नं 12, वसंत दादा साखर कामगारभवनजवळ, सांगली 416416
ईमेल: kelkar1234@gmail.com
मोबाइल: 9403310170

अनुवादक
डॉ. सुशीला दुबे
फ्लैट नं. 303 बिल्डिंग नं. - डी-2
शिवसागर को. ऑप. सोसायटी,
माणीकबाग, सिंहगढ़ रोड, पुणे- 411051
मोबाइल: 9923011613

झूला

मूल मराठी कथा
मूल लेखिका : उज्ज्वला केळकर
अनुवाद : डॉ. सुशीला दुबे

झूला झूल रहा है, आगे-पीछे, पीछे - आगे। कांचन झूले के डंडे पर पाँव मोड़कर मज़े में झूल रही है। शान से, लेकिन सावधान है। हाथ मोड़कर छाती पर रखे है। सर नीचे... एक... दो... तीन... आठवें अंक पर झूले पर का यह शीर्षासन समापन। डंडे के चारों ओर एक चक्राकार प्रदक्षिणा और दूसरे ही क्षण आगे लपक कर कांचन के हाथ पकड़ना, उसी स्थिति में दो झूले फिर अबाउट टर्न। फिर से दोनों हाथों से अपने झूले का डंडा पकड़ना। एकदम पक्का। तब तक आठ अंक की गिनती होती है। एक लय में। शामियाने के अंदर के दीप बुझा दिए गए है। बाहर की ओर खंभे पर लगी ट्यूब लाइट का धुँधला उजाला यहाँ तक पहुँचता है। सब कलाबाज़ी अँधेरे में ही दिखानी है। यही इस सर्कस की ख़ासियत है। शामियाने के एक कोने में सर्कस का बैंड बज रहा है। सब कलाबाज़ी बैंड की धुन पर है, ऐसा आभास जगाना है। बस्स! नहीं तो बाकी सब कुछ निश्चित। सुंदर। सुघड़। ज़मीन से पचास, पचपन, साठ फीट ऊँचाई पर बँधे अनेक झूले, एक डंडेवाले, उस पर डबल बार, सिंगल बार और कई प्रकार की कलाबाज़ियाँ की जाती है। कलाबाज़ियाँ दिखानेवाली हम दस-बारह लड़कियाँ। रंगबिरंगे, ट्विंकल नायलॉन के झालर लगे फ्रॉक का घेर फैलाकर कलाबाज़ियाँ करती हैं।

बौने ने एक बार कहा था, 'पब्लिक को लगता होगा, आसमान की परियाँ अधर में तैर रही हैं।'

कांचन ने मेरे हाथ की केवल कनिष्ठिका पकड़ रखी है। अगले झूले में फिर से अबाउट टर्न। पहले झूले का डंडा पकड़कर झूलते रहना है। उस से अगले झूले पर कांचन मेरे पाँव पकड़ लेगी, फिर रोज़ा कांचन के। पैतीस फीट ऊँचाई पर नेट बँधा है। उस पर बौना खड़ा है। हाथ में लंबी छड़ी है। हम तीनों की साँकल झूले के डंडे के सहारे झूल रही है। आगे-पीछे, पीछे-आगे। अब बौना उछल-कूद कर के यह साँकल पकड़ने की कोशिश करेगा। फिर छड़ी ऊपर करेगा। कभी वह गिरेगा, कभी छड़ी गिराएगा। फिर जैसे-तैसे छड़ी रोज़ा के हाथ आएगी। फिर एक के बाद एक रोज़ा, कांचन और मैं छड़ी पर फिसलते हुए नीचे आएँगी। इस खेल का हमारा आख़िरी आइटम। सब कलाबाज़ियों के बाद हम कभी-कभी उकता जाते है। परसों कांचन ने बौने से कहा, 'तुम्हारी मर्कट लीला जल्दी समाप्त करो। हमारे हाथ भर आते हैं।' तब बौने ने कहा, 'मैनेजर साब ने मुझे कहा है कि मैं कम से कम पाँच मिनिट पब्लिक को हँसाकर रिलैक्स करूँ। अब तुम्हें तकलीफ़ होती है, तो मैं कोई न कोई रास्ता निकालूँगा, पर उस के बदले में मुझे कुछ न कुछ... रिश्वत कहो, गिफ़्ट कहो... क्या?' अपना मुँहासे वाला थोबड़ा आगे कर के गाल पर टैप करते हुए उस ने कहा

'वन फॉर वन मिनिट बिफोर, टू फॉर टू मिनिट्स बिफोर, थ्री...'

'डू यू मीन इट?'

'येस, ऑफ कोर्स' चेहरे पर शरारती हास्य बिखरते हुए बौना बोला। कांचन आगबबूला हुई।

'छी: गंदा कहीं का! इससे तो बेहतर है हाथ टूटने तक लटकते रहना। इस बौने से तो

सायकल चलानेवाला बंदर बेहतर है।' कांचन बौने पर झुँझला रही थी। वह भी कमाल करती है। अब बौने की बात का क्या बुरा मानना? उस की तो सभी बातें हँसी-मज़ाक की होती है। उसे संजीदा होते हुए किसी ने देखा है भला? लोगों को हँसाते-हँसाते विदूषक की तरह बर्ताव करना, बात करना, हावभाव दिखाना उस का स्वभाव बन गया है। इतना सहज जैसे हम साँस लेते हैं। कांचन से उस ने जो कहा, वह यकीनन मज़ाक में ही कहा। नहीं तो मैं, कांचन, रोज़ा, परमेश्वरी हम सब उस की बेटियों जैसी है। पर कांचन यह बात मानने को तैयार नहीं। वह कहती है, 'उस ने सिर्फ कहा नहीं, वह सूचित करना चाहता था।'

क्या कांचन की बात सही होगी?

क्या चेहरे जैसे उस के विचार भी विद्रूप होंगे? कहीं मन में दबे विचार अनजाने, असावधानी में उछल पड़े होंगे। कांचन भन्ना रही थी लेकिन बौने के चाल-चलन में कोई फ़र्क़ नहीं था। वह चिढ़ रही थी इस लिए वह ज़्यादा पीछे पड़ रहा था। वही निरीह मज़ाक लेकिन कांचन का गुस्सा उफन रहा था, फौव्वारे जैसा।

बौने ने शादी नहीं की है? क्यों नहीं की होगी? बौना है, इसलिए? लेकिन ऐसे कितने ही विदूषकों की शादियाँ हुई हैं। थोड़ा-बहुत समझौता करना पड़ता है। बस! मैनेजर साहब ने कितनी बार कहा है। कभी मज़ाक में, कभी बातों-बातों में, कभी गंभीरता से। लेकिन वह सब बातें मज़ाक समझकर चल देता है। एक बार उस नें कहा, 'मेरे आस-पास मँडराने वाली आसमान की परियाँ देखकर वह मत्सर से जल जाएगी और मुझ बेचारे को फाँसी लग जाएगी।' और भी ऐसी ही अंटशंट... उस की निश्चित धारणा थी, कि क्या ज़रूरत है शादी करने की।

बौने का चेहरा विद्रूप है लेकिन उसका बोलना, हँसना ऐसा शानदार है कि उस के अस्तित्व से पूरे शामियाने में चैतन्य सरसराता है। भोजन के समय अगर वह नहीं रहता, तो कादर की बनाई हुई चिकन करी और कबाब एकदम बेस्वाद लगने लगते है। बौना जहाँ भी होता है, वहाँ हँसना, खिलखिलाना चलता रहता है। हँसी मज़ाक में कुछ ज़्यादा ही खा लेते है। दिन भर के काम की थकान कम हो जाती है। बौने की माँ से मिलना चाहिए। उसे पूछना चाहिए कि क्या ये पैदा हुआ था, तब भी रोने के बजाय हँस रहा था?

गाँव में उस की छोटी बहन की प्रसूति हुई थी। शो समाप्त होने पर स्पेशल टैक्सी लेकर वह गाँव जानेवाला था। लेकिन उस से पहले, शो चल रहा था तभी तार आया, लड़का पैदा हुआ लेकिन माँ चल बसी। तब भी वह हँसा था। खिलखिलाकर हँसा था। इतना कि उस की हँसी से डर लगने लगा था। सब के मन में आया था कि वह रो दे तो अच्छा है। सब को हँसाने वाले बौने को उस दिन सब ने रुलाने की कोशिश की थी। बाद में वह गाँव जाकर आया। बता रहा था, बहन का बेटा अपने मामा पर गया है। यानी मुझ पर और वह हँसता रहा बस, इतना ही। अन्यथा पिछले बीस सालों में कभी उस का संतुलन बिगड़ा हो मुझे तो याद नहीं।

यहाँ सभी को बौने का सहारा है। मैनेजर उस की इज़्ज़त करता है। कोई कहता है, वह मालिक का दूर का भानजा है। बचपन में उस की बदसूरत भद्दी शक्ल, व्रण से भरा चेहरा, पीठ की कूबड़ और बौनापन की वजह से उस का मज़ाक उड़ाया जाने लगा। इसलिए स्कूल, घर सब छोड़कर उसने इस सर्कस में पनाह ली। यहीं पला-बढ़ा। यहीं पर उसने अपनी कला दाँव पर लगाई। अपनी मासूम निरीह हँसी खुलकर बिखेर दी। वह सब को अपना लगने लगा। अब कांचन उस के बारे में ऐसा कह रही है। ज़रूर उसे ग़लतफहमी हुई है। दरअसल जो वास्तव में है ही नहीं उस कीड़े का उस की कल्पना में नाग बन गया है। बौना तो शायद भूल भी गया होगा कि उस ने ऐसा कुछ कहा था। पर कांचन खार खाए बैठी है। उसे कहीं अंदर तक चोट पहुँची है।

परसों बौने के वजह से सब ठीक हो गया। हुआ ऐसा कि श्रीनिवासन को बुखार था। सुबह से चिंता लगी थी कि उस का शो हो पाएगा या नहीं? उस का शो महत्त्वपूर्ण था। तोप में बत्ती लगाते ही मृत्युगोल में मोटर साइकल पर उड़ान। फिर नीचे से ऊपर चक्कर लगाना। दर्शक साँस रोककर देखते है। मोस्ट थ्रिलिंग आइटम। देखनेवाले के रोंगटे खड़े हो जाते है। थ्रिल ही मनोरंजन है। कुछ रुपये देकर थ्रिल की अनुभूति लेना। उसके लिए कोई अपनी जान दाँव पर लगाता है। मृत्युगोल में गोल-गोल घूमना। अति सावधानी से, पलभर की भी ग़लती न करते हुए।

झूले पर कलाबाज़ी करते हुए यह सब विचार मेरे मन में आ रहे थे। मन भी कैसा बावरा होता है। पता नहीं कब क्या सोचने लगे। सब कलाबाज़ियाँ आदत के मुताबिक हो रही थी। फिर मृत्युगोल में गोल-गोल घूमनेवाला श्रीनिवासन आँखों के सामने आया। सुबह उसे तेज़ बुखार था। आज सब ठीक तो होगा न? पलभर के लिए मन पागल हो गया। उस के आस-पास मँडराने लगा। और मैंने झूला छोड़ा तब कांचन का झूला पीछे चला गया था। मैं नीचे नेट की तरफ। पता नहीं कैसे, पर बौने ने अपने छोटे हाथों से पकड़ लिया।

'आसमान की परी नीचे कैसी आ गई छलाँग लगाकर...' ऐसा कुछ बड़बड़ाते हुए अपनी शक्तिशाली हाथों से उस ने मुझे झूले की तरफ ऊपर उछाला। कांचन के पाँव हाथ आ गए। मेरी जान में जान आ गई। नीचे बौने की बकबक और अंगविक्षेप चल ही रहे थे। दर्शक खिलखिलाकर हँस रहे थे। तालियाँ बज रही थीं। उन्हें लगा, मेरा गिरना खेल का ही हिस्सा है। नीचे ज़मीन पर खड़े मास्टर जी की लाल आँखें धीरे-धीरे साफ होती गई।

आज भी मन घबरा रहा है। लगता है, कुछ बुरा होनेवाला है। श्रीनिवासन अच्छे ख़ानदान का ग्रेजुएट लड़का है। पता नहीं कौन से अनाम आकर्षण में वह कहीं और नौकरी न ढूँढ़ते हुए, यहाँ सर्कस में आ गया। कॉलेज के दिनों में भी वह सिंगलबार, डबलबार, रोमन रिंग, मलखंभ आदि खेलों में दिलचस्पी लेता था। साइकल रेस में यूनिवर्सिटी में फर्स्ट आया था। उस का मूड अच्छा रहा, तो खूब बातें करता है। अपने बारे में, घर के बारे में, कॉलेज के बारे में, सर्कस में आने के बारे में। यहाँ उसने पहले छोटे-मोटे काम सीखे। फिर सब से महत्त्वपूर्ण मृत्युगोल में मोटर साइकल चलाने का काम सीख लिया। अब वह कहता है कि इस काम से वह उकता गया है। अब वह कहीं घर बसाना चाहता है। गृहस्थी बसाकर आराम से रहना चाहता है। यहाँ- वहाँ घूमते रहने से भी वह उकता

गया है। मुंबई जैसे महानगर में उसे रोज़ी-रोटी मिलना मुश्किल नहीं है। वह कहता है, मुंबई में उस के समाज के कई लोग है। दो वक़्त की रोटी का इंतज़ाम कैसे भी हो ही जाएगा लेकिन यहाँ से छुटकारा मिले तब ना! मास्टर जी कहते है,'तुम्हारी जगह दूसरे किसी को तैयार करो और फिर तुम चले जाओ'। वही तो वह कर नहीं पा रहा है। वैसे वह बड़ा आलसी और सनकी है इसलिए मुझे उस की हमेशा चिंता लगी रहती है। कहीं भी, कैसा भी, झुक जाता है। बिना सोचे समझे भटक जाता है।

श्रीनिवासन जाते समय मुझे ले जाएगा न? मुझे देखते ही उस की आँखें चमकने लगती है। मंत्रमुग्ध हो जाता है। उस की बातें सुननेवाला भी मंत्रमुग्ध हो जाता है। पर क्या वह मुझसे ही ऐसी बातें करता है, या सभी से? वह कहता है, यहाँ इस प्राणी संग्रहालय में और यहाँ के इंसानों में तुम ही अकेली सही मायने में स्त्री लगती हो। बाकी सब लड़कियाँ मर्दाना लगती है। उसे मेरे लिए बहुत अपनापन है। कम से कम मुझे तो ऐसा लगता है। उस की बातों से... उस के बर्ताव से...लेकिन यहाँ से जाते समय मुझे वह अपने साथ ले जाएगा न? मेरा यहाँ से छुटकारा होना कोई मुश्किल काम नहीं है। झूले पर कलाबाज़ियाँ दिखानेवाली यहाँ कई लड़कियाँ हैं। मुझ पर और कोई महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी नहीं है। वैसे भी यह काम मुझे पसंद नहीं है। मैं इस सर्कस में पली-बढ़ी। मैं किसी की गिनती में नहीं थी। कोई कहता है, बड़े मालिक को मैं सड़क पर मिली थी। कोई कहता है, दो आदमी एक बच्चे को लेकर भाग रहे थे। मालिक ने देखा और उन्हें डाँटा। तब वे मुझे यहाँ छोड़कर भाग गए। कोई कहता है, मेरी माँ ने ही मुझे मालिक के हवाले कर दिया था। इतना बड़ा कुनबा है, उसमें एक जीव क्या भारी पड़ेगा? जितने मुँह उतनी बातें। पर एक बात सच है कि मुझे जब से समझ आने लगी, तभी से मैं इस सर्कस में हूँ। अब बड़े मालिक नहीं रहे। बचपन से यहाँ रहकर भी मुझे इस काम में दिलचस्पी नहीं है। आज यहाँ, कल वहाँ घूमते रहने से स्कूल की पढ़ाई भी ढंग से नहीं हो पाई। देखकर, सुनकर, पढ़कर जो मिल सके उतना अभ्यास होता है। अपनी सर्कस की दुनिया कितनी अलग है, असली दुनिया से टूटकर अलग... एक जगह पड़े जैसी। क्या कभी मैं उस दुनिया में... दूसरी दुनिया में जा पाऊँगी?

सर्कस की दुनिया में पली-बढ़ी इसलिए कलाबाज़ी के कुछ आसान खेल सीख लिए। नहीं तो यहाँ मेरा अस्तित्व शून्य है। श्रीनिवासन की वजह से पहली बार इस बात का अहसास हुआ कि मेरी इस निरर्थक ज़िंदगी में भी कोई अर्थ है, फिर मैं काम में और अपने आप में भी दिलचस्पी लेने लगी। एक बार श्रीनिवासन नें कहा था, 'यहाँ के रूखे, नीरस जानलेवा माहौल में मैं तुम्हारे कारण ही ठहरा हूँ। मृत्युगोल में भी मैं तुम्हारे बारे में ही सोचता हूँ... सिर्फ तुम्हारे बारे में।'

इतनी अच्छी-अच्छी बातें कैसे कर लेता है वह? सामनेवाले को खुश करनेवाली... यह सब बातें उस के मन की, अंतर्मन की होगीं ? या केवल शब्द... मुझे खुश करने के लिए? वह मुझसे ही ऐसी बातें करता है, या औरों से भी? कांचन, रूबी सभी से वह ऐसी ही मीठी-मीठी बातें करता होगा। सच क्या है, जान लेना चाहिए। बौने को विश्वास में लेना पड़ेगा। उसे कहना पड़ेगा, श्रीनिवासन के मन की गहराई तक जाकर जान ले। वह बहुत चंचल है। उस का स्वभाव बच्चों जैसा है। उसे सँभलना चाहिए। ख़्याल रखना चाहिए उस का। मैं सब कुछ करूँगी। लेकिन वह मुझे साथ ले जाए तब! उसे कसम दिलानी होगी। बाद के वादे नहीं चाहिए। उसे जता देना चाहिए कि यहाँ से जाने से पहले शादी कर के मुझे साथ ले जाए। बौने से कहना चाहिए, तुम मेरी ओर से उस से बात करो। तुम्हारे सिवा यहाँ मेरा अपना कोई नहीं है। और फिर एक अच्छा सा घर। अरे हाँ, मुझे खाना बनाना सीखना पड़ेगा। कोई बात नहीं है। मैं सीख लूँगी। यहाँ जान हथेली पर लेकर लटकते रहने से वह काम बेहतर होगा। झूले का हिलोरा, लय में गिने जाने वाले अंक, पलभर की ग़लती हुई, तो हाथ-पाँव खोने की संभावना।

आजकल श्रीनिवासन की रूबी के साथ घनिष्ठता बढ़ती जा रही है। रूबी उन्मुक्त... आँधी जैसी... वह किसी एक से दिल लगाकर बैठेगी, ऐसा तो नहीं लगता, फिर भी आजकल वह श्रीनिवासन के बारे में बहुत अपनापन जताती है। अपनापन या प्यार? हमेशा कहती है,- 'वह कितना लापरवाह है, उस की हँसी कितनी मधुर है। उस के घुँघराले बालों में उँगलियाँ फेरने का मन करता है। उस के पीछे मोटर सायकल पर बैठने में कितना थ्रिल और चार्म है।' रूबी की बातें बर्ताव सब कुछ नि:संकोच। वह कहती है 'श्रीनिवासन को कसकर पकड़कर बैठना, मोस्ट थ्रिलिंग एक्स्पेरियन्स!' श्रीनिवासन को कसकर पकड़कर बैठी रूबी... खूबसूरत, सुडौल, लाल पोशाक में नज़रें गड़ा देने वाली रूबी.. कुछ नया.. काश यह बात अपने दिमाग़ में आती। रात-दिन उस की चिंता लगी रहती है, फिर भी यह बात मेरे दिमाग़ में क्यों नहीं आई? रूबी को पूछना चाहिए कि आज के दिन मैं उस के पीछे बैठना चाहती हूँ। मगर उस ने पूछा, क्यों बैठना चाहती हो, तो क्या बताऊँ? मुझे किसी अशुभ घटना की आहट ने घेर लिया है। वह हँसेगी। खिल्ली उड़एगी। कहेगी 'नॉन्सेन्स!' शायद श्रीनिवासन को भी बताएगी। शायद दोनों हँस पड़ेंगे। मज़ाक उड़ाएँगे। क्या मास्टरजी से पूछा जाए ? लेकिन वे कहेंगे,'अभ्यास चाहिए। पकड़ पक्की चाहिए... छूट गई तो...'

झूला झूल रहा है। श्रीनिवासन मुझे ले जाएगा या रूबी को? असमय, अनचाहे विचार... श्रीनिवासन कब जानेवाला है? उस के मन में क्या है, यह जान लेने का काम बौना कर सकता है। क्या वह मेरे लिए इतना करेगा? उस से अपना क्या संबंध है? कांचन ने ग़लतफहमी कर ली है। बौना सचमुच मासूम है लेकिन कांचन को कैसे समझाए? बौने को देखते ही वह आगबबूला होती है। कहीं कांचन सही तो नहीं है? बौने के मन में कहीं वासना की कोंपल लहलहा रही है। बढ़ रही है?

पाँच-छह-सात, आठवें अंक पर झूले डंडे के चारों तरफ प्रदक्षिणा और कांचन की ओर लपकना... कांचन के हाथ में सिर्फ दोनों कनिष्ठिका... मैं लटकती रहती हूँ। फिर जंज़ीर बनेगी... बौने के छड़ी फेंकने तक लटकते रहना... क्या बौना यह लटकना रोकेगा? हमेशा... हमेशा के लिए...?

***

ड्रैस कोड

मदन गुप्ता सपाटू

सेवानिवृति के बाद ज़िंदगी की दूसरी पारी का पूरा लुत्फ चल रहा था। सुबह आराम से उठना, कुर्ते पायजामे और चप्पलों में इज़ी रहना। सीनियर सिटिज़न्स के खेमों में उठना बैठना, बतियाना, नए-नए शेर गढ़ना, सुनना- सुनाना, गोष्ठियों, कवि सम्मेलनों, मुशायरों में जाना, म्यूज़िकल कार्यक्रमों आदि में शिरकत करना, हर प्रोग्राम के 'द् एँड' में मुफ्त में चाय पानी, लंच-डिनर वगैरा-वगैरा के आनंदमयी दौर से गुज़र रही ज़िंदगी में एक दिन, अचानक एक इन्वीटेशन ने सारा मज़ा किरकिरा कर डाला।

एक बहुत ही उच्च सामाजिक संस्था का निमंत्रण आया कि शहर के एक सबसे बड़े क्लब में आयेजित उनके फंक्शन में आप कोरडियली इनवाइटिड हैं; जहाँ तीन राज्यों के राज्यपाल शामिल होंगे। कार्ड में समय पर पहुँचने, 'स्टे फार डिनर ऑफ़्टर प्रोग्राम' की आकर्षक ऑफ़र भी थी। साथ ही मोटे अक्षरों में ड्रेस कोड लिखा था कि आप फार्मल ड्रेस यानी-काले, नीले या डार्क ग्रे सूट, बूट और टाई में ही आएँ वरना अंदर जाने नहीं दिया जाएगा।

ऑफ़िस टाइम के सूट, बूट, आस्मानी शर्ट और टाई की ढुँढाई में रात-दिन एक कर दिया। ट्रंक, अटैचियाँ, आल्मारियाँ उल्टा डालीं और ड्रेस कोड का रॉ मेटीरियल मिल गया। श्रीमती जी ने झट से धोबी से सब प्रेस-व्रेस करवा लिए, जूते हमने खुद डस्टर से चमका लिए क्योंकि जूते पॉलिश किए एक मुदद्त हो चुकी थी। चप्पलों से ही काम चल जाता था।

फंक्शन में जाने के लिए आधा घंटा ही बचा था। हमने सोचा ऐन टाइम पर पहनेंगे ताकि करीज़-वरीज़ बनी रहे। इधर हमारे सीनियर सिटिज़न ग्रुप के मैसेज मोबाइल पर टनटनाने लगे- आन द वे,..... पिकिंग अप एट सेवेन शार्प .....आदि आदि।

शर्ट तो किसी तरह फँस गई। टाई भी गलबन्धन हो गई। जैसे ही पैंट को ऊपर करके देखने लगे तो पता चला कि इतने सालों में कीड़ों ने उसके पिछवाड़े छोटे-छोटे रोशनदान बना डाले हैं।

हम घबरा गए क्योंकि कोई बेमेल पैंट भी नहीं डाल सकते थे। नो एंट्री का बोर्ड आँखों के आगे तैरने लगा। श्रीमती जी ने हौसला बँधाया कि ये सब आपके कोट के पीछे छुप जाएगा, पहनो तो सही। अब दूसरी मुसीबत आन पड़ी। जब पैंट पहनने लगे तो उसने कमर के ऊपर आने से इंकार कर दिया। यों तो हम डेली वॉक पर जाते थे लेकिन दोस्तों की

मदन गुप्ता सपाटू
458, सैक्टर 10,
पंचकूला-134109, हरियाणा
मोबाइल: 9815619620
ईमेल: spatu196@gmail.com

सोहबत में पेट का क्षेत्रफल कब बढ़ गया, इसका पता इसी दिन चला वरना सब हमें हमेशा फिट एंड फाइन ही बताते रहे। हम पेट और पैंट के द्वंद्व में फँस गए। किसी तरह पैंट चढ़ाई तो बैल्ट नाराज़ हो गई। आज हमें पायजामे की सादगी और उसके नाड़े पर गर्व महसूस हुआ कि दोनों आपको किसी भी उम्र और साइज में कैसे एडजस्ट करते रहते हैं। श्रीमती जी ने एक सुए से बैल्ट के आख़िरी सिरे से आधा इंच पहले एक सुराख कर दिया। किसी तरह हम अपने आफिशियल सूट में फँसे। बूट तो पैरों में आ गए पर फीते बाँधने और उँगलियों के बीच पी. ओ. के. जैसी स्थिति थी। पैर तो हमारे ही थे पर अपने ही हाथ वहाँ तक नहीं पहुँच पा रहे थे। बीच में पेट आड़े आ गया। हमें अब चप्पलों की सादगी पर गुस्सा आया कि रिटायरमेंट के बाद, कैसे उन्होंने हमारी आदतें बिगाड़ दी। जैसे तैसे श्रीमती जी ने चरणवंदना करने के अंदाज़ में जूतों के फीते कस दिए। कमर पहले ही कस दी थी। साथ ही हिदायत दी कि खाने पीने के चक्कर में ज़्यादा इधर-उधर नाचना नहीं।

बाबू रामलाल पाँच मिनट पहले ही धमक गए और अपने चिरपरिचित अंदाज़ में चिल्लाए- अमाँ यार आज भी लेट.... और बोले- आज तो ऑफ़िस के बॉस लग रहे हो। डाई वाई करके मूछें भी काली कर लेते तो एक बार गवर्नर भी शरमा जाता। हमने अपनी पैंट वाली प्रॉब्लम बताई कि एक तो उसमें छोटे-छोटे रोशनदान हैं और टाइट इतनी कि कभी भी इज़्ज़त जा सकती है। बाबू रामलाल ने एक दक्ष पुलिस ऑफ़िसर की तरह हमें आश्वासन दिया कि तुम चिंता न करो। हम तुम्हें ज़ेड प्लस से भी ऊपर की सिक्योरिटी देंगे। तुम बीच में रहना हम पाँच प्यारे तुम्हारे इर्द-गिर्द घेरा बना के चलेंगे। अगर कुछ हो भी गया तो सँभाल लेंगे।

किसी तरह वे सब हमें अपनी कार में लोड कर के क्लब में ले गए और वहाँ एक सोफे पर सजा दिया। हिदायत भी दे गए कि उठना नहीं, यहीं जमे रहना वरना भेद खुल सकता है। मुख्य अतिथि से मिलाने के लिए हम अपनी ज़ेड सिक्योरिटी में तुम्हें ले चलेंगे ताकि इज़्ज़त ढँकी रहे।

हाल में लोग वार्म अप होते रहे, गले-वले मिलते रहे, ड्रिंक-विंक हाथ में लिए एक दूसरे में मिक्स होते रहे। वेटर उड़ने वाले हनुमान जी की मुद्रा में इधर से उधर ट्रे लेकर उड़ते रहे पर हमारे पास से ऐसे गुज़र जाते जैसे छोटे स्टेशनों से शताब्दी। कोई हमारी तबियत पूछने लगता तो कोई, बैठा देख घुटने रिप्लेस करवाने की सलाह देता। टॉयलेट तक जाने का रिस्क नहीं ले पा रहे थे। बहुत सी हमउम्र बीवियों का कारवाँ इधर-उधर गुज़रता रहा और हम ग़ुबार देखते रहे। वेटर हाथों में खाने-पीने का सामान हाथों में लेकर ऐसे फुर्र होते जा रहे थे मानों 26 जनवरी की परेड में आए हों।

थोड़ी देर में एक घोषणा हुई और तीनों राज्यपाल एक-एक करके पधारे। सभी लोग उठ-उठ कर अभिवादन कर रहे थे सिवाय हमारे। कईयों ने समझा हम वी. वी. आई. पी. हैं जो इतनी बड़ी हस्तियों के सामने भी खड़े नहीं हुए।

सीनियर सिटिज़न्स का सम्मान समारोह आरंभ हुआ। सब एक-एक करके मंच पर जा रहे थे और सम्मानित हो रहे थे। हमारा भी नाम पुकारा गया। अब धर्म संकट था। कहीं उठते ही सम्मानित होने की बजाए अपमानित होने के चांसेज ज़्यादा ब्राइट लग रहे थे। ज़रा सी कोशिश की पर हिम्मत जवाब दे गई।

एक राज्यपाल महोदय ने हमारी मजबूरी देखते हुए, सारे प्रोटोकोल को तोड़ते -फोड़ते मंच से उतर कर सीधे हमारी ओर मीमेंटो और शॉल लेकर आ गए और खटाक से 'आन द् स्पाट' सम्मानित कर दिया। कैमरों की फलैशें चमकी, सारा असला हमारे इर्द-गिर्द जमा हो गया। मीडिया हम जैसे वरिष्ठ नागरिक को अति सम्मानित जीव समझ बैठा। अगले दिन हर अख़बार के फ्रंट पेज पर हमारी फ़ोटो छपी हुई थी; जिसमें राज्यपाल महोदय की इस बात के लिए बहुत तारीफ की गई थी।

फटी पैंट और निकला हीरो .....जैसे हम खुद को महसूस कर रहे थे।

अब वह ऐतिहासिक पैंट हमारे ड्राइंग रूम की दीवार पर ऐसे टँगी है जैसे पिछले राजा महाराजाओं के महलों में बंदूकें, तलवारें, हिरण या शेर के मुखाटे या फिर आज के दौर में लोग स्मृतिचिह्न, शील्ड या कप सजा लेते हैं।

***

ग़ज़ल

अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लें

कई सपनों के शीशे में जड़ा है
तू आख़िर किन उसूलों पर खड़ा है
मेरा क़द है मेरे साये से छोटा
तेरा साया तेरे क़द से बड़ा है
जो रातों में हुआ था ख़्वाब रौशन
सुबह देखा अँधेरों में पड़ा है
हमारा सच है जो हम जी रहे हैं
तुम्हारा सच दलीलों पर अड़ा है
हमारा क़द उसे लगता है छोटा
कई कंधों पे चढ़कर जो खड़ा है

***

जिसमें चेहरा दिखे तेरे जैसा
हम न देखेंगे आइना ऐसा
पानी-पानी ही सब तरफ है अगर
उठ रहा है ये फिर धुआँ कैसा
तुमने जैसा बना के छोड़ा था
अब कहीं कुछ नहीं रहा वैसा
एक आवाज़ उम्र भर आई
आदमी क्या है गर न हो पैसा
ऐसी आबो-हवा हो तो जिसमें
आदमी रह ले आदमी जैसा

***

तेरा ख़याल अगर दम-बदम नहीं होता
हमारी फ़िक्र का मौसम ये नम नहीं होता
छलक-छलक के बुझा देते हैं जिसे आँसू
वो शोला बुझके भी शोले से कम नहीं होता
तमाम मोड़ निगाहों में कब कहाँ आते
मेरे परों में जो उड़ने का दम नहीं होता
किसी तलाश की हद से गुज़रने वालों को
सफ़र में धूप का कोई सितम नहीं होता
समय का हुस्न निगाहों में भर लिया मैंने
हवा ख़िलाफ़ अगर हो तो ग़म नहीं होता

***

अनिरुद्ध सिन्हा, गुलज़ार पोखर,मुंगेर
(बिहार) 811201
मोबाइल: 09430450098
ईमेल : anirudhsinhamunger@gmail.com

श्रीकृष्ण सरल ने हास्य कविताएँ भी लिखीं

वीरेन्द्र जैन

यह श्रीकृष्ण सरल का जन्म शताब्दी वर्ष है। ठेठ बचपन में जिन लोगों की कविताओं ने रस पैदा किया था उनमें श्री चतुर्भुज चतुरेश, श्री वासुदेव गोस्वामी और श्रीकृष्ण सरल का नाम याद आता है। आज जिन सरल जी को लोग राष्ट्रवादी कविताओं के लिए जानते हैं, उनमें से कम ही लोगों को पता होगा कि सरल जी ने हास्य कविताएँ भी लिखी हैं और उनकी हास्य कविताओं का एक संकलन पिछली सदी के छठे दशक में प्रकाशित हुआ था; जिसका नाम था ''हैड मास्टर जी का पाजामा''। बचपन में मिले इस संकलन की हास्य कविताओं से मिले आनन्द ने भी कविताओं के प्रति मेरे आकर्षण में बढ़ोत्तरी की थी।

पहले आम चुनाव में आरक्षित वर्ग की सीटों के लिए सुपात्र प्रतिनिधि नहीं मिले होंगे इसलिए जो जितने शिक्षित लोग मिले; उन्हें ही कांग्रेस ने टिकट देकर विधायक बनवा दिया था। ऐसे ही एक विधायक थे दतिया निवासी श्री राम दास चौधरी जो उस समय सम्भवत: दो या तीन क्लास तक पढ़े थे। पता नहीं यह बात सच है या झूठ पर सवर्ण जगत् में इसे लोग बहुत मज़े लेकर सुनाते थे कि जब श्री चौधरी टीकमगढ़ जिले की किसी सीट से विधायक चुन कर आए तो उन्होंने लोगों से कहा कि वे एल एम ए (एम एल ए) बन गए हैं। उस समय दतिया में जो दो-तीन दर्जन सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय लोग रहे होंगे उनमें मेरे पिता भी आते थे; क्योंकि उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था और चन्द्रशेखर आज़ाद के सहयोगी रहे थे। मेरे घर में उन दिनों अख़बार आते थे और ज्ञानोदय (पुरानी) आती थी। दद्दा के प्रैस से छपी किताबें भी थीं। श्री राम दास जी हमारे घर भी आते थे क्योंकि उन दिनों हमारा निवास नगर के बिल्कुल बीचों-बीच था। बाद में रामदास जी चुनाव नहीं जीत सके थे किंतु वे सामाजिक रूप से सक्रिय रहना चाहते थे। उन्होंने नगर में एक पुस्तकालय स्थापित करना चाहा जिसमें मेरे पिता ने भी उनका सहयोग किया। पुस्तकालय का नाम अम्बेडकर पुस्तकालय रखा गया था और मेरे घर से भी ढेर सारी पुस्तकें उस पुस्तकालय को उपहार में दी गईं थीं। प्रारम्भ में यह पुस्तकालय बीच बाज़ार में सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्री राम प्रसाद कटारे की दुकान के सामने था।

इस पुस्तकालय में मैं और मेरी बहिन साधिकार पुस्तकें लेने जाते थे और इसी क्रम में हमें श्रीकृष्ण सरल जी की पुस्तक ''हैड मास्टर जी का पाजामा'' को पढ़ने का सौभाग्य मिला था। इसकी अनेक कविताएँ उस समय याद हो गई थीं; जिन्हें स्कूल के कार्यक्रमों में सुना कर लूटी गई वाहवाही से ही वाहवाही का चस्का लगा था। एक कविता की पंक्तियाँ तो अभी तक याद हैं, जिनमें कविता का पात्र अपनी मोटी पत्नी के साथ सिनेमा देखने जाता है और कुछ देर हो जाने के कारण जब सीटें टटोलता हुआ आगे बढ़ता है तो उस घटनाक्रम का चित्रण है-

फिल्म हो गई थी चालू जब पहुँचे चित्र भवन में
अँधियारे में सीटें टटोलते बढ़ते थे विचित्र उलझन में
एक सीट पर दुबले पतले भाई बैठे दब कर
खाली कुर्सी समझ, श्रीमती जी बैठीं उन्हीं पर

वीरेन्द्र जैन
2/1 शालीमार स्टर्लिंग रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास
भोपाल म.प्र. 462023
मोबाइल: 9425674629
ईमेल : virendra@yahoo.com

चिल्लाए वे मरा-मरा मैं, कौन बला है आई

आगे बढ़ कर श्रीमती ने आसन नई जमाई

खाली वार गया लेकिन, कुर्सी का केवल भ्रम था

वे धड़ाम से गिरीं, गिरा मानों यह एटम बम था .....

बाद में यदा कदा उनके बारे में सुनने को मिलता रहा कि उन्होंने देश के महापुरुषों की जीवन गाथाओं को छन्दबद्ध करके अनेक महाकाव्य रचे हैं। वे राष्ट्रीयता के कवि के रूप में पहचाने जाने लगे। किंतु प्रगतिशील, जनवादी कविता की ओर रुझान होने से मेरा ध्यान उनकी कृतियों की ओर नहीं गया।

1995 में मेरी पोस्टिंग भोपाल के बैरागढ़ में मेरे बैंक पंजाब नैशनल बैंक की एक उप शाखा के प्रबन्धक के रूप में हुई। यह उप शाखा एक समाजसेवी संस्था सेवा सदन से जुड़ी कई संस्थाओं, व उनके कर्मचारियों के लिए विशेष रूप से खोली गई थी। संस्था के ही एक पदाधिकारी मेरे बैंक में कर्मचारी भी थे। उन्होंने एक बार संस्था में राष्ट्रीय कवि के आने की सूचना दी तो मैंने नाम जानना चाहा। उन्होंने श्रीकृष्ण सरल जी का नाम बताया तो मेरी पुरानी स्मृतियाँ ताज़ा हो गईं। मैंने उन्हें अपने बैंक में आमंत्रित करने का अनुरोध किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे आए और जब मैंने उन्हें उनकी कृति के साथ जुड़ी स्मृतियों के बारे में बताया तो वे बहुत खुश हुए। वे काफी देर तक रुके, उन्होंने हम लोगों के साथ फ़ोटो भी खिंचवाया। सेवा सदन ने उनकी कृतियों का पूरा सेट भी खरीदा, जिसके लिए उनकी यात्रा थी। इस पीढ़ी के लोगों को अपनी किताबों के प्रकाशन और प्रमोशन में कोई संकोच नहीं होता था। सुप्रसिद्ध लेखक एक्टविस्ट हंसराज रहबर, भगत सिंह के साथी कामरेड शिव वर्मा, और कामरेड सव्यसाची जी भी अपनी किताबें खुद ही बेचते भी थे, पर इनकी किताबें बहुत सस्ती होती थीं जबकि सरल जी की किताबों का सैट बहुत महँगा था जो संस्थाओं के लिए ही होता था।

उनकी स्मृति को नमन।

***

दोहे

अशोक 'अंजुम' के दोहे

मँहगाई ने थामकर हाथों में बंदूक
दुखिया से खुलवा लिया पुरखों का संदूक

***

होरी किडनी बेचता, धनिया बेचे लाज
बाज़ारों की रागिनी, मँहगाई का साज

***

आमदनी तो बढ़ रही, फिर भी रहे उदास
सब चिंतित कैसे बुझे, महँगाई की प्यास

***

थके-थके उत्सव लगें, बुझे-बुझे त्यौहार
ज़रूरतों के क़हक़हे, महँगाई की मार

***

घायल सब आदर्श हैं, सच है मरणासन्न
भरा-भरा याचक लगे, दाता हुआ विपन्न

***

अपनी संस्कृति को लगा, अपसंस्कृति का ज़ंग
ठेके पर जाने लगे, पिता-पुत्र अब संग

***

यह दुनिया बाज़ार है, तोल-मोल कर बोल
वह उतना ही है बड़ा, जितना जिसका मोल

***

वे विराट होते गए, जो थे कल संक्षिप्त
पहले सच के साथ थे, अब मिथ्या में लिप्त

***

क्या उसका व्यक्तित्व है, क्या उसकी औक़ात
पानी पूछे प्यास से, पहले बतला ज़ात

***

राजा जी चिन्तित हुए, बचे किस तरह लाज
नखरे जब दिखला रही, दो कौड़ी की प्याज

***

मरुथल-मरुथल बर्फ है, पनघट-पनघट आग
ग़लत-सही में मत न पड़, भाग यहाँ से भाग

***

राजनीति तेरा हुआ, उफ्! ये कैसा हाल
जो भी मुर्गा बाँग दे उसको करे हलाल

***

राजपथों ने इस तरह, दिखलाए कुछ सीन
जनपथ वाली आँख में, सपनों के कालीन

***

राजनीति की राह में कैसे वाद-विवाद
पल में ज़िंदाबाद हैं, पल में मुर्दाबाद

***

राजनीति के मंच पर, कौवे भी हैं हंस
एक कृष्ण क्या-क्या करे, यहाँ हज़ारों कंस

***

नेता के उत्पात के, ऐसे मिले सबूत
दो दिन में ग़ायब हुआ, पीपल वाला भूत

***

जिसको भी ये मिल गई, खुले उसी के भाग
जैसे अल्लादीन का, कुर्सी हुई चिराग

***

राजनीति ने कर दिया, ऐसा बेड़ा ग़र्क
शेर-श्वान में अन्ततः रहा नहीं कुछ फ़र्क़

***

तेरे-मेरे बीच में, बनने लगी दरार
ये मौसम मतदान का, जादू रचे अपार

***

लोकतंत्र! तू धन्य है, अजब तेरे दस्तूर
आज गधे भी पा रहे, सुविधाएँ भरपूर

***

दिशाहीन सिद्धान्त हैं, आदर्शों को जेल
फैल रही है हर तरफ, जातिवाद की बेल

***

राजनीति से चल रहा, नैतिकता का बैर
कबिरा खड़ा बज़ार में, माँगे सबकी ख़ैर

***

अशोक 'अंजुम', अभिनव प्रयास (त्रैमासिक), स्ट्रीट-2, चन्द्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद), क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
ईमेल: ashokanjumaligarh@gmail.com, मोबाइल: 09258779744

यादों की धरोहर - मुग्गनी

शशि पाधा

सिरहाने रक्खी रहती है यादों की गठरी। जब मन लौटता है वहाँ, जहाँ इसे बाँधना शुरू किया था तो खोल लेती हूँ कभी-कभी। बहुत सी चीज़ें हैं इसमें ...सफ़ेद लट्ठे से बनी बड़ी-बड़ी काली आँखों वाली गुड़िया, कुछ लाल-पीले रिब्बन, लाल वर्क वाली छोटी सी कश्मीरी कांगड़ी, हरिद्वार-इलाहाबाद से लाए हुए लकड़ी के रंग-बिरंगे गोटे, मोतियों की बालियाँ, प्यारी सहेली का दिया मेरा नाम कढ़ा -रुमाल। देखिए न! हूँ न मैं कितनी धनी, यादों की धनी।

उसी गठरी से झाँक रही है मेरी छोटी सी मुग्गनी। आप इसे गुल्लक भी कह सकते हैं या गोलक भी। लेकिन मैं तो इसे मुग्गनी ही कहूँगी क्यूँकि मेरी इससे पहचान इसी नाम से हुई थी।

उन दिनों त्योहारों पर बच्चों को पैसे मिलते थे। मुझे जो याद है आपको डोगरी भाषा में उन पैसों के नाम बताती हूँ। पैसा, आन्ना, दोआन्नी, चौआन्नी, अठन्नी और रुपया। पैसा ताम्बे का होता था और दो तरह का था। एक तो पूरा गोल और दूसरा मोरी वाला। (डोगरी में 'मोरी' यानी सुराख) यानी अगर आप पैसे को बीच में गोल सुराख़ कर दें तो वो मोरी वाला पैसा बन जाता था। राज़ की बात बताऊँ ? इन पैसों की बहुत बरकत थी। एक आन्ने से पूरे के पूरे गोल-गोल, नर्म-नर्म बुड्डी के बाल मिल जाते थे। अब आप पूछेंगे की बुड्डी के बाल क्या होते हैं। चीनी के तारों को गोल-गोल घुमा कर एक बड़ी सी नर्म गेंद का आकार दे दिया जाता था उसे बुड्डी के बाल कहते थे। आज के जमाने में बच्चे जिसे कॉटन कैंडी कहते हैं न, वहीईई....।

इससे पहले कि मेरी उम्र के सभी लोगों के मुँह में पानी आ जाए, मैं आपसे अपनी मुग्गनी की पहचान करा देती हूँ। दिवाली पर हम बच्चों को उपहार मिलते थे। मेरे स्नेही मामा ने मुझे मिट्टी की एक मुग्गनी दी और कहा, ''गुड्डी! अब अपने सारे पैसे इसमें जमा करना।'' यानी पैसे जोड़ने और बचाने की पहली सीख शायद पाँच -छह साल की आयु में

Shashi Padha, 10804, Sunset hills Rd, Reston Virginia 20190
मोबाइल: 203-589-6668
ईमेल: shashipadha@gmail.com

ही मिल गई थी।

मेरी मुग्गनी मिट्टी की थी और एक सुराही की शक्ल की थी। उसके सिर के बीचो-बीच एक पतला सा सुराख था जिसमें हम पैसे डाल सकते थे। चाक पर मिट्टी के घड़े आदि गढ़ने वाले कुम्हार ही इसे बड़ी सोच से बनाते थे क्यूँकि इसमें पैसे डाल तो सकते थे, निकाल नहीं सकते थे।

मुग्गनी मिलने पर मैं इतनी खुश थी कि सोते जागते बड़ी ही सावधानी से इसे किसी सुरक्षित जगह पर ही रखती थी। शुरू-शुरू में तो बड़े चाव से सबने आन्ना-दुआन्नी दी और मैंने उन पैसों को मुग्गनी की भेंट चढ़ा दिया। कभी उसे छनका के देखती तो पैसों की खनक सुन कर तन-मन नाचने लगता। कभी दादी माँ जिसे मैं प्यार से 'बेबे' कह के पुकारती थी, अपनी ओढ़नी की गिरह में बँधे पैसे गिन रही होतीं तो मैं बड़प्पन से भीगे शब्दों में कहती, ''बेबे! कम तो नहीं हैं आपके पास पैसे ? चाहिए तो मैं दे दूँ ?''

बेबे बड़े प्यार से गले लगाती और कहती, ''तू भागों वाली है गुड्डी। प्रभु करे तेरी मुग्गनी हमेशा भरी रहे।'' नहीं जानती थी तब कि 'भाग' क्या होता है। लेकिन यह जानती हूँ कि उनके आशीषों के कारण मेरे भागों की मुग्गनी हमेशा भरी रही।

अब एक समस्या खड़ी हो गई। त्योहारों का सिलसिला ख़त्म हो गया और मुग्गनी तो आधी खाली ही रही। बहुत देर प्रतीक्षा की कि कहीं से पैसे मिलें लेकिन कुछ ख़ास मौका हो तो मिलें न। अभी तक मैं ख़ास मौके की प्रतीक्षा कर ही रही थी कि जालंधर से छोटे मामा मिलने के लिए आ गए। मामा हमारे लिए बहुत से उपहार लाए। हम सब उनके आने पर बहुत खुश थे। पता नहीं मेरे भोले से मन में क्या विचार आया कि मैं झट से अपनी मुग्गनी लेकर मामा जी के पास गई और कहा, ''यह देखिए मेरी नई मुग्गनी। इसमें मैं पैसे डालती हूँ।''

मामा ने बिना देर किए अपनी जेब से सारी रेज़गारी निकाली और एक-एक कर के मेरी मुग्गनी के पतले से होठों में पैसे डालने शुरू किए। जब पैसा अंदर डल जाता तो मैं ताली बजा कर नाचती और जब मुँह में फँस जाता तो उत्सुकता से मामा की उँगलियों की ओर देखती रहती। मेरे जालंधर वाले मामा बहुत धनी नहीं थे, लेकिन उनका मन

राजाओं सा था।

उस दिन मेरी मुग्गनी भी आधी से ज़्यादा भर गई। अब मेरे नन्हें-नन्हें पाँव धरती पर पड़ नहीं रहे थे, उड़ रहे थे।

अब तो यह खेल कई बार खेला। उधमपुर से मौसा जी आए या बड़ी ब्याही बोबो ससुराल से आई। मैं अपनी मुग्गनी उनके पास ज़रूर ले जाती। कभी माँगा तो नहीं कुछ लेकिन, शायद उन दिनों बच्चों को पैसे देना हमारी संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण भाग था। याद है जब भी कोई संबंधी घर में कुछ दिनों के लिए रह कर जाता तो विदा के समय बच्चों के हाथ में कुछ न अवश्य थमाता। उन दिनों बहुत से उपहार लाने या देने का रिवाज़ नहीं था। प्लास्टिक तो था नहीं। खिलौने या तो मिट्टी के या बाद में पोर्सलीन के बनते थे। मेरे पास तो केवल सौंधी सी ख़ुश्बू वाली मिट्टी की मुग्गनी ही थी।

दिवाली पर हमारे यहाँ एक प्रथा थी। लक्ष्मी पूजा के बाद पूजा का दीपक हम अपने पिता के सामने रखते थे। पूजा के बाद पिता आशीर्वाद में एक रुपया या दो रुपये का नोट हमें देते थे। फिर उस नोट को मुग्गनी में डालने की जद्दोजेहद शुरू हो जाती थी। मुग्गनी का मुँह छोटा, पतला और नोट को उसमें डालने के लिए दो-तीन तहों में मोड़ा जाता और फिर बड़ी सावधानी से उसे मुग्गनी के सुपुर्द कर दिया जाता। नोट कागज़ी होता था, उसकी ख़नक तो थी नहीं। इसलिए उसे पाकर कोई ज़्यादा खुशी नहीं होती थी।

एक दिन की बात बताऊँ। हमारे घर में आँवले और गाजर का मुरब्बा बनता था। इस मुरब्बे को बड़े-बड़े मर्तबानों में भर कर अलमारी में रख दिया जाता था। इसे हम जूठा हाथ न लगा दें, हमें मुरब्बे को स्वयं मर्तबान से निकाल कर खाने की अनुमति नहीं थी। बेबे दे या माँ दे। उसी अलमारी में मेरी मुग्गनी भी पड़ी रहती थी। उन दिनों न तो बच्चों का अलग कमरा होता था न अलमारी। बस एक स्टोर की अलमारी में सभी अच्छी-अच्छी चीज़ें रखी रहती थीं। मेरे लिए तो मेरी भरी-भरी मुग्गनी सब से कीमती चीज़ थी। मुरब्बे के मर्तबानों के पीछे मैंने उसे सहेज कर रख दिया था। एक दिन कुछ पैसे डालने के लिए मुग्गनी उतारने लगी तो मुरब्बों पर नज़र पड़ी। मन ललचा गया। स्टूल पर चढ़ कर मर्तबान का ढक्कन खोला और गाजर हाथ में लेकर वहीं स्टूल पर बैठे-बैठे खा गई। जिह्वा और मन तृप्त हुआ और बड़े चाव से मर्तबान के पीछे पड़ी मुग्गनी उतारने लगी। पता नहीं स्टूल हिल गया या चाशनी से सना मेरा हाथ मुग्गनी से चिपक गया, मैं मुग्गनी समेत स्टूल से गिर गई। अपने आस-पास देखा तो टूटी मुग्गनी के मिट्टी के टुकड़ों के साथ अनगिनत आन्ने, दुआन्नियाँ, चवन्नियाँ बिखरी पड़ी थीं। कहीं-कहीं से कोई नोट भी झाँक रहा था।

मैं बहुत डर गई थी और सुबकने लगी थी। पता नहीं गिरने से चोट का दर्द था या मुग्गनी के टूटने का। पर मैं बहुत रोई थी। बेबे ने बड़े प्यार से सारे पैसे इकट्ठे किए, रुमाल में बाँधे और कहा, ''देख, मिट्टी की चीज़ है, टूट गई। चीज़ें टूटने पर रोते नहीं।''

चीज़ें टूटने पर रोते नहीं? यह बात तो मुझे बहुत सालों के बाद समझ आई। उस दिन तो मैं अपनी सब से प्रिय धरोहर के टूटने से खुद भी टूट गई थी।

बहुत दिनों के बाद मुझसे पिता ने पूछा, ''गुड्डी! तुझे नई मुग्गनी ला दें ? अब तो बाज़ार में प्लास्टिक की मुग्गनी भी आ गई है। अब नहीं टूटेगी।''

''न! नहीं चाहिए थी मुझे नई प्लास्टिक की मुग्गनी।'' छोटा सा उत्तर था मेरा।

या तो मैं अपनी प्यारी मुग्गनी को भूली नहीं थी या.....

मैं बड़ी हो रही थी।

***

इन्हें प्रवासी कैसे कहूँ?

मधु अरोड़ा

मेरे लिए 'प्रवासी साहित्य' शब्द हमेशा असमंजसभरी स्थिति पैदा कर देता है। यदि व्यापक तौर पर देखा जाए तो हम सभी प्रवासी हैं। फ़र्क़ बस एक ही है कि हमारे जो रचनाकार सात समुद्र पार चले गए, उन्हें विशेष रूप से 'प्रवासी' नाम दिया गया। ठीक है, यह एक सुविधा के तहत हुआ पर 'प्रवासी साहित्य' शब्द आज भी मेरे गले में हड्डी बनकर अटका है। मेरे हिसाब से लेखन तो लेखन है। वहाँ हिन्दी में लिखे साहित्य को 'प्रवासी' शब्द क्यों? जब-जब हिन्दी साहित्य के तथाकथित प्रवासी साहित्य पर कुछ लिखने बैठी हूँ, ख़ुद को एक चक्रव्यूह में घिरा पाया है।

तथाकथित प्रवासी रचनाकार सभी देशों में रचना कर्म कर रहे हैं। सोचा कि इंटरनेट पर अमेरिका में बसे अपने रचनाकारों के लेखन को पढ़ा जाए। अब वहाँ पूरा साहित्य तो उपलब्ध नहीं है सो एक-एक कहानी खोजी। इंटरनेट उपलब्ध साहित्य के आधार पर पाया कि अमेरिका में तो लंबे समय से सशक्त रचनाकारों का एक बड़ा वर्ग उपस्थित है और निरंतर रचनाकर्म में लगा हुआ है। अमेरिका के हिन्दी सहित्य में तीन नाम उल्लेखनीय हैं। वे हैं- उषा प्रियंवदा, सुनीता जैन ओर सोमा वीरा। साठ के दशक में इन रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य को उल्लेखनीय रचनाएँ दीं। इनकी रचनाएँ जीवन शैली की भिन्नता, सोच का वैभिन्य और भाषागत भिन्नता एक किस्म का 'कल्चरल शॉक' देती रही। इस लेखिका त्रयी ने न केवल भारतीय साहित्य को समृद्ध किया बल्कि उसका परिचय ऐसे कथा लोक से कराया जो इससे पहले हिन्दी साहित्य में अनजाना था। सत्तर के दशक में अमेरिका आए अन्य रचनाकार हैं- कमलादत्त, वेदप्रकाश बटुक, सुषम बेदी, इन्दुकान्त शुक्ल, और उमेश अग्निहोत्री और अस्सी के दशक में सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अनिल प्रभा कुमार, उषा देवी कोल्हटकर, विशाखा ठाकुर, सुधा ओम ढींगरा, तथा अन्य रचनाकार। अमेरिका में 2000 के दशक में इलाप्रसाद, अमरेन्द्र कुमार आदि हैं और इसी दशक की रचना श्रीवास्तव उदीयमान लेखिका हैं जिनकी बाल-साहित्य पर ख़ासी पकड़ है।

अमेरिका और कैनेडा में बस गए हमारे देश के जिन रचनाकारों की कहानियाँ मैंने पढ़ीं, निश्चित रूप से उनकी रचनाओं में विविधता है, वहाँ का परिवेश, वहाँ का रवैया, स्थानीय लोगों का बेग़ानापन खुलकर आया है। बेशक़ उनकी कहानियों के पात्र भारतीय हैं, नाम भारतीय हैं पर वे अमेरिका के माहौल में एडजस्ट करने के लिए लगातार कोशिश कर रहे हैं। जीवन मूल्य, परंपराएँ बदल रही हैं और वे उन बदलते जीवन मूल्यों से समझौता करने की प्रक्रिया में खुद को झोंक रहे हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'संबंध' अमेरिकन परिवेश की कहानी है जहाँ कोई आसानी से वैवाहिक बंधन में बँधने को तैयार नहीं होता। कहानी का नायक अस्पताल का एक सर्जन है जो विवाहित है और श्यामला से बहुत प्यार करता है। श्यामला भी उससे प्यार करती है, उसकी ज़रूरतों को समझती है। उसके साथ हमबिस्तर भी होती है। जब अस्पताल में कोई मरीज़ मर जाता है या कोई मरीज़ अच्छा हो जाता है तो वह सर्जन श्यामला से अपनी खुशी और दु:ख शेयर करता है। एक बार जब सर्जन श्यामला के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है तो वह साफ इंकार कर देती है, 'क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते, प्रेमी, मित्र, बन्धु। मैं तो

मधु अरोड़ा
एच-1/101, रिद्धि गार्डन
फिल्म सिटी रोड, मालाड पूर्व
मुंबई- 400097
मोबाइल: 09833959216
ईमेल: shagunji435@gmail.com

कुछ भी नहीं माँगती तुमसे।' श्यामला वहाँ की ऐसी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो किसी एक व्यक्ति से बँधना नहीं चाहतीं। श्यामला की शर्त केवल यही है कि वे दोनों एक दूसरे पर प्रतिबंध नहीं लगाएँगे। कोई डिमांड नहीं करेंगे, दोनों में से कोई भी एक-दूसरे के प्रति ज़िम्मेदार नहीं होगा। जब भटकन की चाह बढ़ जाएगी, तब वह अपना सूटकेस उठाकर चल देगी। उषा जी की यह कहानी मन को तो परेशान करती ही है, लिव-इन-रिलेशनशिप के खोखलेपन का पर्दाफाश करती है।

सुषम बेदी की कहानी 'अजेलिया के फूल' उस अंग्रेज़ी परिवेश की कहानी है जहाँ मिस्टर निक मिलर भारत से भारतीय पत्नी तो ले आते हैं पर अपने समाज में स्वीकृति नहीं दिला पाते। मिसेज़ मिलर के शब्दों में, 'जब भी मैं निक के साथ इन अभिजात अमरीकियों के घर जाती हूँ तो कहता कोई कुछ नहीं, पर जैसे उन आँखों में एक भाव रहता है जैसे कि मैं निक की कोई ग़लती हूँ।' आगे वे कहती हैं, 'अब कुछ अजीब सा हो रहा है, ऐसा लगता है मानों वह फिर से अपनी पहचानी दुनिया में जाना चाहता है। घर मेरे लिए आरामदेह माहौल का ही नाम है, जिसे यों कहीं भी खोजा जा सकता है और कहीं भी खोया.....।' ये चंद वाक्य ही इस बात का द्योतक हैं कि वहाँ अपनी आज़ादी प्रमुख है। 'शादी' शब्द उनके लिए कोई मायने नहीं रखता। अजेलिया के फूल का बहुत ही सटीक प्रयोग किया है जैसे यह फूल हर जगह खिल जाता है, वैसे ही वहाँ रिश्ते बदलते, जीवनसाथी बदलते देर नहीं लगती और वे खुशी-खुशी अपने जीवन साथी को छोड़कर दूसरा साथी तलाश लेते हैं।

उमेश अग्निहोत्री की कहानी 'एक काली रात' अमेरिका के उस परिवेश और माहौल की कहानी है जहाँ काले लोग रहते हैं। अमित का दोस्त हबीब अपने परिवार के साथ बाल्टीमोर रहने चला गया है जो काले लोगों की बस्ती है। अमित अपने पापा के साथ अपने दोस्त से मिलने बाल्टीमोर जाता है। दोनों दोस्तों के पिता पहली बार मिलते हैं औपचारिक बातें करते हैं पर कोई किसी के काम के बारे में नहीं पूछता। लेखक के अनुसार, 'मेरी तरह शायद वे भी अमरीकी संस्कृति का अंग बन चुके थे जिसमें कोई किसी से यह नहीं पूछा करता कि आपका रोज़गार क्या है। बात यह सोचकर की जाती है कि तुम व्यक्ति से मिल रहे हो, उसके रोज़गार से नहीं।' अमित के पिता जब चलने को हुए तो हबीब के पिता इदरीसिया ने कहा कि उनके सम्मान में कुछ मित्रों को आमंत्रित किया है और तब अमित के पिता ने महसूस किया कि कालों के साथ उनके व्यावसायिक परिवेश में मिलना और यहाँ उन्हीं के परिवेश में मिलना, दोनों बातों में कितना फ़र्क़ है। तो इस तरह बाल्टीमोर से वापिस आते समय अमित बहुत खुश था और उसके पापा गोरों के अपार्टमेंट से यहाँ की तुलना करने लगे, 'दूर-दूर बने मकान, दरवाज़े बन्द, हर घर दूसरे से अपरिचित, किसी का किसी से मिलना-जुलना नहीं। जबकि वहाँ लोग किस तरह साथ रहते हैं... उनके घरों के दरवाज़े किस तरह खुले रहते हैं... दिलों के दरवाज़े भी...' आगे वे कहते हैं, 'बाल्टीमोर के कला संग्रहालय में लगा गुस्ताव कूरबे का चित्र याद आया, 'घने पेड़ों के साथ-साथ एक नदी', एक काली तस्वीर, लेकिन मुझे लगा कि बात उस तस्वीर को देखने की नहीं, दरअसल उसमें जीने की है.. उसे जीने की है।

कैनेडा के सुमनकुमार घई की कहानी 'सुबह साढ़े सात बजे तक' ऐसे नौकरीपेशा पति-पत्नी की कहानी है, जहाँ पति की नौकरी ख़त्म हो जाने पर वह किस प्रकार हाशिये पर चला जाता है और किस तरह परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। इसी का बेबाक़ लेखा-जोखा है यह कहानी। पति राजीव की नौकरी ख़त्म हो जाने के बाद पत्नी मीना ने सलाह दी, 'आज के बाद तुम घरेलू पति और मैं कमाऊ पत्नी।.... मैं मज़ाक नहीं कर रही, सीरियस हूँ... बस, आज से तुम केवल मेरे पति और घरेलू पति... यही तुम्हारी नौकरी और यही तुम्हारी पहचान।' राजीव एतराज़ तो करता है पर कब वह घरेलू पति बन जाता है उसे ही पता नहीं चलता। तो यह है पश्चिमी समाज और भौतिक सुविधाओं के आदी लोगों की विडंबना। वहाँ अपने 'स्व' को मारकर ही ज़िंदा रहा जा सकता है। एक मशीनी ज़िंदगी की बहुत ही मार्मिक कहानी है।

कैनेडा की ही स्नेह ठाकुर की कहानी 'प्रथम डेट' एक ऐसे पति-पत्नी की कहानी है जहाँ पति अनिल स्वभावगत फ्लर्टर है और इसी के चलते वे अपनी पत्नी निधि को छोड़कर अपने से आधी उम्र की लड़की जूली के साथ रहने लगते हैं। निधि के जीवन में पियूष आते हैं और वे निधि को डेट के लिए आमंत्रित करते हैं। निधि बहुत ही पशोपेश की स्थिति में है और अपनी बेटी अदिति से कहती है, 'तीन सिज़ेरियन बच्चों के बाद माँसपेशियाँ कसाव में आने का नाम नहीं ले रहीं।....शादी से पहले कभी डेट नहीं की और शादी के बाद तो डेट का प्रश्न ही नहीं उठता, तुम्हारे पिता ही सब कुछ। आज ज़िंदगी में पहली बार डेट पर जा रही हूँ। समझ नहीं आता, उनसे क्या कहूँगी। कैसे बिहेव करूँगी।'

आगे निधि कहती है, 'शोषण और शोषित का सिलसिला अनंत था, उसके नए सिरे खड़े हो जाते थे, नित नए संबंध, ताल्लुक उभर आते थे। हर अफेयर धीरे-धीरे दिल को नम व जड़ करता गया।... मेरे जीवन में तब ज़्यादा अलगाव आने लगा और इससे परिवार भी प्रभावित होने लगा तब उस दिन मैं जान गई कि अब मुझे इस दलदल से निकलना ही पड़ेगा और उसी दिन से शुरू हो गया था आत्मसम्मान को पाने का अनंत सफ़र।' आज जब उनकी ज़िंदगी में पियूष ने प्रथम डेट का आमंत्रण दिया तो तमाम असमंजस की स्थितियों से उबरने के बाद निधि ने पाया, 'दर्पण से झाँकती अपनी आँखों को देख मैं चौंक पड़ी, उनमें प्रथम डेट का भय नहीं था, वरन थी आशा की किरण।' स्नेहजी ने अपनी इस कहानी में नारी की घुटन, अच्छे-बुरे के बीच जूझती स्थिति में निर्णय न लेने पाने की मनःस्थिति और अंततः निर्णय लेने की क्षमता को बड़े ही सलीके से निरूपित किया है।

विदेशों में ग़रीबी की रेखा से नीचे के लोगों को कूपन के रूप में सरकार से मिलनेवाली वित्तीय सुविधा, होमलेस लोगों को मुफ्त में मिलने वाला भोजन और उनके लिए रात बिताने के लिए शेल्टर होम जैसी सुविधाओं ने इन लोगों को किस तरह लालची और निष्क्रिय बना दिया है इसी का जीता जागता लेखा जोखा है- सुधा ओम

ढींगरा की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है'। इस कहानी के पीटर और जेम्ज़ के चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने उस सारे परिवेश को बड़े ही सूक्ष्म तरीके से पाठकों के सामने रखा है। जेम्ज़ के अनुसार, 'सरकार को कुछ करना चाहिए, हम जैसे बेरोज़गार, बेघर लोगों के लिए नि:शुल्क बसें चलानी चाहिए।' सरकार कूपन इस आशय से देती है कि ग़रीब भूखे न रहें, पर ये तथाकथित ग़रीब इन कूपनों को आधे-पौने दामों पर बेचकर अपने लिए लड़की और शराब का इंतज़ाम करते हैं। जेम्ज़ के अनुसार, 'भाई, महँगाई बहुत हो गई है, सस्ती से सस्ती लड़की भी पचास डॉलर से कम में नहीं चलती, अभी और डॉलर चाहिए।' लेखिका ने सरकार से ग़रीबों को मिलनेवाली सहायता के दुरूपयोग को बहुत नज़दीक से देखा है और पाठकों के सामने रखा भी उसी तरीके से है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'अख़बारवाला' पाठकों को नि:स्तब्ध कर देनेवाली कहानी है। उन्होंने इस कहानी के माध्यम से विदेश के लोगों की स्वकेन्द्रिता, किसी के दुख-सुख में शामिल न होने की प्रवृत्ति को व मानसिकता को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से अपनी क़लम से उकेरा है। भारत से ब्याहकर अमेरिका में बसी जया वहाँ के लोगों के इस बेरुख़े, संवादहीन और असंवेदनशील व्यवहार को पचा नहीं पा रही। अपने पड़ोस के एक बूढ़े व्यक्ति की मौत के विषय में पड़ोसी रिक से पूछती है तो वे मृतक के बारे में बड़ा बेहूदा सा उत्तर देते हैं- 'यह उनका व्यक्तिगत मामला है।' यह सुनकर जया की मानों शिराएँ जम सी जाती हैं और वह यह सोचने पर विवश हो जाती है, 'आज तक वह सोचती थी कि शायद परदेसी होने के कारण ये लोग हमसे नहीं जुड़ पाते। लेकिन इनका तो आपस में भी जुड़ाव नहीं है।' जया इस बात को स्वीकार ही नहीं कर पाती कि विदेशों में मौत को भी इतने तटस्थ रूप में देखा जा सकता है। किसी की आँखों में दो आँसू भी नहीं। इन्हें क्या कोई दु:ख दर्द नहीं व्यापता। जया के शब्दों में, 'ये लोग दु:ख में हमारी तरह चीखते-चिल्लाते नहीं। आँसू तक विशेष हिसाब से निकालते हैं। यहाँ जीवन को केवल जीवन समझकर जिया जाता है, वह भी अपने लिए...केवल अपने लिए। ठीक, स्वस्थ्य, भरपूर सुविधाओं से भरा-पूरा होना- जीने की अनिवार्य शर्त है। उसके बाहर सब मिथ्या है।' सुदर्शन जी की यह कहानी बहुत ही मार्मिक है और पाठकों को विदेशों की वस्तुस्थिति से परिचित कराती है। विदेश में हर इंसान को ख़ुद में ही बन्द रहना होता है। न एक-दूसरे से बोलना न चालना। फिर भी लोग वहाँ रहने को अभिशप्त हैं, इसे विडंबना ही कहा जा सकता है।

पुष्पा सक्सेना की कहानी 'पीले गुलाबों के साथ एक रात' लिली और जेम्स के असफल प्रेम की कहानी है। जेम्स रिसर्च के लिए अमेरिका जाता है। रिसर्च पर जाने से पहले लिली की मम्मी और जेम्स की मम्मी दोनों की सगाई कर देती हैं। अमेरिका में जेम्स के जीवन में कैथरीन नामकी क्रिश्चियन लड़की आती है और वे वहाँ शादी कर लेते हैं। लिली अवाक् रह जाती है। पाँच साल बाद जब जेम्स अपनी पत्नी और बेटे के साथ भारत वापिस आता है। लिली जम्मू में कॉलेज में नौकरी जॉइन कर लेती है और एक दिन अचानक ख़बर आती है कि जेम्स को दिल का दौरा पड़ा है और उसने ख़्वाहिश व्यक्त की है कि उसका अन्तिम संस्कार हिन्दू विधि से किया जाए और लिली को ज़रूर सूचित किया जाए। यह सुनकर लिली का मन अन्दर तक भीग जाता है और वह जम्मू से दिल्ली और दिल्ली से इलाहाबाद जाने के लिए रवाना हो जाती है। ठीक-ठाक कहानी है। लेखिका ने कई जगह क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है जिससे कहानी के प्रवाह में रुकावट आती है।

इलाप्रसाद की कहानी 'हीरो' में एक बात खुलकर सामने आई है कि विदेशों में शादी टिक जाए, यह बहुत बड़ी बात होती है और इन तथाकथित देशों में यही संबंध टिक नहीं पाता। यहाँ गर्लफ्रैण्ड/बॉयफ्रैंड का रिवाज़ है, अनाम रिश्तों की दोस्ती का रिवाज़ है। इन सब बातों से रू-ब-रू होते हुए रवि की पत्नी कला किसी से भी मिलते समय परिचय देती है- 'आय म रविज़ वाइफ।' और महसूसती है सामनेवाले की आँखों का फ़र्क़। चकित होती है कि अमेरिका के वर्जनाहीन समाज में भी यह मायने रखता है। सम्मान पत्नी के ही हिस्से में आता है। वहाँ वैवाहिक जीवन में स्थायित्व दुर्लभ वस्तु हो गई है, शायद इसलिए भी। वह रवि की पत्नी है, कित्ती बड़ी बात! इस कहानी के अन्य दो पात्र जिम और लिंडा अपने अपने पति/पत्नी को छोड़ चुके हैं और वर्तमान में ये दोनों मित्र के रूप में साथ रहना तो चाहते हैं पर एक दूसरे के बच्चों की ज़िम्मेदारी नहीं उठाना चाहते। फलत: वे पुन: अलग-अलग रहने लगते हैं और एक दूसरे का ध्यान रखते हैं। मेरे ख़याल से अमेरिका जैसे विकसित देशों में जो अपनी स्वायत्तता का सवाल है वह वैवाहिक संबंधों को चलने ही नहीं देता। वे अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग बजाने की जीवन शैली में विश्वास रखते हैं और वैसे ही जीते भी हैं। इसे इलाप्रसाद ने बख़ूबी अपनी कहानी में दर्शाया है।

तो वहीं दूसरी ओर अमरेन्द्र कुमार की कहानी 'चिड़िया' है जो किसी भी दूसरे देश में इंसान के अकेलेपन की कहानी है। इस कहानी का नायक अमेरिका में अकेला है। ख़ुद को व्यस्त रखने के लिए शोध कार्य करता है, लायब्रेरी में समय व्यतीत करता है और अन्तत: उसके अकेलेपन की साथी एक चिड़िया बनती है याने प्रकृति। विदेशों में इंसान तो जैसे बस मशीनी जीवन जीते हैं। नायक के बीमार पड़ने पर चिड़िया ही उसके पास आती है और उसके स्पर्श से वह महसूस करता है, 'यहाँ स्नेह और अपनेपन का असर इतना ज़्यादा था कि मैं अपने आपको ज़ल्दी ही बेहतर महसूस करने लगा।'

इन कहानियों को पढ़ने के बाद मुझे यही लगा कि अमेरिका के हिन्दी रचनाकारों की रचनाओं में अमेरिका धड़क रहा है। वे वहाँ मौज़ूद हैं, साँस ले रहे हैं, उनकी कहानियों के पात्र मुख़र हैं। वे स्थानीय समस्याओं का सामना कर रहे हैं ना कि तिकड़में भिड़ाते हुए समय ज़ाया कर रहे हैं। वे अपने लिए इज़्ज़तदार जीवन जीने के लिए प्रयासरत हैं। ये कहानियाँ नॉस्टेल्जिक होकर भी वहाँ के माहौल में ख़ुद को ढालने की प्रक्रिया में हैं। ये कहानियाँ हमें भविष्य में हिन्दी की बेहतर कहानियों की सौग़ात के लिए आश्वस्त करती हैं।

***

नए लेखक द्वारा लिखी गई पहली कहानी का यहाँ प्रकाशन किया जाएगा। इस अंक में प्रस्तुत है अभिषेक मेवाड़ा की पहली कहानी 'उसका युद्ध'।

उसका युद्ध

अभिषेक मेवाड़ा

रविवार, पूरे सप्ताह की जी तोड़ मेहनत से कमाया हुआ दिन। रविवार का दिन मेरे लिए हमेशा से ही खास होता है। यही वह दिन होता है जब दुनियादारी की भागदौड़ और तनाव से दूर एक दिन मैं सिर्फ अपने लिए जीता हूँ। देर तक निश्चिंतता से सोना, अपने पसंदीदा लेखकों की पुस्तकों में सारा दिन खोए रहना। कभी सर ज्येफ्री आर्चर के साथ रोमांचक सफ़र पर निकलना तो कभी अगाथा क्रिस्टी के साथ कोई अनसुलझी मर्डर मिस्ट्री सुलझाना। और कुछ नहीं तो मुंशी प्रेमचंद के साथ सर्वहारा वर्ग की पीड़ा पर चुपचाप आँसू बहाना। आम दिनों में यह सब कहाँ मुमकिन हो पाता है।

वो रविवार भी कुछ ऐसा ही था। जाड़ों की शुरूआत हो चुकी थी। पिछले सप्ताह की तमाम मुश्किलों और परेशानियों को पीछे छोड़कर सूरज चढ़ने तक सोता रहा। अचानक बच्चों की आवाज़ों से नींद खुली तो ध्यान आया कि आख़िर आज उनका भी रविवार है। दीवार पर टँगी घड़ी पर नज़र डालने पर पाया कि सुबह के नौ बज चुके थे। दिन भर के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाते हुए मैं धीमे कदमों से ड्राइंगरूम में पहुँचा। टेबल पर रखे अंग्रेज़ी अख़बार को उठाकर देश-दुनिया की ख़बरें जानने की उत्सुकता लिए सोफे पर बैठा ही था कि अचानक महसूस हुआ जैसे एक जोड़ी आँखे मुझे घूर रहीं हैं। गर्दन घुमाकर देखा तो वह खिड़की पर खड़ा मुझे ही घूर रहा था। वो मैला-कुचैला, मरियल सा लड़का। उम्र यही कोई तेरह-चौदह साल। गहरा रंग और ठिगना बदन। उसके दुबले-पतले शरीर पर लटके हुए चिथड़ों को कपड़े कहना शायद ठीक न होगा। उसके साधारण से चेहरे पर अगर कोई बात ग़ौर करने लायक थी तो वो थी उसकी बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें व उसके होंठो पर छलकती निश्छल मुस्कान। उसकी आँखें शरीर को चीरकर जैसे आत्मा तक उतरती जा रही थीं। उसके चेहरे पर छाई मुस्कान जैसे मेरी अभिजात्यता का मखौल उड़ा रही थी।

एक पल को सोचा कि उसे डपटकर भगा दिया जाए, परन्तु उसकी आँखों की चमक व उसके चेहरे पर छाई बेपरवाह मुस्कान ने ऐसा करने से रोक दिया। वो उसी बेपरवाही से मेरे ड्राइंगरूम का निरीक्षण करता रहा। वैसे तो हम दोनों के बीच सिर्फ एक खिड़की थी लेकिन हम दोनों जानते थे कि यह फ़ासला सिर्फ एक खिड़की का ही नहीं था। यह फ़ासला था आर्थिक असमानता और कभी खत्म न होने वाले वर्ग संघर्ष का। मेरे दिमाग में कई सवाल मँडरा रहे थे। कौन है ये लड़का? कहाँ से आया होगा ? मैं उन लोगों में से हूँ जो हर इंसान

अभिषेक मेवाड़ा
नारायण दास कम्पाउंड
सीहोर टॉकीज़ चौराहा
सीहोर, मप्र 466001
मोबाइल: 9993007820
ईमेल: abhishekmewada80@gmail.com

की कहानी को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। मेरी इसी उत्सुकता की वजह से लोग अक्सर असहज हो जाते हैं। मैं अभी यह सोच ही रहा था कि पत्नी की आवाज से मेरी तंद्रा टूटी। ''बेचारा बेघर लड़का है।'' पत्नी ने मुझे चाय की प्याली पकड़ाते हुए कहा। ''पिछले कई दिनों से कॉलोनी में दिखाई दे रहा है। अग्रवाल साहब के खाली प्लॉट पर कब्ज़ा जमा रखा है। पूरा दिन कचरे के ढेर से चीज़ें ढूँढ़ता रहता है और रात को अग्रवाल साहब के प्लॉट पर ही सो जाता है।'' मैंने खिड़की की तरफ देखा तो वहाँ अब कोई नहीं था। ''हम्म'' मैंने एक गहरी साँस ली और गर्म चाय की चुस्कियाँ लेते हुए अख़बार में खो गया।

दोपहर होते-होते मैं उस लड़के के बारे भूल चुका था। और जैसा कि हर रविवार को होता है, मैंने अपनी लायब्रेरी से एक किताब उठाई और उसे लेकर बालकनी में रखी कुर्सी पर जा बैठा। पत्नी ने बालकनी को अपनी पसंद के फूलदार पौधों से सजा रखा है। एक छोटा सा कॉफ़ी टेबल, दो कुर्सियाँ व एक स्टूल। कुल मिलाकर मेरे घर की बालकनी मेरी पसंदीदा जगह है जहाँ मैं बेरोकटोक अपने पढ़ने का शौक पूरा कर सकता हूँ। अपने पैरों को सामने पड़े स्टूल पर रखकर आराम से पढ़ना आरंभ किया। वो किताब मुंशी प्रेमचंद का कथा संग्रह थी। कहानी का शीर्षक था ''पूस की रात''। मैं पूरी तल्लीनता से उस कालजयी रचना में डूबा हुआ था। कहानी के मुख्य पात्र हल्कू को जानते-समझते अचानक जैसे बिजली सी कौंधी और सुबह खिड़की से झाँकते उस लड़के का चेहरा आँखों के सामने घूम गया। जितना मैं उस चेहरे को अपने अवचेतन मस्तिष्क से बाहर धकेलने की कोशिश कर रहा था, उतना ही वह मेरी चेतना पर हावी होता जा रहा था। अब मेरा मन उस किताब से उचट चुका था। काफी देर की जद्दोजहद के बाद आख़िरकार मैंने हथियार डाल दिए। पत्नी हमेशा की तरह किचिन में व्यस्त थी और बच्चे अपने खेल में मग्न थे। मैं चुपचाप पैरों में चप्पल डालकर अग्रवाल साहब के प्लॉट की ओर चल दिया। अग्रवाल साहब का प्लॉट मेरे घर से कुछ दूरी पर है। और जैसा कि इस देश में हर खाली जगह की नियति होती है वही स्थिति उस प्लाट की भी थी। जी हाँ बिल्कुल ठीक समझे। अग्रवाल साहब का प्लॉट भी कॉलोनी के कूड़ा-कचरा संग्रहण के काम में आता था, जिसे कुछ अन्तराल के बाद नगरपालिका की कचरा गाड़ी भरकर ले जाती थी।

गहरी सोच में डूबा हुआ धीमे कदमों मैं उस खाली प्लॉट तक पहुँचा। वहाँ मैंने जो दृश्य देखा वो आज भी मेरी स्मृति में बिल्कुल ताज़ा है। वो लड़का बड़ी तन्मयता से कचरे के ढेर में कुछ खोज रहा था। अपनी दुबली-पतली कमज़ोर बाँहों से वो उस ढेर से जैसे युद्ध कर रहा था। जाड़ों की दोपहर के बावजूद उसके माथे पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। उसकी आँखों में दृढ़ता ऐसी जैसे कि उस कचरे के ढेर में वो अपनी खोई हुई किस्मत तलाश रहा था। काफी देर की कशमकश के बाद उसके चेहरे पर वही मुस्कान उभर आई जो मुझे रविवार की दोपहर को अपनी किताबों से दूर उस जगह तक खींच लाई थी। शायद उसे कुछ मिल गया था जिसे वो बड़े ग़ौर से निहार रहा था। पर वो था क्या?, मेरी उत्सुकता अपने चरम पर थी। आख़िरकार वो एक विजयी योद्धा की तरह अपने हाथ में जीत की ट्राफी लिए नीचे उतरा और प्लॉट के दूसरे कोने की ओर बढ़ने लगा। तभी मेरी नज़र प्लॉट के उस कोने पर गई जहाँ वो एक विजेता की तरह बढ़ रहा था। उस दृश्य को देखकर मैं हैरान रह गया। प्लॉट से सटी दीवार में कुछ दूरी पर स्थित दो छेदों में समानान्तर रूप से लकड़िया फँसाई गई थी और उन लकड़ियों पर बड़ी जुगत से फटा हुआ चादर व कार्डबोर्ड डालकर छत व दीवारों का रूप दिया गया था। उसकी कल्पनाशीलता को देखकर मैं हैरान था। परन्तु उस गत्ते से बने घर के अन्दर का दृश्य और भी हैरान करने वाला था। जी हाँ अब मैं उसे घर ही कहूँगा क्योंकि वह घर जैसा ही था, कम से कम उस लड़के के लिए तो था ही। कूड़े से बीना गया परित्यक्त सामान उसने घर के अन्दर बड़े करीने से सजा रखा था। प्लास्टिक की बोतलें, कार्डबोर्ड के बक्से, पुराना घरेलू सामान, टूटे-फूटे बर्तन, तह कर रखी हुई प्लास्टिक की थैलियों की कई गठरियाँ। और भी बहुत कुछ था उसके घर में।

आख़िरकार वो अपने उस घर में लौटा और अपनी उस अमूल्य खोज पर जमी गंदगी हटाने का प्रयास करने लगा। वो एक खिलौना कार थी या यूँ कहिए शायद कभी रही होगी। अब तो वह एक टूटा-फूटा कबाड़ ही थी जिसमें ना तो दरवाज़े था ओर ना ही कोई टायर बाकी था। पर वो उस चटख लाल रंग की टूटी-फूटी कार को पाकर इतना प्रसन्न था जितना शायद हम लोग शोरूम से नई कार खरीदते समय भी नहीं होते हैं। वह उसे ऐसे घिस रहा था जैसे वह कोई खिलौना ना होकर कोई जादुई चिराग हो जिसमें से अभी एक जिन्न निकलेगा और उसकी सारी ख़्वाहिशें पूरी कर देगा। साफ-सफाई पूरी होने के बाद वह उस बिना पहियों की कार को ज़मीन पर चलाने लगा या कहिए घिसने लगा। कॉलोनी के बच्चों द्वारा परित्यक्त टूटे-फूटे खिलौनों से वह अपना बचपन सजा रहा था। मैं अवाक् था। शायद मैंने ज़िंदगी को इस रूप में पहले कभी नहीं देखा था। आख़िरकार मैंने हिम्मत जुटाकर उसे आवाज़ दी ''ऐ सुन.. तेरा नाम क्या है?'' उसने सिर उठाकर मुझे देखा और बेपरवाही से अपना नाम बताकर फिर से अपने बाल सुलभ कौतुहल में रम गया। बहुत प्रचलित सा नाम था उसका पर मैं उसका नाम आप से साझा नहीं करूँगा क्योंकि हम अक्सर नाम में धार्मिक और जातीय पहचान तलाशने लगते हैं। ''कहाँ से आया है और तेरे माँ-बाप कहाँ है?'' मैंने दोबारा पूछा। इस बार उसने सिर उठाने की ज़हमत भी नहीं उठाई और मुझे पूरी तरह उपेक्षित कर अपने खेल में लगा रहा।

मैं उससे यही प्रश्न दोबारा पूछने ही वाला था कि पीछे से आवाज़ आई ''भैया आप यहाँ कैसे, कोई प्रॉब्लम है क्या ?'' मैंने पलटकर देखा तो पाया कि सुधीर मेरी ओर ही आ रहा था। सुधीर हमारी कॉलोनी में ही रहता है। अग्रवाल साहब के प्लॉट के एकदम सामने ही उसका घर है। यूँ तो वह उम्र में मुझसे छोटा है पर मेरा व्यवहार उससे दोस्तों की तरह ही रहता है। अपनी उम्र के अन्य युवाओं के मुकाबले सुधीर बहुत ही समझदार व परिपक्व है।

''क्या बात है भैया?'' मेरी ओर आते हुऐ सुधीर ने फिर पूछा।

''कुछ नहीं सुधीर। बस यूँ ही

चहलकदमी करते हुए इधर आ गया था।'' मैंने अपनी झेंप मिटाते हुऐ कहा।

''चलो अब यहाँ से चलते हैं।'' यह सुनकर वह मेरे साथ-साथ चलने लगा।''ये लड़का कौन है सुधीर?'' रास्ते में मैंने उससे पूछा।

''ये तो कोई नहीं जानता भैया। किसी से बात नहीं करता है। अपने आप में ही मस्त रहता है। आपको पता है कॉलोनी के लोग भी उस लड़के को लेकर बहुत आशंकित हैं। सब को यही डर है कि कहीं वो चोरी-चकारी तो नहीं करता।'' सुधीर ने उत्साह से भरकर जवाब दिया।

''तुम्हें क्या लगता है?'' मैंने गंभीर होकर पूछा।

''ऐसा लगता तो नहीं है पर किसी की शक्ल पर तो लिखा नहीं होता कि वो चोर है या साहूकार। ख़ैर जो भी हो अग्रवाल अंकल को बैठे-बिठाए मुफ़्त का चौकीदार मिल गया है।'' सुधीर ने अपने चिर परिचित अंदाज़ में खिलखिलाते हुए कहा।

उस की बात सुनकर मैं भी हँस पड़ा। कुछ देर सुधीर से इधर-उधर की बात करने के बाद मैं अपने घर लौट आया। घर लौटकर अपने आप को व्यस्त रखने की तमाम कोशिशों के बावजूद भी वो लड़का मेरे दिलोदिमाग़ पर छाया हुआ था। मैं जितना उसे भूलने की कोशिश कर रहा था उतना ही उसकी कहानी को जानने की उत्सुकता मेरे अन्दर घर करती जा रही थी। आख़िरकार मैंने भी ठान लिया कि चाहे जैसे भी हो मैं इस लड़के के बारे में सब कुछ जानकर ही रहूँगा। एक बारह-तेरह साल के लड़के से सच उगलवाना आख़िर कितना मुश्किल हो सकता है। यह सोचकर मैं शाम का इन्तज़ार करने लगा।

शाम होते ही मैंने फ्रिज से बिस्किट के कुछ पैकेट व चॉकलेट लिए और अग्रवाल साहब के प्लॉट की ओर निकल पड़ा। अपने गंतव्य पर पहुँचने पर पाया कि वो लड़का अपने घर में ही था और अपने घुटनों को मोड़कर अपनी छाती से टिकाकर जाने किस सोच में डूबा था। मैं धीमे कदमों से उसकी ओर बढ़ा और वहीं पास पड़े एक बड़े से पत्थर पर बैठ गया। वो मुझे वहाँ देखकर कुछ असहज सा हुआ परन्तु कुछ ही क्षणों में उसने अपने चेहरे पर लापरवाही ओढ़ ली और अपने पास ही रखी प्लास्टिक की खाली बोतल के ढक्कन पर अपनी पतली उँगलिया फिराने लगा। कुछ पलों के लिए हम दोनों ऐसे ही बैठे रहे। हम दोनों के बीच पसरा संवाद का अभाव अब मुझे विचलित करने लगा था। आख़िरकार मैंने अपने साथ लाए बिस्किट व चॉकलेट उसके सामने रख दिए। उसने एक बार कनखियों से देखा और दोबारा बोतल के ढक्कन पर अपनी उँगलियाँ फिराने लगा। ''ये तुम्हारे लिए ही हैं।'' मैंने अपनी आवाज़ को भरसक नम्र बनाने की कोशिश करते हुए कहा।

वो उसी तरह नज़रें झुकाए बैठा रहा परन्तु उसके अन्तर्मन में छिड़े द्वंद्व को मैं बखूबी महसूस कर पा रहा था। हमारे बीच खड़ी संकोच की दीवार हर गुज़रते पल के साथ कमज़ोर होती जा रही थी। काफी देर के आन्तरिक संघर्ष के बाद आख़िरकार भूख ने संकोच को पराजित कर ही दिया और उसने सामने रखी चॉकलेट उठा ली। मेरे चेहरे पर ना चाहते भी अनायास ही एक मुस्कान फैल गई। मैं जानता था कि मैं आधी बाज़ी जीत चुका हूँ। उसने अपनी पतली-पतली उँगलियों से चॉकलेट का रैपर उतारना शुरू किया और साथ ही अपनी कहानी से भी परत दर परत, सवाल दर सवाल पर्दा उठाता चला गया।

''तेरे माँ बाप कहाँ हैं ?'' मैंने पूछा।

''वो तो कबी के मर गए।'' उसने लापरवाही से जवाब दिया।

''कोई रिश्तेदार, भाई बहन वगैरह ?''

''कोई नी है।''

''घर कहाँ है तेरा ?''

''कईं बी नी है। अबी तो येई मेरा घर है।'' उसने फीकी सी हँसी के साथ जवाब दिया।

मैं उसके चेहरे पर आते-जाते भावों को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। ऊपर से चाहे जितना भी वो अपने आप को बेपरवाह दिखाने की कोशिश कर रहा था पर उसकी आँखों में झलकते दर्द और हृदय में उठती टीस को मैं महसूस कर पा रहा था। मेरे प्रश्न उसे परेशान कर रहे थे। उसके मनोभावों से मैं इतना तो समझ गया था कि ये बातचीत आगे चलकर असहज होने वाली है। एक पल को तो मैंने सोचा भी कि पीछे हट जाऊँ पर मेरे अन्दर घुमड़ रहे असंख्य अनुत्तरित प्रश्नों ने ऐसा करने से रोक दिया। मैंने हिम्मत जुटाकर फिर पूछा।

''क्या मतलब घर नहीं है। सबका होता है। तेरा भी घर कहीं तो होगा ?'' मैंने थोड़ा सख्त लहजे में सवाल किया।

''मेरा नी है साब। माँ पैदा करते ही मर गई। बाप ने दारू पी-पीका घर-बार, खेत, ज़मीन सब गाँव के लालाजी के पास गिरवी रख दी। एक दिन मेरा बाप बीमारी में चल बसा। बाप के मरने के बाद लालाजी ने घर खेत सब पे कब्ज़ा कर लिया और मुझे घर से बाहर निकाल दिया। मैं बिना माँ-बाप के साथ बिना घर-बार का हो गया।''

''रिश्तेदारों ने कोई मदद नहीं की ?''

''किसी ने नी करी साब। बुरा बखत आया तो सबने मुँह फेर लिया। एक दूर के रिश्तेदार ने ज़रूर मदद करी और उसके घर में मुझे रेने की जगे दी। पर बाद में मालूम पड़ी कि उसने मुझ पे तरस खा के मेरी मदद नी करी। उसे अपने घर में काम काज के लिए एक नौकर की ज़रूरत थी। वहाँ मेरे साथ जानवर सरीखा बरताव होता था। वो और उसके घरवाले बात-बात पे मेरे साथ मारपीट करते थे। दिन भर हाड़तोड़ काम के बाद भी खाने को इत्ता ही मिलता था कि मैं बस ज़िंदा रे पाऊँ। और ग़लती हो जाए तो दिन भर खाने को नी मिलता था।''

''फिर क्या हुआ ?''

''फिर क्या साब। एक दिन पिटाई बर्दास्त नी कर पाया तो मैं वहाँ से भाग गया। रात भर इधर उधर घूमते-घूमते में इस्टेसन (रेलवे स्टेशन) तक पोंच गया और जो पेली गाड़ी मिली उसमें चढ़ गया। मैं वहाँ से जित्ता दूर हो सके उत्ता दूर जाना चाहता था साब। दिन भर गाड़ी में बैठा रहा और आख़िरी में मैं एक शहर में उतर गया। इस्टेसन पर मेरे जैसे बहोत से लड़के थे जिनका कोई घर-बार नहीं था। वो सब इस्टेसन पर ही रहते थे और वंई काम धंदा करते थे। उनने मुझे भी अपने साथ रख लिया।''

''क्या काम करते थे तुम लोग स्टेशन पर ?''

''ग़लत काम। हमारी गैंग के कई लड़के चोरी-चकारी और पाकेटमारी जैसे ग़लत काम करते थे। पर मैं ये सब ग़लत काम नी

करता था साब। मैं और कुछ लड़के कचरा बीनने का काम करते थे। हम पिलास्टिक की बोतल और दूसरा फेंका हुआ सामान इकट्ठा कर कबाड़ियों को बेच देते थे। उससे हमें थोड़ा बहोत पइसा मिलता था जिससे हमारे दो टाईम के खाने की जुगाड़ हो जाती थी। मैं वहाँ खुश था साब।''

''फिर तुम यहाँ कैसे पहुँचे ?''

''एक दिन कुछ सरकारी लोग आए और हम सब लड़कों को पकड़कर बाल सुधार गृह में डाल दिया।''

''ये तो अच्छा हुआ ना। कम से कम वहाँ सिर पर छत और दो वक़्त का खाना तो मिलता ही होगा।'' मैंने समझाइश के लहजे में कहा।

''हाँ साब।'' उसने व्यंग्य और गुस्से से भरी मिश्रित मुस्कान से मेरी ओर देखा। ''बहोत कुछ मिलता था उस नरक में।''

''वार्डन दारू पीकर हमें रोज़ गाली बकता था और जानवरों की तरह हमारी पिटाई करता था और हमारे साथ...।''

कहते कहते वो अचानक रुक गया

''हमारे साथ क्या?'' मैंने धीमे से पूछा।

''दारू के नशे में वो हमारे साथ गंदी हरकत करता था साब।'' उसने झेंपते हुए कहा। ''एक दिन मौका लगते ही मैं वहाँ से भी भाग गया। उस दिन से कबी इस शहर कबी उस शहर। अब मेरा कोई ठिकाना नी है।''

उसके शब्द मेरे कानों में पिघले सीसे की तरह उतर रहे थे। उसका जवाब सुनकर मेरी आँखें शर्म से ज़मीन में गड़ गईं। मैं ना जाने कितनी देर तक अपने माथे को पकड़कर गर्दन झुकाकर वहीं बैठा रहा। मैं न तो शर्म के कारण अपनी नज़रें उठा पा रहा था और न ही कोई और सवाल पूछने की हिम्मत ही बाकी थी। आख़िरकार जैसे-तैसे मैंने अपनी नज़रें उठाकर उसकी ओर देखा तो वह क्रीम वाले बिस्किट के दो हिस्से कर उनके बीच लगी क्रीम को अपनी जीभ से चाट रहा था। ठीक वैसे ही जैसे मेरी बेटी अक्सर अपनी माँ को चिढ़ाने के लिए करती है।

आख़िरकार दुखी हृदय और अपराधबोध से भरा मैं अपने घर की तरफ चल दिया। शायद मैं खुद को भी उसका अपराधी मानने लगा था। मन अशांत था। दिमाग़ में कई

विचार घुमड़ रहे थे। मैं समझ नहीं पा रहा था उसके लड़के की नियति पर दुखी होऊँ या उसकी जीवटता और संघर्षशीलता की प्रशंसा करूँ जिसके बल पर तमाम अत्याचारों को सहने के बाद भी हार ना मानते हुए वो अपनी किस्मत से लड़ रहा है। इतनी कठिनाइयाँ और मुश्किलें भी उसके चेहरे से उसकी निश्छल मुस्कान ना छीन सकी।

घर आने पर पाया कि मेरा बेटा अपनी नई चमचमाती रिमोट कन्ट्रोल्ड कार से खेल रहा था जिसे मैंने कुछ दिन पहले ही उसके जन्मदिन पर दिलाया था और मेरी बेटी अपनी गुड़िया के घर को सजा रही थी। कितना अंतर था उस लड़के की टूटी-फूटी कार और मेरे बेटे की चमचमाती खिलौना कार में? और कितना अंतर था उसके गत्ते से बने घर और मेरी बेटी के गुड़ियाघर में? शायद उतना ही महीन अंतर था जितना भाग्य और दुर्भाग्य के बीच में होता है। मैंने ईश्वर को मन ही मन धन्यवाद दिया कि उसने मेरे बच्चों की नियति में ऐसी तकलीफें नहीं लिखी। साथ ही मन में विचार आया कि समाज में ऐसे लाखों बेघर बच्चे हैं जिनकी कहानी भी उस लड़के से मिलती-जुलती होगी या शायद उससे भी मार्मिक। मैंने मन ही मन निश्चय किया कि उस लड़के की हरसंभव मदद करूँगा। शायद प्रेम और सहानुभूति का मरहम उसके शरीर और आत्मा पर लगे घावों को भरने में कुछ मदद कर सके।

अगले दिन ऑफ़िस से लौटते समय मैंने उस लड़के के लिए कुछ कपड़े, खिलौने व खाने का सामान ले लिया। घर आकर कपड़े बदल मैं सीधे अग्रवाल साहब के प्लॉट की ओर चल दिया। रास्ते में भी मेरे मन में अन्तर्द्वंद्व जारी था। सोच रहा था कि उस लड़के की प्रतिक्रिया क्या होगी। क्या इन उपहारों से उसके घाव भर पाएँगे जो उसने इतने सालों में सहे हैं। इसी सोच में डूबा हुआ मैं उस जगह पहुँचा तो वहाँ का दृश्य देखकर कलेजा मुँह को आ गया। उसका कार्डबोर्ड से बना घर टूटा-फूटा पड़ा था। दीवार में फँसी लकड़ियाँ निकाल कर फेंक दी गई थी। कार्डबोर्ड की छत और दीवारें ज़मीन पर पड़ी थी और उसके घर में भरा हुआ कबाड़ भी पूरे प्लॉट पर बिखरा पड़ा था। मेरी आँखें उसे चारों ओर ढूँढ़ रही थी पर वो कहीं भी नज़र नहीं आ रहा था। मेरा हृदय किसी अनहोनी की आशंका से तेज़-तेज़ धड़कने लगा।

''क्या हुआ भैया? उस लड़के को ढूँढ़ रहे हैं क्या ?'' ये सुधीर की आवाज़ थी जो अपने घर की बालकनी में खड़ा मुझे ही देख रहा था।

''हाँ सुधीर। कहाँ गया वो और ये सब क्या है?'' मैंने उत्तेजित होकर पूछा।

''मैंने आपको बताया था ना कि कॉलोनी के लोग उस लड़के को लेकर काफी आशंकित थे। आज सब लोगों ने इकट्ठे होकर उस लड़के को मारपीट कर यहाँ से भगा दिया और उसकी झोंपड़ी को भी तोड़ दिया।'' सुधीर ने एक ही साँस में सब कुछ कह डाला।

''ये कब की बात है सुधीर ?'' मेरा पूरा शरीर काँप रहा था। मेरे हाथों में थमे थैले ज़मीन पर गिर चुके थे।

''यही कोई घंटे भर पहले की।''

''फिर तो वो आसपास ही होगा।'' इतना कहकर मैं तेज़ कदमों से उसे ढूँढ़ने के लिए निकल पड़ा।

''रुकिए भैया। मैं भी आ रहा हूँ।'' पीछे से सुधीर ने अवाज़ लगाई।

मुझे उस वक़्त न कुछ सुनाई दे रहा था और न कुछ समझ आ रहा था। मैं पूरी कॉलोनी में पागलों की तरह उसे इधर उधर ढूँढ़ रहा था। लेकिन वो कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। आख़िरकार मैं कॉलोनी के रास्तों की खाक छानता हुआ शहर की मुख्य सड़क तक आ पहुँचा। सुधीर भी मेरे पीछे

ही था। आख़िर कहाँ जा सकता है वो ? मैं अपने दिमाग़ में उन तमाम जगहों के बारे में सोच रहा था जहाँ उसके मिलने की संभावना हो सकती थी। तभी उसके कहे शब्द अचानक दिमाग़ में कौंध गए। ''फिर क्या साब। जो पेली गाड़ी मिली उसमें चढ़ गया''। मेरे कदम खुद ब खुद स्टेशन के ओर जाने वाली सड़क पर मुड़ गए। उस जगह से स्टेशन की दूरी तकरीबन ढाई किलोमीटर होगी। मैं बदहवास सा उस सड़क पर दौड़ा जा रहा था। जाड़ों की ठंडी शाम के बावजूद मेरा पूरा शरीर पसीने से तरबतर था। आते-जाते राहगीरों की प्रश्नवाचक नज़रों को नज़रअंदाज करते हुए मैं बस दौड़ा जा रहा था। मेरी साँसें अब किसी धौंकनी की तरह चल रही थीं और दिल इतना तेज़ धड़क रहा था कि किसी भी समय छाती को फाड़कर बाहर आ जाएगा।

अगले मोड़ पर मुड़ते ही मेरे कदम अचानक ठिठक गए। उस मोड़ से कुछ आगे ही भारी भीड़ जमा थी। सड़क के दोनों ओर वाहनों की कतारें लगी थी। ट्रैफिक पुलिस के कुछ जवान बड़ी मुस्तैदी से जाम को खोलने की जद्दोजहद में लगे हुऐ थे। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो सुधीर अपनी कमर को झुकाकर अपने घुटनों पर हाथ रखे हुए अपनी उखड़ी साँसों को संयत करने की कोशिश कर रहा था। मैंने उसे जल्दी आने का इशारा किया और वाहनों की लम्बी कतार और भीड़ के बीच से किसी तरह रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ने की कोशिश करने लगा। सुधीर अब तक मेरे साथ आ चुका था। हम दोनों जैसे-तैसे लोगों को हटाते हुऐ आगे बढ़ रहे थे। तभी सुधीर ने अपने किसी परिचित को भीड़ में देखकर हाथ हिलाकर पूछा।

''क्या बात है भाई ? दिन के इस समय यहाँ इतना भारी जाम क्यों लगा हुआ है।''

''कोई एक्सीडेंट हुआ है। एक तेज़ रफतार कार ने किसी पैदल राहगीर को टक्कर मार दी है। बेचारे की मौके पर ही मौत हो गई है।''

''ओह..।'' हम दोनों ने अफसोस के साथ कहा। परन्तु मेरे दिलोदिमाग़ पर वही लड़का छाया हुआ था इसलिए इतने दर्दनाक हादसे की ख़बर भी मुझे विचलित नहीं कर सकी और मैं उसी तरह भीड़ में उसके चेहरे को तलाशता हुआ आगे बढ़ गया। कुछ देर तक इसी तरह भीड़ और वाहनों से संघर्ष करते हुए हम दुर्घटना स्थल तक पहुँच गए। एक्सीडेंट की जगह के आसपास पुलिस ने सुरक्षा घेरा बना रखा था जिसके बीच में एक एम्बुलेन्स व पुलिस की पी सी आर वैन खड़ी थी। दुर्घटना स्थल के दूसरी ओर भी भारी भीड़ और वाहनों की लम्बी कतारें थीं जिन्हें पार करने के बाद ही स्टेशन तक पहुँचा जा सकता था। हम दोनों सुरक्षा घेरे के बाजू से दूसरी ओर निकलने का प्रयास कर रहे थे कि सुधीर ने अचानक चौंकते हुए कहा- ''ये तो वही लड़का है भैया।''

मेरे अन्दर अचानक खुशी की लहर दौड़ गई कि आख़िरकार सुधीर ने इस भीड़ में उसे ढूँढ़ ही लिया। मेरी नज़रें भीड़ में उसके चेहरे को तलाशने लगी। चारों ओर नज़रें घुमाने के बाद भी जब वह कहीं दिखाई नहीं दिया तो मैंने व्यग्रता से पूछा- ''कहाँ है वो?''

सुधीर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी। उसने धीमी सी आवाज़ में कुछ कहना चाहा पर उसकी आवाज़ गले में अटक कर ही रह गई।

''कहाँ देखा तुमने उसे?'' मैंने कुछ गुस्से से पूछा।

''नीचे देखिए भैया।'' उसने धीमी आवाज़ में कहा और अपनी उँगलियों से एक ओर इशारा करते हुए अपनी गर्दन दूसरी ओर घुमा ली।

मैंने उसकी इंगित जगह की देखा तो मेरे पैरों के नीचे से जैसे ज़मीन खिसक गई। हाँ ये वो ही तो था। सड़क के एकदम मध्य में खून से लथपथ निष्प्राण लेटा हुआ। तमाशबीनों की भीड़ से घिरा हुआ। उसके क्षतविक्षत शरीर से बहता खून काला पड़कर जम चुका था। मेरे पैर अब जवाब दे चुके थे। मैं वहीं घुटनों के बल बैठ गया। उसके चेहरे पर अभी भी वही मुस्कान थी। निश्छल और शांत। मौत भी उसके चेहरे से उसकी मुस्कान छीन नहीं पाई थी। वो कोई साधारण मुस्कान नहीं थी। वह मुस्कान थी कभी हार ना मानने के उसके अदम्य साहस और जज्बे की। वो ज़िंदगी से अपनी जंग जीत गया था और मैं हारा हुआ सा उसकी मृत देह को ले जाते हुए देख रहा था। मेरी आँखों से आँसुओं की धार बह रही थी। आसपास खड़े तमाशबीन भी यह दृश्य देखकर हैरान थे परन्तु मुझे किसी की परवाह नहीं थी। मैं बस जी भरकर रोना चाहता था। शायद मैं अपने अपराधबोध को अपने आँसुओं से धोने की कोशिश कर रहा था या उसकी मदद न कर पाने का दुख मेरी आँखों से आँसुओं की धार के रूप में बह रहा था। लोग उसे उठाकर एम्बुलेन्स में डाल ही रहे थे कि मैंने सुधीर का स्पर्श अपने कंधे पर महसूस किया।

''चलिए भैया। अब यहाँ कुछ नहीं बचा है।'' सुधीर ने मुझे सांत्वना देते हुए कहा।

''हाँ सुधीर। सब खत्म हो गया है।'' मैंने उसे एम्बुलेन्स में ले जाते हुए देखकर कहा।

हम दोनों चुपचाप अपने घर की तरफ चल पड़े। पूरे रास्ते हम दोनों के बीच ख़ामोशी पसरी रही। शायद अब हमारे पास कुछ कहने-सुनने को बाकी भी नहीं रहा था। घर पहुँचने पर पाया कि पत्नी और बच्चे चिंतित मुद्रा में मेरा इंतज़ार कर रहे थे। मुझे देखते ही बच्चे दौड़कर मुझसे लिपट गए। मैं बहुत देर तक उनके बालों को सहलाता रहा, उन्हें दुलार करता रहा। पर मेरी नम आँखें आसमान की ओर ही देख रही थीं। मैं निरन्तर ईश्वर को धन्यवाद दिए जा रहा था कि उसने मेरे बच्चों की नियति में उस लड़के की तरह संघर्ष और कठिनाईयाँ नहीं लिखी हैं।

आज इस घटना को कई साल बीत चुके हैं पर उस लड़के की स्मृति आज भी मेरे ज़ेहन में इस तरह बसी हुई है जैसे ये कल ही की बात हो। आज भी हर बेघर बच्चे में मुझे उसका चेहरा ही नज़र आता है और उनकी हर कहानी में उसी की कहानी का प्रतिरूप दिखाई देता है। मैं अपनी क्षमतानुसार ग़रीब और बेघर बच्चों की सहायता करने की कोशिश भी करता हूँ। शायद इसी उम्मीद में कि मैं किसी बेघर बच्चे को उस दर्दनाक संघर्ष और मार्मिक अंत से बचा सकूँ।

आज भी कभी-कभी अपने ड्राइंगरूम में अख़बार पढ़ते हुए मुझे महसूस होता है जैसे एक जोड़ी आँखें मुझे घूर रही हैं। वो आज भी मुझे खिड़की के बाहर खड़ा दिख जाता है। वही मैला कुचैला मरियल सा लड़का।

***

शैलेन्द्र शरण की कविताएँ

गेंदा फूल

जब दरकार होती है
बहुत सारे फूलों की
तब छोड़ दिए जाते हैं गुलाब

पंखुड़ियाँ तोड़कर भी
उतने नहीं हो पाते
कि भर सकें, जी भरकर
सबकी खुशियों में रंग
वैसे भी गुलाब
मेहनती हाथों में अच्छे नहीं लगते

गुलाब, तिलिस्म भर है
अपने रंग, रूप और सुगंध से
मदहोश करता हुआ
एक छल है गुलाब
किसी रक्कासा सा इतराता अपने हुस्न पर

वह बना दिया गया है, प्रेम निवेदन के वक़्त
किसी कली को कली सा थमाने के लिए
बढ़ाता है मन्द-मन्द धड़कनें
दहकाता है अंगारे
गुलाब सेज पर कुचल जाने के लिए बना है

कदमों में बिछना होता है
तो टूटकर बिखर जाता है पंखुड़ी-पंखुड़ी
खूबसूरत छटाओं और रंगों में
हर अवसर पर सभी को सुलभ
युवतियों के लोक गीतों में बसा
सैयाँ छेड़ देवें... ननंद जी चुटकी लेवें
ससुराल गेंदा फूल ॥
***

अजनबी कौन

अपनी ही लकीर पर चलो
हो ही जाता है अनचाहा, अनकहे,

बच्चे की गेंद सी
गिर जाती है खुशी, गटर में
दुनिया नहीं चलती सँभल कर
सामने से आकार गिरा जाता है कोई अचानक

बहुत सारी खुशियों में से
सबसे प्रिय खुशी का कम होना
यानी
बियाबान जंगल
गहरी रातें
बेतरतीब आवाज़ें
रहस्यमयी भय
बिलकुल अविश्वास की तरह

जबकि उसी जंगल में
उजला दिन
खिलते फूल
बहती नदी
बात करते पंछी
हमेशा से रहते आए हैं
बिलकुल आस की तरह

देखना
कल जब बहस चलेगी
तब हमेशा की तरह
शायद ही समझ आएगा कि
हममें से दोषी कौन
और अजनबी कौन ?
***

रश्मि

फिर एक सर्द रात
चाँदनी खिड़की से झाँकी
और सिहरा गई
सुबह उसी खिड़की से आकर
सूरज की एक रश्मि
पगथली सहला रही थी ॥
***

उसी जगह

वो मेरी राह नहीं थी
यूँ तो बहुत से रास्ते
चिपक जाते हैं पैरों से

दिशाभ्रम के चलते
लौटना कठिन
और उदास करने वाला था

पलटकर देखता हूँ तो
पाता हूँ आज भी उसी जगह
मेरी परछाँई
खेलती रहती है मुझसे ॥
***

धोखा

(1)

यह तो मछली की जिजीविषा ही थी
कि लौट आई किसी त्राह पानी में
वरना एक आँधी ने तो
तीन दिन और चार रातों के
यात्रा अवसर के तहत
कब से बाहर ला पटका था ॥
***

(2)

उसने नहीं जताया
उलाहने बुरे लगे उसे

धोखा हुआ था उसके साथ

उसने अपने आप को
बर्फ कहा ....
जो झूठा नहीं होता
फिटकरी कहा ...
लोगों ने उसे गंगा नहीं माना
और मैंने माना उसे ... झूठन ॥
***

शैलेन्द्र शरण
79, रेल्वे कॉलोनी, आनंद नगर, खंडवा
450001 (म.प्र.)
मोबाइल: 9098433544, 8989423676
ईमेल: ss180258@gmail.com

मुकेश पोपली की कविताएँ

उदास मन

यह जो मन है न
बहुत उदास है
इसे बहलाऊँ कैसे
इसे समझाऊँ कैसे
उस दिन
जब तुम नहीं आए थे
भटकता रहा था
गहरी वादियों में
पहाड़ की चोटी पर
तुम कहीं नहीं थे
आज तुम हो लेकिन
नहीं है वो चंचलता
खो गई है मादकता
है एक ठंडा अहसास
नहीं होठों पर प्यास
छितरे हुए से तुम
जैसे बिन बादल आकाश
कुछ देर बाद
फिर कहेगा यह मन
बहलाओ मुझे
कैसा है नादान
बार-बार मचलता है
अपनी तो बताता है
किसी की नहीं सुनता है
मैं इसे समझाता हूँ
कुछ देर इंतज़ार कर

कुछ देर सब्र कर
बड़े-बुज़ुर्गों ने कह रखा है
सब्र का फल मीठा होता है
यह भी तो बदल गया है
जैसे बदला है ज़माना
वैसे भी पुराने अनुभव अब
सुनता कौन है
हवाओं का रुख अब
कोई जानता नहीं है
भले-बुरे अपने-पराए
को कोई पहचानता नहीं है
इसलिए यह जो मन है न
बहुत उदास है।
***

धुएँ के बादल

कशिश खत्म नहीं होती
कभी वो
जो अरसा पहले
जाग उठी थी
दिल में
तुम्हें पहली बार देखकर
देखोगे तो जान लोगे
परत दर परत उठाकर
सबसे नीचे की सतह पर
जमा हैं आज भी
धुएँ के बादल
ज़रा ही हवा मिलते ही
फैल जाएँगे वो
घटा बनकर बरसने लगेंगे
तृप्त होते हुए
एक नई पौध को जन्म दे जाएगा
मिलन तेरा-मेरा।
***

मुराद

तुम मेरे जीवन में
आए ऐसे
तपती धूप को
सहता हुआ किसान
बादलों से बरसने की
मनुहार करे जैसे
अगली सुबह नींद से जागने पर
अपनी मेहनत की फसल लहराते देख
मुस्कराए जैसे।
***

मुकेश पोपली
सी-41, दूसरा तल, विकासपुरी
नई दिल्ली-110018
मोबाइल: 7073888126
ईमेल: swarangan38@gmail.com

अर्चना गौतम मीरा की कविताएँ

वह आई

सुनहरी...
तन्वंगी सकुचाई
-लजीली सी,
वह आई...
मेरे माथे को सहलाया
जी चाहा
उसे भर लूँ पाश में
ठिठकी सी कुछ देर
ठमकी रही,
कि रूठी हो
आँखें मूँद लीं
लम्हे भर को सायास मैंने
और...
खोलते ही पलकें
देखता क्या हूँ
कि वह आग़ोश में
समा गई है
स्लेटी कोहरे का शटर उठाकर -
झिरी से मेरे रोशनदान के
चली आई है
कतरन धूप की।
***

हँसी की चवन्नी

वो उसके जैसी ही
सुर्ख़
-शफ़क़
-सुनहरी
कुछ नर्म-नाज़ुक
साँझ थी
इक ग़ज़ल ने
जुंबिश ली
उसकी बालियों की

किसी टहनी ने
थाम लिया उसका दामन
और खुल गई
कोर पर बँधी
बंदिशों की गाँठ
कि हँसना चवन्नी भर का
उस रात
मौलसिरी की
सारी हँसी
उसने भर ली
झोली में और
खुल के हँस पड़ी
नसीमे सहर के संग
***

आख़िर

वो अपनी ही बाज़ुओं में
लेटी थी नन्ही होकर
किलकारी ने उसकी
मौत पर
ज़िंदगी का जश्न मनाया
तो याद आया उसे
जीना
सचमुच का
ढूँढ़कर खुद को
खुद में पाना
काम करना
अपनी मर्ज़ी का
सोचना
कुछ सपनीला
बादलों से ऊपर वाला
माँगना हो तो
खुद को
खुद जैसा
लड़ना
अपने हक़ का
भूल चुकी थी वह
काफ़ी पहले।
***

अर्चना गौतम मीरा,
102, सोमेश्वर ब्लॉक - ए,
लेन नं. - 3, आरपीएस मोड़, दानापुर,
बिहार, पटना - 801503
मोबाइल: 6200567958
ईमेल: archana.gautam64@gmail.com
***

मूसा खान अशांत बाराबंकवी की कविताएँ

लकड़ी और लड़की

चूल्हे
में रखकर लकड़ी
लड़की उसे जलाती है
पर लकड़ी जलती नहीं
सुलगती हैं।
साँस को
मुँह में भरकर
धौंकनी बनाकर
अधर गोल करती है।

फिर
फूँकती है
लड़की लकड़ियाँ
शायद जल उठें।
सिंक जाएँ
कुछ रोटियाँ
वर्ना बापू आकर चीखेगा
और माँ की काट देगा
बेवजह बोटियाँ।

लड़की
देखती है लकड़ियों को
जानती है उनकी नियति
जलना केवल
या सुलग सुलग कर जलना।
और तभी
सुलगती लकड़ी
के धुँए की कड़ुआहट से
टपकते हैं
उसकी आँख से
दो मोती।
कपोलों पर
जिसे वह पोंछती है
उभरते यौवन को ढके हुए
पल्लू से।

क्या
यही है उसकी भी
वास्तविक नियति
केवल
धीरे-धीरे सुलगना
या फिर विद्रोह कर
नई नियति लिखना।
लड़की सोचती है
आज की लड़की
है उसे बनना
लड़की सोचती है
***

व्यवस्था की जर्जर लाश

एकलव्य ने
अँगूठा दान में दिया था
या कि
मात्र वचन।
पौराणिक कथा की
इस भूल भुलैया में
जाकर खो जाने से
बेहतर है कि हम
अपने
द्रोण को विवश करें कि
वह किसी एकलव्य से
शिक्षा और ज्ञान
प्राप्ति के नाम पर वे
अँगूठा न माँगे।

यदि ऐसा न
होगा तो एकलव्य के
साथ सदैव अत्याचार
होता रहेगा।
और
वह व्यस्वस्था की
जर्जर लाश अपने कन्धे
पर उठाए संसद के
दरवाज़े पर
न्याय की भीख माँगता रहेगा।
***

ईमेल : mmkashant@gmail.com
मोबाइल : 7376255606/ 9839018811

सन्तोष पाल की कविताएँ

उसकी आँखों में खटकता रहूँगा

मैं तुम्हारे घर भी आया
शख़्स जिसे मिल नहीं पाया
और एक शख़्स जिसे मिला
वो तुम नहीं थे
तुम्हारी ही शक्ल में
कोई बहरूपिया देर तक
मेरी शक्ल माँगता रहा
मैं भी कैसे देता
एक ही शक्ल में जीता रहा ताउम्र मैं
सो मना कर दिया
उसे मनाही खटक गई होगी
उसकी आँखों में खटकता रहूँगा ..
***

प्रेम

उनके प्रति तुम प्रेमपूर्ण क्यों नहीं हो सकते
प्राणों से प्रेम किए थे जो
वह धोखा नहीं दे गई
संपर्क ही तो टूटा है
साथ छूटा है थोड़ी देर
तुम ऐसा क्यों नहीं समझते कि
वो कदम भर ही आगे निकली होगी
उसी रास्ते पर पिछड़ गए हो तुम
किसी पड़ाव प्रतीक्षा कर रही होगी
तुम्हारे आने का
तुम्हारे चल देने से ही रास्ता और राही का
मिलन हो जाएगा
आख़िरी कदम पर ठहर जाना ठीक नहीं
मुसाफ़िर
प्रेम पर लाँछन लगाने का अधिकार
कभी भी वह नहीं देती तुम्हें
तुम भी कैसे हो
तुम्हारे होने में
उसने अपनी सार्थकता बताई
तुम ही उसके ग़ुरूर थे
उसका प्रेम तुम्हारे लिए कभी अपमान नहीं
हो सकता
सच्चा सम्मान होगा ...
***

दिन के कैनवास पर

मैं फैल गया था
अलग तरह की मदहोशी छा रही थी
सिर पर
पुरानी देसी शराब की महक
चिपकी थी मेरी नाक पर
हल्की साँझ कमरे में चल कर आई थी
एक सुंदर सी कविता
अनाधिकार प्रवेश का कारण –
प्रेम बता बता रही थी

पता नहीं कब
कविता अच्छी लगी और अंतरंग हो गई
घूँट-घूँट शब्द पीने और देर रात तक
जाने कौन सी बातें दिल अज़ीज़ हो गया
साथ तुम्हारे मैंने खुद को बिठा रखा
रात-रात भर
ये भी कोई नाता बहुत पुरानी नहीं

रात गए
बैचेनी से लाल हुई आँखों में क़ैद
उस तस्वीर को
दिन के कैनवास पर तुम्हें दिखा सकूँ
बता सकूँ उस रात की हक़ीक़त
मेरे गिलास में अँधेरा डूब गया
ज़िंदगी भटक गई थी राह
इंतज़ार की घड़ी को टिक-टिक बजते
बरसों तक तुमने भी तो सुना था
संगीत की लय में बजने लगा था
कोई बाउल गीत जैसे
***

सहानुभूति

मेरे घर को आग लगा दो
बस्तियाँ उजाड़ दो मेरी
फिर चाहे तो
सहानुभूति प्रकट कर लेना
या फिर झूठे आँसू ही
एक निवेदन है मेरा
किसी भी तरह से तुम अपनी सियासी दाँव
देखकर
मजबूत सत्ता में मुझे इस्तेमाल करना
चुनावी मुद्दे बनाकर अपने समीकरण ठीक
कर लेना
मुझे इतना नहीं पता
मेरा वोट सिर्फ तुम्हारे लिए है
तुमने थोड़े से विश्वास जगाए तो सही हमारे
भीतर...
***

बुरे दौर में

तुम सँभलकर रहना दौर बुरा है
अपनी निजी विचारों को
क्षति होने से बचना
बाड़ा डालना उसके आस पास
उसे चर ना सके
कोई भी जानवर पूरी इंतज़ाम रखना
बारिश उसकी जड़ तक पहुँच सके
और सुबह की धूप भी
एक पक्के माली की भूमिका में ही खुद को
रखना
समय की भी यही माँग है शायद
कड़ी पहरेदारी करना
जब तक कि तुम्हारे विचार
विरोध ना कर दें
समाज के विरुद्ध ना हो जाएँ
लड़ भिड़ ले कहीं भी
और सत्य को सत्य की तरह
आलौकित कर सके
पर्दे के पीछे के छिपे झूठ को
बेनकाब कर देने तक
तुम अपने इस काम बदले
कोई मेहनताना माँग मत बैठना
तपस्या ही समझना
ये कठिन समय की परीक्षा है तुम्हारी
धैर्य बनाए रखना...
***

सन्तोष पाल
ग्रा.+पो.– काठी कुंड, जिला – दुमका,
झारखण्ड, पिन – 814103
ईमेल: santosh.kr189@gmail.com
मोबाइल: 6203210795

कमलेश कमल की कविताएँ

भूमि अधिग्रहण : प्रतिरोध का कर्कश स्वर

एक विशालकाय मतवाला हाथी
चला आ रहा
गाँव की ओर
खेतों को रौंदते
छिन्न-भिन्न कर दिए
कई झुरमुट
चौपालों पर हुई चर्चा
कुदाल-हथौड़े
क्या ही रोकेंगे
हाथी का रास्ता?
डरे सहमे सब
नतमस्तक हुए
यह देख मुस्करा उठा
ऊपर बैठा महावत
हौदी से कुछ टुकड़े उठा
फेंका इनकी तरफ़
लेकिन नहीं माना
एक बावरा प्रतिरोधी
वह गरजा-
हाथी के दाँतों में
क्या इतनी पैनी धार है
हथौड़ों पर भारी पड़े
क्या वह इतना लाजवाब है?
मदमत्त हाथी दौड़ा
अपनी सूँड से उठा पटका
उस बावरे प्रतिरोधी को
और उन्हीं दाँतों से
फाड़ डाला पेट
जिसमें भरी थी आग
भूख की, आक्रोश की
एक कुटिल मुस्कान फैली
महावत के चेहरे पर
जल्दी से फेंके
कुछ और टुकड़े
अब कुछ हाथ और जुड़े
कुछ और सिर
हुए नतमस्तक
अगले दिन अख़बारों में
तस्वीर छपी थी
मुस्कुराते महावत की
चंद जुड़े हाथों की
और नतमस्तक सिरों की
लेकिन एक ख़बर
कहीं नहीं छपी
कि फिर से जुटे हैं
चौपालों पर लोग
कि कामिल हो कोशिश
भिड़ें और करें चोट
तोड़ें वे चमकीले दाँत
बनाएँ माला
और पहनाएँ
हर बावरे की प्रतिमा को

***

सूखा

सूखा और दुर्भिक्ष
करते रहे हैं प्रश्न
हमारे अस्तित्व से
और, हम
ढूँढ़ते रहे हैं उत्तर
खेती, सभ्यता
धर्म, मौसम
अज्ञान से विज्ञान तक
हमें पता नहीं कि पहले
मुर्गी हुई या अण्डा
पर इतना तो तय है
कि रोटी के पहले
ज़रूरी है गेहूँ
और अनाज का कम होना
सीधा जुड़ा है
जीवन के कम होने से
तो यही कार्य-कारण
क्यूँ नहीं पाता विस्तार
सोचना तो होगा ही
कि यूँ ही नहीं
पड़ जाता सूखा
कि पृथ्वी की दरारों से पहले
दरक जाती है
चेतना की दीवारें
कि ज़मीन सूखने से
कहीं पहले
सूख जाता है आकाश
आकाश से पहले जंगल
जंगल से पहले नदियाँ
नदियों से पहले समझ
और समझ से पहले ही
सूख जाता है मन
तभी तो हम करते हैं
जंगलों, जलाशयों का
अतिशय दोहन
सींचने कंक्रीट के जंगल
उलींचने लगते हैं नदियाँ
और काटते हैं वन
और तो और
सूखते कंठ को
बोतलबंद पानी से
तर करने के पहले
भूल जाते हैं नदियाँ
दूध से पहले मवेशी
और रोटी या बर्गर के पहले
भूल जाते हैं
गेहूँ और खेत
और समझ नहीं पाते
कि बाहर के सूखे से पहले
आता है अंदर का सूखा
कि बाहर के अकाल से पहले
अंदर आता है अकाल।

***

ईमेल: kamalkeekalam@gmail.com
मोबाइल: 7051734688

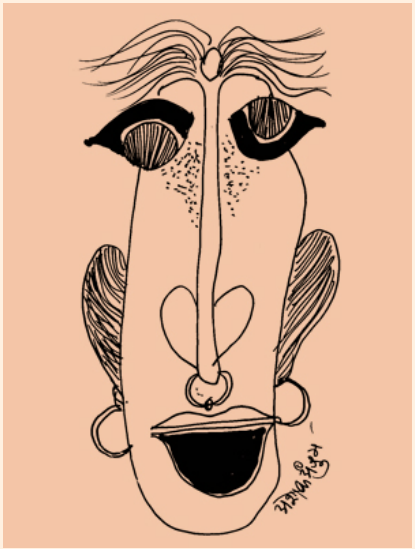

ग़ज़ल

दीपक शर्मा दीप की ग़ज़लें

थोड़ी सी गद्दारी रख
यानी मुझसे यारी रख
जाने किस दिन चलना हो
पहले से तैयारी रख
तनहा रहना ठीक नहीं
थोड़ी दुनियादारी रख
इश्क़ का होना है? तो फिर
पलकों पर बेदारी रख
हर पारी को खेल मगर
आगे अगली पारी रख
नश्शे! उजलत कैसी है?
थोड़े दिन तो तारी रख
या तो ग़ज़लें कहना छोड़
या ग़ज़लें मेयारी रख
कौन कहे है मत रख बोझ
लेकिन बारी-बारी रख
हम्मालों के जैसे सुन
कहने में सरदारी रख

***

आज मैंने गुनाह कर डाला
आह पे वाह-वाह कर डाला
ख़ैर होता नहीं था हमसे भी
ख़ैर हमने निबाह कर डाला
यार! मंज़िल थी मेरे पैरों में
रहनुमाओं ने राह कर डाला
साँप डसता नहीं भला कैसे
हाथ मैंने ही चाह कर डाला
तुमने पूछा भी नहीं 'होना है?'
एकदम से तबाह कर डाला

***

किसी ने दिल में रखा यार और सजा के रखा
किसी ने दिल से अलग घोंसला बना के रखा
उसे भी रखना ही था एक दिल जफ़ा के लिए
सो हमने उसके लिए हमको बरगला के रखा
न रखने का भी मुझे फ़ायदा है दिल में, मगर
रखा जो एक दफ़ा जिसने, फिर बुला के रखा
अभी तो ज़िक्रे-वफ़ा आया ही था महफ़िल में
किसी ने इतने में इक लौहे-दिल गला के रखा
तमाम शे'रो-सुख़न सुनने-गुनने के कुछ बअ'द
जो हमने बज़्म में इक क़ाफ़िया लजा के रखा
हमीं से लग के गिरे हम ही 'टूट जाते' कि दिल!
हमीं ने झट से पकड़ हमको शब उठा के रखा
वो कह रहे थे, किया जो, किया वो तुमने ग़लत
सो हमने अपना किया उनसे मुस्कुरा के रखा

***

गेंदा है, कुमुदिनी-ओ-है गुलफ़ाम बनारस
काजू है, मुनक्का है-ओ-बादाम बनारस
आती है याद हाए कचौड़ी गली की साँझ
सुनता हूँ कहीं जब भी तेरा नाम, बनारस!
सजदा तुझे ऐ दीनो-अम्नो-बारगाहे-उन्स!
ग़ालिब मियाँ के रस से भरे आम बनारस
है तुझसे इस जहाँ में रवाँ कारवाँ-ए-ज़ौक़
तुझसे ही है सुख़न का बड़ा दाम बनारस
मणिकर्णिका की शाम, सहर सारनाथ की
इसके इतर न हमको कोई काम बनारस!
अल्लाह मेरी जाँ को रखे यों ही पुर-शबाब
छलके तलक-ए-उम्रे-फ़लक़, जाम-बनारस
कहने में मैं 'नज़ीर' नहीं और न ही 'असद'
मुझ नौ-ग़ज़लसरे की ग़ज़ल थाम बनारस!

***

ज़ख़्मे-दिल शब हमने अपना वा रक्खा
फिर सिज़दे में हर एक ने माथा रक्खा
हमने उस बदमाश-बदन को क्या रक्खा
रखने को तो लोगों ने क्या-क्या रक्खा
तुमने ख़ुदा रक्खा उसको तो मारा तीर?
हमने ख़ुदा से भी उसको उम्दा रक्खा
हमने उसकी ज़िद भी रखी तो सिरहाने
उसने हमारा दिल भी सू-ए-पा रक्खा
अपनी अना की तह में ढूँढ़ हमारा दिल
देख यहीं पर जान.! कहीं होगा रक्खा
केवल कहने भर को रक्खा 'इश्क़' उसे?
रक्खा उसे तो दिल में सर से पा रक्खा
फिर रक्खा नाम अपना दीपक शर्मा 'दीप'
और यों हम ने इश्क़! तेरा कहना रक्खा

***

घर की थीं ताबानी दादी
आन्ही-दादा, पानी-दादी
फुकनी-चूल्हा, खूँटी-सुर्ती
ढिबरी, सरसो-घानी दादी
सबका सानी है दुनिया में
लेकिन थीं ला-सानी दादी
खर को सोना करने वाली
जस्ता-पीतल-चानी दादी
सीधी लाठी थीं तब पहले,
झुक के हुईं कमानी दादी
हँसी-ख़ुशी दो देवरानी थीं
दोनों की जेठानी दादी
नात-नतेरुहा, बचवा-बेटवा
सबकी एक ज़ुबानी दादी
इसकी-उसकी, काना-फूसी
इन सबसे अनजानी दादी
दादा जी की पगड़ी, आँखें
नाक-कान, पेशानी दादी
फटही-लुगरी में भी साहब
क्या लगती थीं रानी दादी

***

आ रही बे-हिसाब की ख़ुश्बू
मेरे साहिब-जनाब की ख़ुश्बू
उनकी ख़ुश्बू के सामने फीकी
गुलहज़ारा, गुलाब की ख़ुश्बू
उनके छूते ही सुर महक उट्ठे
गूँज उट्ठी रबाब की ख़ुश्बू
सारी दुनिया के इत्र एक तरफ़
इक तरफ़ उनके बाब की ख़ुश्बू
कोई झेलम-सा दिल रखे तब तो
जान पावे चनाब की ख़ुश्बू
हाए उनका वो हुस्न क्या कहिए
हाए उनके निक़ाब की ख़ुश्बू
हुस्ने-शादाब मैं न होती गर
वो न होते शबाब की ख़ुश्बू

***

दीपक शर्मा दीप
343 पेप्टेक सिटी कॉलोनी
पन्ना रोड
सोहावल - 485441
सतना (मध्य प्रदेश)
मोबाइल : 6265806404
ईमेल : deepaksharma434@gmail.com

कहानी संग्रह 'भूतभाई साहब' का विमोचन

विधानसभा अध्यक्ष डॉ. चरणदास महंत और मुख्यमंत्री भूपेश बघेल ने विधानसभा के सभागार में आयोजित कार्यक्रम में वरिष्ठ पत्रकार प्रियंका कौशल के शिवना प्रकाशन से प्रकाशित कहानी संग्रह 'भूत भाई साहब' का विमोचन किया। उन्होंने पुस्तक के विमोचन पर श्रीमती प्रियंका कौशल को बधाई और शुभकामनाएँ दीं।

विधानसभा अध्यक्ष डॉ. चरणदास महंत ने कहा कि छत्तीसगढ़ बाबा गुरु घासीदास और संत कबीर की पावन धरती है। यह शांति, करुणा और आत्मीय प्रेम की धरती है। हम सबकी कल्पना छत्तीसगढ़ को पुरखों के सपनों के अनुरूप गढ़ने की है। उन्होंने श्रीमती कौशल के प्रयास की सराहना की।

मुख्यमंत्री भूपेश बघेल ने कहा कि साहित्य रूमानी दुनिया के साथ वास्तविक दुनिया से परिचित करता है। साहित्यकार, पत्रकार और कलाकार समाज को आइना दिखाने के साथ रास्ता दिखाने का काम भी करते हैं।

वरिष्ठ साहित्यकार गिरीश पंकज ने पुस्तक के संबंध में बताया कि इसमें मनुष्य के नव निर्माण की कहानियाँ हैं। मनोरंजन के साथ कहानियों से पाठक का मन और सोच बदलेगी। वरिष्ठ पत्रकार श्री शंकर पांडेय और श्री पंकज शर्मा, लेखक श्री पंकज सुबीर और प्रजापिता ब्रह्माकुमारी केंद्र रायपुर की प्रमुख कमला बहन ने इस मौके पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्रीमती कौशल को शुभकामनाएँ दीं।

***

लघुकथा संग्रह 'निन्यानवे के फेर में' का विमोचन

किसी भी रचनाकार के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण होता है कि उसकी सारी रचनाएँ हर अर्थ में भिन्न हों। इस दृष्टि से शहर की ख्यातनाम लेखिका ज्योति जैन की रचनाएँ आकर्षित करती हैं। वे हमारे ही आसपास के परिदृश्य का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषा, शैली और शिल्प का रचाव और कसाव ही उनकी लघुकथाओं का सम्मोहन है। उक्त विचार जाने माने उपन्यासकार और शिवना प्रकाशन के श्री पंकज सुबीर ने व्यक्त किए। वे लेखिका ज्योति जैन के लघुकथा संग्रह 'निन्यानवे के फेर मे' के विमोचन के अवसर पर बोल रहे थे। मुख्य अतिथि का दायित्व निभाते हुए पंकज सुबीर ने कहा कि लेखिका ज्योति जैन ने साहित्य की लगभग हर विधा में स्वयं को सुव्यक्त किया है जबकि लेखन और समाज की तमाम ज़िम्मेदारियों के बीच एक साथ सभी विधाओं को साधना मुश्किल होता है। लेखिका ने यह साधना बड़ी खूबी से की है। उन्होंने लेखिका की खूबसूरत कथाओं का वाचन भी किया। पुस्तक पर चर्चा करते हुए वरिष्ठ लघुकथाकार सतीश राठी ने कहा कि निन्यानवे का फेर में शामिल लघुकथाएँ सुंदर जीवन जीने की दिशा को इंगित करती है। लेखिका ज्योति जैन ने अपनी लघुकथा और सृजन प्रक्रिया पर कहा कि मेरा छोटा सा लेखन संसार अपनी अनुभूतियों, परिवेश, संबंधों और समाज के आसपास आकार लेता है।

अतिथि द्वय का स्वागत वामा साहित्य मंच की अमर चड्ढा, और इंदु पराशर ने किया। स्वागत उद्बोधन पद्मा राजेन्द्र ने किया। अंत में आभार श्री शरद जैन ने माना।

***

डॉ. गरिमा दुबे को मिला सूर्यकांत त्रिपाठी निराला सम्मान

साहित्यकार डॉ. गरिमा संजय दुबे को भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन के लिए समर्पित संस्था सर्व भाषा ट्रस्ट नई दिल्ली द्वारा शिवना प्रकाशन, सीहोर द्वारा हाल में ही प्रकाशित उनकी प्रथम कृति कहानी संग्रह ''दो ध्रुवों के बीच की आस'' के लिए सूर्यकांत त्रिपाठी सम्मान 2019 से सम्मानित किया गया। यह सम्मान उन्हें संस्था के दूसरे वार्षिकोत्सव, जो कि भव्य तरीके से गांधी शांति प्रतिष्ठान में आयोजित किया गया, में प्रदान किया गया। 9 फरवरी को आयोजित वार्षिकोत्सव में देश के सभी प्रदेशों से लगभग 24 भाषाओं व बोलियों के साहित्यकारों, भाषाविदों, चित्रकारों व अन्य विभूतियों को सम्मानित किया गया।

संस्था अध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार श्री अशोक लव व सचिव श्री केशव मोहन पांडे ने सभी साहित्यकारों को उनकी उपलब्धि पर बधाई दी। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री शाहनवाज़ हुसैन की धर्मपत्नी शिक्षाविद् व साहित्यकार श्रीमती रेणु हुसैन व महा मंडलेश्वर स्वामी मार्तांड्या पुरी जी थे। इस कार्यक्रम में बनारस विश्वविद्यालय के डॉ फ़िरोज़ समेत जामिया यूनिवर्सिटी, दिल्ली यूनिवर्सिटी के प्रध्यापक काश्मीर, राजस्थान, गुजरात, डोगरी, मुल्तानी, उत्तर भारत, बिहार, हरियाणा, पंजाब, की विभिन्न बोलियों व भाषा के विद्वान व पत्रकारों, समज सेवियों का भी सम्मान किया गया। डॉ. गरिमा संजय दुबे को प्राप्त इस सम्मान पर शिवना प्रकाशन के संचालक श्री शहरयार अमजद ख़ान सहित समस्त लेखकों ने उन्हें बधाई दी है।

***

प्रज्ञा के उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' का लोकार्पण और परिचर्चा

तक्सीम, मन्नत टेलर्स जैसे कहानी संग्रहों और उपन्यास गूदड़ बस्ती की चर्चित लेखिका प्रज्ञा के दूसरे उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' का लोकार्पण विश्व पुस्तक मेला में राजकमल प्रकाशन समूह के मंच से हुआ। इस अवसर पर आलोचक ज्योतिष जोशी, व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय, कथाकार भालचंद्र जोशी,परिकथा पत्रिका के संपादक और वरिष्ठ कथाकार शंकर, कथाकार हरियश राय, बहुवचन पत्रिका के संपादक अशोक मिश्र ने उपन्यास पर अपनी बात रखी।

प्रेम जनमेजय ने लेखिका को बधाई देते हुए कहा कि उनकी किताबों के शीर्षक उस कहानी को बताने में सक्षम होते हैं,जो उस किताब का विषय है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कि दिल्ली की कपड़ा मिलों के बन्द होने के ठोस कथानक वाला यह उपन्यास भाषाई तौर पर बेहद समृद्ध है। आलोचक ज्योतिष जोशी ने उपन्यास की परंपरा पर प्रकाश डालते हुए धर्मपुर लॉज पर बात रखी। उन्होंने कहा कि हिंदी उपन्यास की परंपरा में प्रज्ञा ने नई लकीर खींची है,जो यथार्थ को पिरोए हुए,अपने समय की दशा को प्रस्तुत करता है। उन्होंने 'धर्मपुर लॉज' में दिखाए गए मिल मजदूरों के संघर्ष को उपन्यास की केन्द्रीय संवेदना और समय की यातना बताया। कथाकार भालचंद्र जोशी का कहना था हिंदी में बहुत कम लेखिकाएँ हैं जो इस तरह के विषय का चयन करती हैं। इसलिए प्रज्ञा अपने आप में एक अनूठी उपन्यासकार हैं। इस उपन्यास की कथा, लेखिका के विचारों के समानान्तर चलती है। उन्होंने दिल्ली की कपड़ा मिलों के बन्द होने की अछूती कथा को केंद्र बनाया है। लेखिका का उस पूरे विचार को कथा में बाँधना चकित करता है। शुरूआत से अंत तक पठनीय 'धर्मपुर लॉज' प्रेमचंद की परंपरा का उपन्यास है।

परिकथा पत्रिका के संपादक शंकर ने इस उपन्यास में गति और स्तरीयता का सामन्जस्य बताया है। राजनीति की मूलधर्मिता का पक्ष स्पष्ट करते हुए उन्होंने धर्मपुर लॉज में प्रज्ञा की दृष्टिसम्पन्नता और विचार प्रखरता का उल्लेख करते हुए कहा कि यह एक पीरियड नॉवेल नहीं बल्कि क्लासिक उपन्यास है। समय के संघर्षों को, विचार को कथा में इस तरह गूँथा गया है कि यह उपन्यास प्रेमचंद की प्रगतिशील-यथार्थवादी परंपरा की अगली कड़ी का उपन्यास है। हरियश राय ने कहा कि- 'धर्मपुर लॉज' दिल्ली के कपड़ा मिलों पर लिखा गया पहला उपन्यास है। लेखिका ने दिल्ली की बस्तियों का शोध कर यह उपन्यास लिखा है। स्पष्ट वैचारिकता और गहन संवेदनात्मकता के कारण प्रज्ञा का अपने समय की सभी लेखिकाओं में विशेष स्थान है। 'बहुवचन' पत्रिका के संपादक अशोक मिश्र ने लेखिका को शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि - लेखिका ने हाशिये के समाज को लिखने में दिलचस्पी दिखाई है। गूदड़ बस्ती के बाद यह उपन्यासकार का आगे का कदम है।

अंत में उपन्यासकार प्रज्ञा ने धर्मपुर लॉज को लिखने की प्रक्रिया साझा करते हुए बताया स्वतंत्र भारत मिल, बिड़ला मिल, अयोध्या, डी. सी .एम., मेरा देखा हुआ यथार्थ है। मुझे लगा कि इतनी बड़ी त्रासदी पर समय की धूल इतनी न पड़ जाए कि सारी इबारतें मिट जाएँ। लिहाजा उन्हें सँजोने और पुरानी दिल्ली के मुकीमपुरा, धर्मपुरलॉज, बिड़ला मिल के इलाके को आत्मीय स्पर्श देने का मैंने प्रयास किया है। उन्होंने उपन्यास के लिए लोकभारती प्रकाशन का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ .राकेश कुमार ने किया।

इस मौके पर प्रताप सहगल, पवन करण, कथाकार पंकज सुबीर, आशुतोष, मयंक खरे, नवनीत पांडे, संज्ञा उपाध्याय, अटल तिवारी, वंदना बाजपेयी, राकेश बिहारी, कविता, आदि साहित्यकार मौजूद थे।

***

अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस की 20 वीं वर्षगाँठ

अंतर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस की 20 वीं वर्षगाँठ मनाते हुए, भारत की समृद्ध भाषाई विविधता का हाउस ऑफ कॉमन्स, ब्रिटिश संसद के पोर्टकॉलिस हाउस में प्रदर्शन। सांसद बॉब ब्लैकमैन की मेज़बानी में संस्कृति सेंटर फॉर कल्चरल एक्सीलेंस द्वारा आयोजित, इस कार्यक्रम में 17 भारतीय भाषाओं को प्रस्तुत किया गया था, जिनमें से अधिकांश ब्रिटेन में रहने वाले भारतीय प्रवासी सदस्यों द्वारा पेश की गई थीं। कार्यक्रम में सौराष्ट्र, लद्दाखी और बिष्णुप्रिया मणिपुरी जैसी भारतीय भाषाओं पर प्रकाश डाला गया। डॉ. विकास ने मगही में, ओडिया में डॉ. सहदेव स्वैन, डोगरी में मनु खजुरिया, कश्मीरी में अनुपमा हांडू, लद्दाखी में चंदा झा, हिमाचल पहाड़ी में डॉ. विपिन नड्डा, पंजाबी में इंद्रपाल चंदेल, हिंदी में आशीष मिश्रा, टोन्या बरुआ चौधरी असमिया, मलयालम में लक्ष्मी पिल्लई, सौराष्ट्र में कमलिनी कौशिक, राजस्थानी में लुम्बिनी बाफना, मैथिली में शरद झा, भोजपुरी में संगीता प्रसाद और सिंधी में भाविका रामरहीणी ने एक एक कविता प्रस्तुत की। कार्यक्रम में तीन बच्चियों, तवीषा रोराने, श्रेया खरे और अनुष्का उपाध्याय द्वारा संस्कृत गीत मनसा सत्तम स्मरणेयम पर नृत्य, और संचिता दास द्वारा टैगोर की कविता निर्झर शोपनभंगो के गायन के साथ रागसुधा विंजामुरी की अभिनय प्रस्तुति ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

इस अवसर पर भाषा प्रचार के क्षेत्र में लेखिका शिखा वार्ष्णेय के प्रयासों की सराहना की गई और सांसद बॉब ब्लैकमैन ने शाल के साथ उनका सम्मान किया।

***

नीलांबर ने आयोजित किया लिटरेरिया 2019

नीलांबर संस्था का वार्षिकोत्सव 'लिटरेरिया' 13 से 15 दिसंबर 2019 के बीच कोलकाता में आयोजित हुआ। इस आयोजन के माध्यम से नीलांबर ने साहित्य और अन्य कलाओं के आपसी संवाद के लिए एक बेहतर मंच उपलब्ध कराया है। इस प्रकार इस संस्था ने साहित्य और कला के बीच एक सार्थक सेतु की भूमिका निभाई है। नीलांबर सर्वदा ही साहित्य में नए प्रयोग एवं आधुनिक तकनीक के समावेश से साहित्य को आम जन तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत रहा है। कार्यक्रम की शुरूआत से पहले इस वर्ष दिवंगत हुए साहित्यकारों-कलाकारों को श्रद्धांजलि दी गई। विदिशा बनर्जी के सितारवादन और डॉ. शमीन्द्र नाथ सान्याल के तबलावादन से कार्यक्रम की शुरुआत हुई। स्वागत भाषण संस्था के अध्यक्ष यतीश कुमार और प्रतिवेदन सचिव ऋतेश पांडेय द्वारा दिया गया। इस अवसर पर संस्था के संरक्षक एवं पुलिस महानिदेशक मृत्युंजय कुमार सिंह ने भी अपनी बात रखी। उद्घाटन सत्र का संचालन नीलू पांडेय ने किया।

इस वर्ष के लिटरेरिया का केन्द्रीय विषय 'मिथ, फैन्टेसी और यथार्थ' था, जिसे केंद्र में रखकर वक्ताओं ने अपनी बात रखी। पहले सत्र की अध्यक्षता करते हुए इतिहासविद सुधीर चंद्र ने 'इतिहास, मिथक और राजनीति' विषय पर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि स्मृतियाँ मनोस्थिति और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। 'नई सदी में स्मृति और कल्पना के प्रश्न' विषय पर अपनी बात रखते हुए अशोक कुमार पाण्डेय ने कहा कि साहित्य उन स्मृतियों को सँजोए रखती है, जो राजनीति भुला देना चाहती है। प्रकाश उदय ने 'लोक साहित्य में मिथक' से अवगत कराते हुए कहा कि संवाद संभव है, सबसे और सबका- यह लोक साहित्य की मिथकीय चेतना का अनिवार्य हिस्सा है। उसके लिए बेहद ज़रूरी है कि यह संवाद बराबरी के स्तर पर हो। श्रुति कुमुद ने 'फैन्टेसी का देशकाल' विषय पर अपनी बात रखते हुए यह बताया कि मिथक में रचनाकार अवास्तविक की सहायता से वास्तविक पर टिप्पणी करना चाहता है। सत्र का संचालन विनय मिश्र ने किया।

दूसरे सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. शंभुनाथ ने 'मिथकों की दुनिया और आधुनिक मन' विषय पर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि आज का समय मिथकों से घिरा हुआ है। इस दिन के दूसरे संवाद सत्र में 'स्त्री का मिथक और मिथक की स्त्री' विषय पर गीताश्री ने अपनी बात रखते हुए कहा कि स्त्री को लेकर जो भी मिथक हैं, उसने स्त्रियों की बहुत ही कमज़ोर छवि पेश की है। उसका सबल पक्ष कम उजागर हुआ है। मनीषा कुलश्रेष्ठ ने कहा कि मेरे गृहराज्य में मीरा के पद आदिवासी स्त्रियाँ और जोगनें ही गाती हैं। मीरा नाम आज भी अच्छे घरों में नहीं रखा जाता है। मीरा भक्तिन तो स्वीकार है, लेकिन प्रेम में पड़ी कवयित्री के रूप में नहीं। यही है मिथक की स्त्री और स्त्री के लिए वर्तमान समाज का मिथक। अनिता भारती ने कहा कि मिथकों ने स्त्री की झूठी छवि गढ़ी है। यहाँ के लोगों ने भी 'मिथक' को पूज कर स्त्री की संपूर्ण अवहेलना की है। 'होलिका' को जलाकर पर्व सम्पन्न करना मिथकों का सबसे क्रूर रूप है। इस सत्र का संचालन करती हुई रश्मि भारद्वाज ने कहा कि मिथक किसी देश की संस्कृति में गहरे रचे बसे होने के साथ 'आईडेंटिटी कन्सट्रक्शन' में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आयोजन के समापन सत्र में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गए। सबसे पहले मृत्युंजय कुमार सिंह ने अपने मधुर गीतों से दर्शकों का मन मोह लिया। धन्यवाद ज्ञापन संस्था के सचिव ऋतेश पांडेय ने किया।

***

-आनंद गुप्ता

सृजन संवाद में कविता पाठ व इंग्लिश प्रवासी साहित्य पर चर्चा

जमशेदपुर, सीतारामडेरा में 'सृजन संवाद' की मासिक गोष्ठी में विनीता परमार ने अपनी कुछ कविताओं - 'गर्दन हिलाती मछलियाँ', 'एकालाप', 'बस बचे रहे हम', 'गिरना सिर्फ़ अच्छा होता' का पाठ किया। श्रोताओं को उनकी कविताओं के बिंबों ने आकर्षित किया। कविताओं में प्रच्छन्न व्यंग्य की भी श्रोताओं ने सराहना की गई।

गोष्ठी के दूसरे खंड में डॉ. ऋतु शुक्ल ने इंग्लिश प्रवासी साहित्य, उसमें भी खासतौर पर झुम्पा लाहिरी तथा किरण देसाई दो स्थापित प्रवासी रचनाकारों पर अपनी बात रखी। उन्होंने दोनों लेखिकाओं के लेखन की समानाताओं तथा भिन्नताओं का विस्तार से उल्लेख करते हुए इन दोनों के केवल उपन्यासों पर चर्चा की। दोनों प्रवासी हैं मगर दोनों के अनुभव भिन्न हैं अत: दोनों की लेखन शैली भी भिन्न है। झुम्पा लाहिरी का लेखन बहुत गंभीर है, उनके यहाँ संवाद के वक्त भी ऐसा लगता है मानों पात्र गंभीर चिंतन-मनन में व्यस्त हैं। पाठक को ठहर कर वापस जा कर पुन: पढ़ कर यह तय करना होता है कि यह विशिष्ट वाक्य संवाद का हिस्सा है अथवा पात्र के अंतर्मन में चल रहे चिंतन का हिस्सा है। किरण देसाई में गंभीर बातों को भी हास्य के रूप में प्रकट करने की कला है। देसाई अपने उपन्यास 'हल्लाबलू इन द ग्वावा ऑर्चर्ड' में इसका खूब प्रयोग करती हैं। देसाई पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करती हैं। गोष्ठी में विनीता परमार, वैभवमणि त्रिपाठी, डॉ. ऋतु शुक्ल, डॉ. रुचिका तिवारी, तरुण कुमार, अर्पणा संतसिंह तथा डॉ. विजय शर्मा उपस्थित थी। विजय शर्मा ने संगोष्ठी का संचालन किया।

***

हिन्दी भवन भोपाल में शरद व्याख्यानमाला का आयोजन

मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल द्वारा आयोजित शरद व्याख्यान माला में 'भारतीय इतिहास बोध' विषय पर आयोजित व्याख्यान कार्यक्रम की शुरूआत सरस्वती वंदना एवं दीप प्रज्जवलन से हुई। डॉ. जवाहर कर्नावट, निदेशक, हिन्दी भवन, भोपाल ने अतिथियों का स्वागत पुस्तक और पुष्प गुच्छ भेंट कर किया एवं समिति के उपाध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा ने स्वागत वक्तव्य दिया।

कार्यक्रम में इंडिया टुडे (हिन्दी) के संपादक श्री अंशुमान तिवारी ने उनकी हाल ही में प्रकाशित प्रसिद्ध पुस्तक 'लक्ष्मीनामा' पर धर्म और संस्कृति को केन्द्र में रखकर अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम में 51 हज़ार का 'श्री नरेश मेहता स्मृति वांग्मय सम्मान' श्री अंशुमान तिवारी को उनकी पुस्तक 'लक्ष्मीनामा' के लिए प्रदान किया गया। गांधी चिंतन के विचारक श्री बनवारी को 'श्री वीरेन्द्र तिवारी स्मृति रचनात्मक सम्मान' एवं प्रो. शम्भू गुप्त को 'डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय स्मृति आलोचना सम्मान' से सम्मानित किया गया। श्री शैलेश मटियानी स्मृति कथा सम्मान भोपाल के कथाकार श्री मुकेश वर्मा को एवं रंगमंच को समर्पित श्री अशोक बुलानी को डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र' स्मृति नाट्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री एम. एल. खरे की पुस्तक 'रघुवंशम' का हिन्दी पद्यानुवाद एवं स्व. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय की पुस्तक ''भारतीय गल्प विवेचना दृष्टि'' का लोकार्पण किया गया। आयोजन की अध्यक्षता श्री रमेशचंद्र शाह ने की। मंच संचालन सुश्री सुनिता खत्री ने किया।

***

गांधी के डेढ़ सौ साल पूरे होने पर आयोजन

आंनद भवन में मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उज्जैन इकाई के गांधी पर हुए एक महत्त्वपूर्ण आयोजन में माधव कॉलेज के पूर्व प्राचार्य प्रो. अरुण वर्मा ने कहा कि गांधी को हम महज सत्तर सालों में ही भूल गए हैं। देवास से आए कथाकार और चिंतक मनीष वैद्य ने विषय प्रवर्तन करते हुए कहा कि गांधी का दर्शन हमारे लोक से आया हुआ है और सैकड़ों सालों के मानवीय सभ्यता के विकास का निचोड़ है। मुख्य वक्ता के रूप में गांधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता कृष्णमंगल सिंह कुलश्रेष्ठ ने अपने जीवन प्रसंगों के ज़रिए गांधी के आसान संदेशों को सामने रखा। उन्होंने गांधी को अपने जीवन में उतारने की पैरवी की।

मनीष शर्मा, देवास ने आयोजन का सूत्र संचालन करते हुए गांधी दर्शन की भूमिका प्रस्तुत की। अतिथियों का स्वागत मप्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन उज्जैन इकाई के अध्यक्ष आरपी गुप्ता, सचिव अवधेश वर्मा, विनोद काबरा आदि ने किया।

अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ चित्रकार श्रीकृष्ण जोशी ने भी गांधी के जीवन को प्रेरक निरूपित किया और कहा कि इससे हमारा समाज सही दिशा में आगे बढ़ सकता है। विकास आयुक्त और गायक प्रतीक सोनवलकर ने गांधी के प्रसिद्ध भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' गाया तो सभागार तालियों से गूँज उठा। आभार प्रदर्शन प्रो. इसरार मोहम्मद खान ने किया।

इस अवसर पर गणमान्यजन प्रो. हरिमोहन बुधौलिया, साहित्यकार प्रदीप उपाध्याय, वी के गोयल, सहित कई गणमान्य जन उपस्थित थे।

***

अरुण अर्णव खरे हिन्दी साहित्य सम्मान से सम्मानित

भोपाल के वरिष्ठ साहित्यकार अरुण अर्णव खरे को उनके उपन्यास कोचिंग@कोटा के लिए हिन्दी साहित्य एवम व्यंग्य संस्थान रायपुर, छत्तीसगढ़ द्वारा वृंदावन भवन में आयोजित एक गरिमामय समारोह में हिन्दी साहित्य सम्मान से सम्मानित किया गया। यह सम्मान प्रसिद्ध व्यंग्य आलोचक श्री रमेश तिवारी की अध्यक्षता व वरिष्ठ साहित्यकार श्री श्रवण कुमार उर्मलिया के मुख्य आतिथ्य में प्रदान किया गया। वरिष्ठ व्यंग्यकार रमेश सैनी व विनोद साव विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे।

***

अनिता रश्मि को 'रामकृष्ण त्यागी स्मृति कथा सम्मान'

सर्व भाषा ट्रस्ट की तरफ से राँची, झारखण्ड की अनिता रश्मि को 'रामकृष्ण त्यागी स्मृति कथा सम्मान 2019' प्रदान किया गया। समारोह का आयोजन दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, दिल्ली स्थित गाँधी शांति प्रतिष्ठान में किया गया था। सर्वभाषा ट्रस्ट के अध्यक्ष अशोक लव एवं रेणु हुसैन ने अंग वस्त्र ओढ़ा कर लेखिका को सम्मानित किया।

***

पं. बृजलाल द्विवेदी सम्मान से कमलनयन पांडेय सम्मानित

प्रख्यात साहित्यकार एवं 'युगतेवर' पत्रिका के संपादक श्री कमलनयन पांडेय को 12वें पं. बृजलाल द्विवेदी स्मृति अखिल भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान से सम्मानित किया गया। भोपाल के गांधी भवन में मीडिया विमर्श पत्रिका एवं मूल्यानुगत मीडिया अभिक्रम के संयुक्त तत्वावधान में ससम्मान समारोह में उनको सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता एवं विचारक श्री रघु ठाकुर ने कहा कि पत्रकारिता की डिग्री के लिए साहित्य पढ़ना भले ज़रूरी न हो लेकिन एक अच्छा इंसान होने के लिए साहित्य पढ़ना ज़रूरी है। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता के लिए विज्ञापन एक रोग है, किंतु विज्ञापन के बिना पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कठिन कार्य है।

समाजवादी चिंतक श्री रघु ठाकुर ने कहा कि आज के अख़बारों में नेताओं के बारे में, उनके निजी जीवन के बारे में तो बहुत कुछ छपता है लेकिन साहित्यकारों के बारे में, उनके निजी जीवन के बारे में नहीं छपता है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे पद्मश्री से अलंकृत प्रख्यात पत्रकार श्री विजयदत्त श्रीधर ने कहा कि पत्रकारिता को सामाजिक सरोकारों और मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने कहा कि ऐसा नहीं है कि पहले बाज़ार नहीं थे, बाज़ार पहले भी थे। लेकिन आज बाज़ार सेवक की बजाय स्वामी बन गया है।

कार्यक्रम का संचालन दिल्ली से आईं साहित्यकार डॉ. पूनम मटिया ने किया। स्वागत भाषण श्रीकांत सिंह ने दिया और धन्यवाद ज्ञापन डॉ. बीके रीना ने किया।

***

कम्प्यूटर व मोबाइल पर कार्य करने हेतु कार्यशाला

''कम्प्यूटर व मोबाइल पर भारतीय भाषाओं में कार्य करना बेहद आसान हो गया है। अब हम अपनी रचनाओं को वेब के माध्यम से पूरी दुनिया में पहुँचा सकते हैं'', ये उद्‌गार हिंदी भवन में आयोजित 'कम्प्यूटर एवं मोबाइल में कार्य करने की सुविधाओं के लिए आयोजित कार्यशाला' में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित टेक्नोक्रेट एवं तकनीकी विषयों के वरिष्ठ लेखक रवि रतलामी ने व्यक्त किए।

कार्यशाला का शुभारम्भ करते हुए म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री संचालक श्री कैलाशचंद पन्त ने लेखकों एवं साहित्यकारों को कम्प्यूटर एवं मोबाइल पर हिन्दी में कार्य करने का प्रशिक्षण की महत्ता को रेखांकित करते हुए कहा कि भारतीय दर्शन और परम्परा को युरोपीय देशों तक पहुँचाने के लिए तकनीकी का प्रशिक्षण आवश्यक हो गया है।

कार्यशाला में विषय प्रवर्तन करते हुए हिन्दी भवन के निदेशक डॉ. जवाहर कर्नावट ने सूचना पद्धति में हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं के विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला।

कार्यक्रम की अध्यक्ष डॉ. रंजना अरगड़े ने इंटरनेट पर हिन्दी साहित्य की सामग्रियों की कमी को रेखांकित करते हुए युवा मंच के तहत इस आयोजन के रूप में किए गए सार्थक प्रयास की तारीफ की। आपने शोध कार्य में नई भाषा प्रौद्योगिकी की उपयोगिता को भी रेखांकित किया। युवा मंच की संयोजिका निशा सिंह ने भी अतिथियों को सम्बोधित किया और अंत में श्रीमती कान्ता रॉय ने आभार प्रदर्शन किया।

***

तोमिओ मिज़ोकामी का भोपाल में व्याख्यान

जापान के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान पद्मश्री डॉ. तोमिओ मिज़ोकामी ने विश्व हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा हिन्दी भवन भोपाल में 'भारत-जापान सांस्कृतिक एवं आर्थिक' विषय पर आयोजित कार्यक्रम में व्याख्यान दिया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री संतोष चौबे, कुलाधिपति, टैगोर विश्वविद्यालय थे तथा अध्यक्षता श्री सुखदेवप्रसाद दुबे ने की। स्वागत वक्तव्य श्री युगेश शर्मा ने प्रस्तुत किया। अंत में श्रीमती कान्ता रॉय ने आभार प्रकट किया।

***

वीरेन्द्र आस्तिक को 'साहित्य भूषण सम्मान'

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के स्थापना दिवस के अवसर पर आयोजित सम्मान समारोह में वीरेंद्र आस्तिक को 'साहित्य भूषण सम्मान' से अलंकृत किया गया। वीरेंद्र आस्तिक को यह सम्मान विधानसभा अध्यक्ष डॉ. हृदय नारायण दीक्षित द्वारा प्रदान किया गया। इस अवसर पर उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ भी उपस्थित थे।

***

पसीना मौत का माथे पे आया, आईना लाओ..

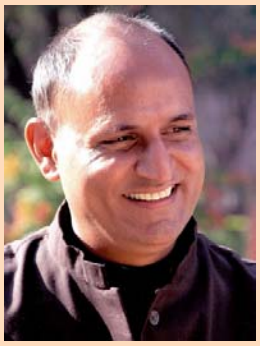

मानवता के सामने बड़े-बड़े संकट पहले भी आते रहे हैं और आगे भी आते रहेंगे। लेकिन हर बार जब भी कोई संकट आता है, तो हम सब एक होकर उसके सामने खड़े हो जाते हैं। यह सच है कि पिछले कुछ वर्षों में बहुत कुछ ऐसा घटा है जिसके कारण हम एक हैं की भावना कमज़ोर हुई है। आज धर्म और जाति के आधार पर हर कोई एक-दूसरे के प्रति कुछ अलग तरह के भाव रखता है। और ऐसे ही कठिन समय में यह महामारी कोरोना के रूप में हमारे सामने आ खड़ी हुई है। इससे लड़ने के लिए सबसे आवश्यक है कि हम सब एक ही तरह से सोचें, रहें और कार्य करें। लेकिन बहुत ज़्यादा बढ़ी हुई हमारी मतविभिन्नता हमें ऐसा करने से रोकेगी। हम रुकेंगे कि यह तो वह व्यक्ति करने को कह रहा है, जो हमारे धर्म का नहीं है, हमारी जाति का नहीं है, हम उसके कहने पर ऐसा क्यों करें। हम तो उसे नीचा दिखाना चाहते हैं, इसलिए हम ऐसा क्यों करें ? धर्मों के आधार पर हमारे मन में एक-दूसरे के प्रति जो अविश्वास पैदा हुआ है, या शायद पैदा किया गया है, उसके चलते हम इस कठिन समय में एक हो पाएँगे ऐसा कह पाना ज़रा मुश्किल है। इस महामारी के सामने आने के बाद से सोशल मीडिया पर जिस प्रकार धर्म-अधर्म का खेल चालू हो गया है, उसके चलते एक बड़ा अंधकार दिखाई दे रहा है। शुरूआत के कुछ दिनों के बाद सोशल मीडिया और टीवी न्यूज़ चैनल दोनों ने इस महामारी में भी धर्म आधारित नफ़रत फैलाने की गुंजाइश तलाश ली है। यह बहुत ख़तरनाक है। एक ऐसा समय जिस समय में हमें सामूहिक रूप से खड़े होने और लड़ने की आवश्यकता है, वैसे समय में हम धर्म-अधर्म का खेल खेलने में व्यस्त हो गए हैं। मृत्यु का भय इन्सान को या तो बहुत संवेदनशील बना देता है या बहुत ज़्यादा क्रूर बना देता है। इस समय दिखाई तो यही दे रहा है कि लोग मृत्यु के भय से क्रूर हो रहे हैं। घर से भाग कर अपने घरों को जा रहे मज़दूरों पर अपना ज़हर उगल रहे हैं। उन लोगों के ख़िलाफ़ एक शब्द भी नहीं कहा जा रहा है, जो दुनिया भर से वायुयानों में सवार होकर देश वापस लौटे और देश को इस महामारी का तोहफ़ा दिया। इन्सान जब क्रूर होता है तो वह अपना क्रोध निकालने के लिए कमज़ोर की तलाश करता है। हवाई जहाज़ों में सवार होकर लौटे लोगों पर क्रोध नहीं निकाला जा सकता इसलिए मज़दूरों पर निकाला जा रहा है। उसमें भी राजनीति करने की पूरी संभावना तलाश की जा रही है। ऐसा लगता है कि पहले जो विश्व भर में अलग-अलग देशों में केवल वहाँ के चुनावों के समय ही राजनीति होती थी, वह अब पूरे समय होती है। नहीं भी हो तो टीवी न्यूज़ चैनल तो कम से कम यह चाहते ही हैं कि यह राजनीति पूरे समय चलती रहे, जिससे कि वे अपनी रोटियाँ सेंकते रहें। कोराना के आगमन के साथ ही राजनीति की भी शुरूआत हो चुकी है। एक समय था जब राजनीति से समाचार मिलते थे पत्रकारों को। अब हो यह गया है कि पत्रकार तय करते हैं समाचार राजनीति के लिए। पत्रकारिता अब पूरी तरह से समाप्त हो चुकी है, बस अलग-अलग राजनीतिक दलों के अपने मुखपत्र हैं, जो उनकी सुविधा के अनुसार काम करते रहते हैं। किसी समय कहा जाता था कि पत्रकारिता और साहित्य हमेशा जनपक्षीय होते हैं, इसलिए वे ही हमेशा विपक्ष में खड़े होते हैं। लेकिन अब तो सब कुछ सत्तापक्षीय हो चुका है। जो हालात हैं, उनको देखकर यह नहीं लगता कि दुनिया भर के सब इंसान अब एक होकर इस महामारी के विरुद्ध खड़े होंगे। अब तो बस मौत के डर से सहमे हुए लोग हैं, जो केवल और केवल अपने ही बच जाने की प्रार्थना में लगे हुए हैं। इस परिस्थिति में किसी अज्ञात शायर का बहुत अच्छा शेर याद आ रहा है - पसीना मौत का माथे पे आया, आईना लाओ; हम अपनी ज़िंदगी की आख़िरी तस्वीर देखेंगे....।

सादर आपका ही,

पंकज सुबीर

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

शिवना प्रकाशन की नई पुस्तकें

विचार और समय
सुधा ओम ढींगरा
निबंध

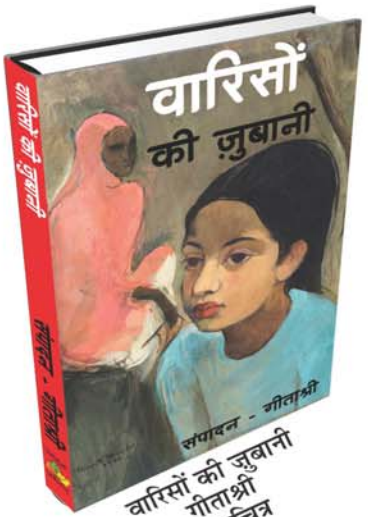

वारिसों की ज़ुबानी
गीताश्री
रेखाचित्र

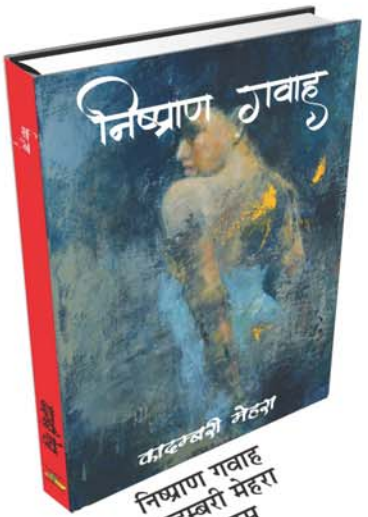

निष्प्राण गवाह
कादम्बरी मेहरा
उपन्यास

निन्यानवे का फेर
ज्योति जैन
लघुकथा

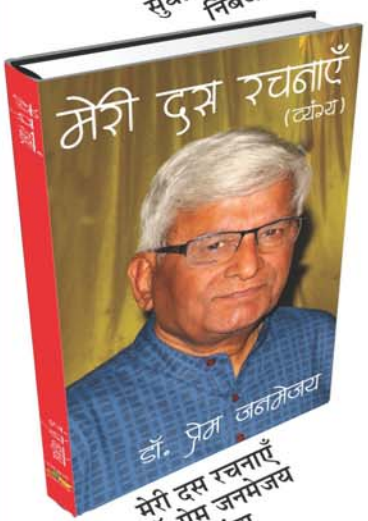

मेरी दस रचनाएँ
डॉ. प्रेम जनमेजय
व्यंग्य

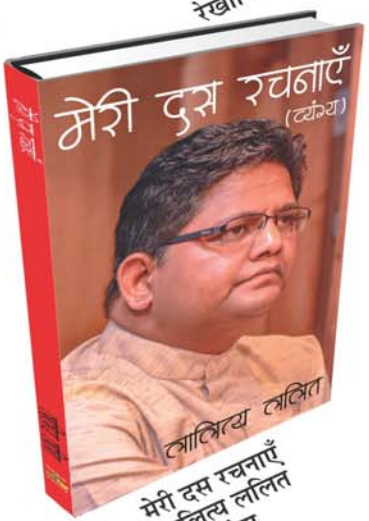

मेरी दस रचनाएँ
लालित्य ललित
व्यंग्य

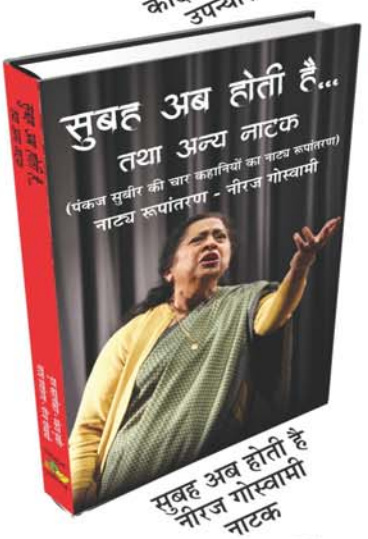

सुबह अब होती है
नीरज गोस्वामी
नाटक

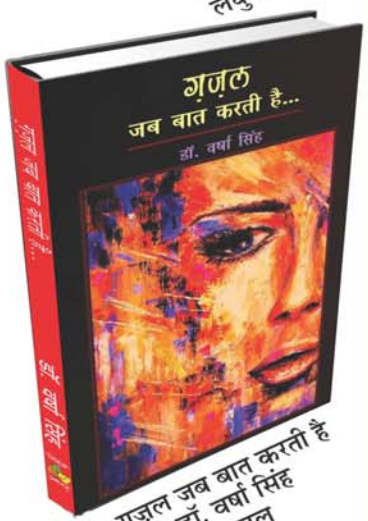

ग़ज़ल जब बात करती है
डॉ. वर्षा सिंह
ग़ज़ल

ख़ुद से गुजरते हुए
संगीता कुजरा टाक
कविता

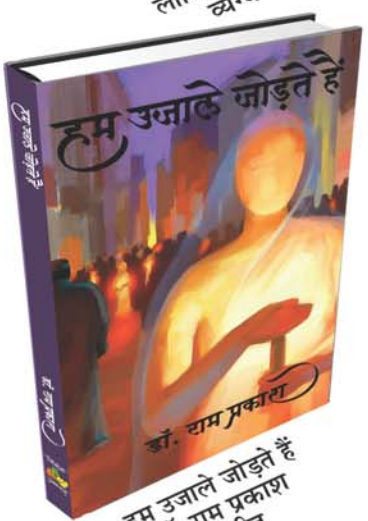

हम उजाले जोड़ते हैं
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

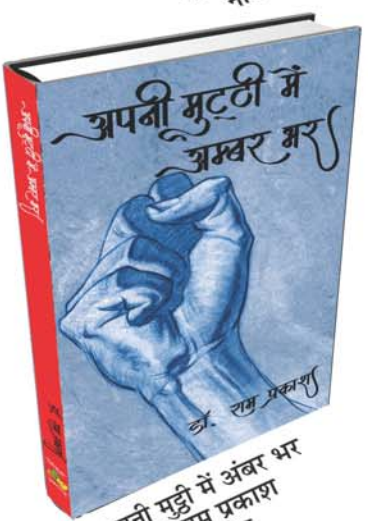

अपनी मुट्ठी में अंबर भर
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

उन्हें गीत दो
डॉ. राम प्रकाश
नवगीत

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Paytm
https://www.paytm.com

ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar ● Quarterly ● April-June 2020 ● RNI No. MPHIN/2016/70609 ● ISSN2455-9814

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

आष्टा में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर आयोजित डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री वितरण कार्यक्रम में बालिकाओं को मार्गदर्शन प्रदान करते वरिष्ठ पत्रकार श्री सुधीर पाठक, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा केंद्र संचालक श्री सुरेंद्र सिंह ठाकुर।

आष्टा में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर आयोजित डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री वितरण कार्यक्रम में बालिकाओं को डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री प्रदान करते वरिष्ठ पत्रकार श्री सुधीर पाठक, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा थाना प्रभारी सुश्री अंजना सिंह।

आष्टा में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर आयोजित डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री वितरण कार्यक्रम में बालिकाओं को डिप्लोमा तथा पाठ्य सामग्री प्रदान करते वरिष्ठ पत्रकार श्री सुधीर पाठक, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव तथा थाना प्रभारी सुश्री अंजना सिंह।

मध्य प्रदेश माध्यमिक शिक्षा मण्डल में अतिरिक्त सचिव के पद पर कार्यरत मध्य प्रदेश शासन की वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी सुश्री शीला दाहिमा ने सीहोर में चलाए जा रहे नि शुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण प्राप्त कर रही बालिकाओं को कॅरियर गाइडेंस प्रदान किया।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।